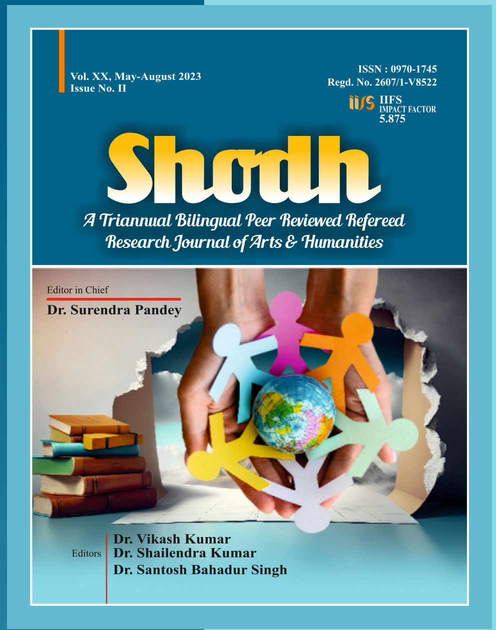

Published by

History & Historical Writing Association,
U.P., Varanasi (INDIA)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari,
Varanasi, Email: shodh1984@gmail.com

Shodh *A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Arts & Humanities* ■ May-August 2023

Vol. XX, May-August 2023
Issue No. II

ISSN : 0970-1745
Regd. No. 2607/1-V8522
IIFS
IMPACT FACTOR
5.875

Shodh

A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Arts & Humanities

Editor in Chief
Dr. Surendra Pandey

Editors
Dr. Vikash Kumar
Dr. Shailendra Kumar
Dr. Santosh Bahadur Singh

Vol. XX Issue No. II, May–August 2023, ISSN: 0970-1745 **Impact Factor 5.875**

Regd. No. 2607/1-V8522 ISSN: 0970-1745

SHODH

[A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Art & Humanities]

Chief Editor
Dr. Surendra Pandey
Editors
Dr. Vikash Kumar
Dr. Shailendra Kumar
Dr. Santosh Bahadur Singh

Published by
History & Historical Writing Association, U.P., Varanasi (India)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari, Varanasi
Mob. 9451173404, 9868477818, 9470828492 Email: shodh1984@gmail.com

Printed by
Akhand Publishing House, Delhi (India)
L-9/A, First Floor, Street No.42, Sadatpur Extension, Delhi
Mob. 9968628081, 9555149955, 9013387535 Email: akhandpublishing@yahoo.com

Note: The responsibility of the facts given and opinions expressed in articles of journal is solely that of individual author and not to the publisher.

First Issue Publication 1984

Chief Editor :

Dr. Surendra Pandey
Assistant Professor,
Kuba P.G. College,
Dariyapur, Newada, Azamgarh

Editor

(i) **Dr. Vikash Kumar**
Assistant Professor,
Department of Hindi,
Sri Varshney College, Aligarh, U.P

(ii) **Dr. Shailendra Kumar**
Assistant Professor,
Department of Management
Sikkim University, Sikkim

(iii) **Dr. Santosh Bahadur Singh**
Assistant Professor
Department of English
Lady Irwin College, University of Delhi

Executive-Editor

Dr. Varsha Singh
Associate Professor
Department of English
Deshbandhu College, University of Delhi

Co-Editor

Dr. Ripunjay Kumar Singh
Assistant Professor, Hindi,
S.N.R.K.S. College, Saharsa (Bihar)

Sub-Editor

Dr. Abhay Kumar
Assistant Professor, BRM College, Munger
Munger University, Bihar

Vol. XX Issue No. II, May–August 2023, ISSN: 0970-1745 **Impact Factor 5.875**

SHODH

……A Triannual Bilingual Refereed Research Journals of Arts & Humanities

Patrons

Dr Jai Ram Singh

Principle Degree College, Palahipatti, Varanasi

Editorial Board

1. Prof. Hirocko, Nagasaki, Osaka University, Japan.
2. Prof. Ashok Singh, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
3. Prof. Ravindra Nath Singh, AIHC Department, Banaras Hindu University.
4. Prof. Rangnath Pathak, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
5. Prof. Chandrakala Tripathi, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
6. Prof. Anita Singh, Department of English, Banaras Hindu University.
7. Prof. Abha Singh, Pro Vice Chancellor, B.N. Mandal University, Bihar.
8. Prof. Yogesh Kumar Sharma, Department of English, Swami Shraddhanand College, University of Delhi.
9. Prof. Sanghmitra, Department of Political Science, Bodoland University Assam.
10. Dr Nirmla Kumari, Associate Professor, Hindi Department, Shri Varshney College, Aligarh.
11. Dr Varsha Singh Associate Professor English Department, Deshbandhu College, University of Delhi.
12. Dr Anupam Kumar, Associate Professor of English, SGT University, Budhera, Badli Road, Gurugram, Haryana
13. Dr O.P. Singh, Harishchandra P.G. College, Varanasi.
14. Santosh Patel, Assistant Registrar, Delhi Teacher University, Delhi.
15. Dr Ratnesh Tripathi, Assistant Professor, Department of History, Satyawati College, University of Delhi.
16. Dr Vikash Kumar Singh, Assistant Professor, AIHC Department, Banaras Hindu University.

17. Satyendra Kumar, Assistant Professor, Department of English, Kirori Mal College, University of Delhi.
18. Dr. Shubhanku Kochar, Assistant Professor, Department of English, Guru Govind Singh Indraprastha University, Dwarka New Delhi.
19. Vijay kumar, Assistant Professor, Department of English, Satyawati College, University of Delhi.
20. Dr Bhartendu Kumar Pathak, Assistant Professor, Department of Hindi, Kashmir University, Shrinagar (J&K).
21. Dr Priyadarshini, Assistant Professor, Department of Hindi, The English Foreign Languages University, Haiderabad, Telangana.
22. Dr.Rashmika Mishra Assistant professor department of vocal music Mmv Bhu
23. Dr. Bhupendra Kumar Assistant Professor Department of Sanskrit Kirori Mal College, University of Delhi. Delhi-110007

विषय-सूची
Contents

PART–I

1. भोजपुरी के बांग्ला भाषी विद्वान के योगदान आ बांग्लादेश के राष्ट्रीय कवि काजी नजरुल 3
—डॉ. संतोष पटेल

2. उपन्यासालोचन के सही मुहावरे की तलाश में (अठारह उपन्यास–राजेन्द्र यादव) 10
—प्रभात कुमार मिश्र

3. डॉ० विद्यानिवास मिश्र के प्रमुख ललित निबंधों में केन्द्रीय तत्व 15
—डॉ० अरुण कुमार मिश्र

4. मध्यकालीन कवियों की रस योजना 26
—डॉ० वनीत कौर

5. रमणिका गुप्ता के कथा साहित्य में स्त्री संघर्ष और आत्मभिव्यक्ति 30
—ऋतु

6. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन 1900 से 1920 तक 36
—सत्य बहादुर सिंह

7. महिला स्वाबलम्बन एवं सहकारी डेयरी समितियों के विकास में शिक्षा का योगदान 47
—डॉ० रवेन्द्र राजपूत

8. सादात विकास खण्ड (जनपद गाजीपुर) के जनसंख्या वितरण का एक अवलोकन 53
*—*कृतिज्ञा सिंह, **डॉ० तारकेश्वर सिंह*

9. राहुल सांकृत्यायन की कहानियों में सांस्कृतिक चेतना 59
*—*पौल्टी कुमारी, **डॉ० आनंद कुमार सिंह*

10. मध्यान्ह भोजन योजना : एक विश्लेषणात्मक समीक्षा 64
*—*डॉ० हेमलता सागुड़ी, **प्रतिमा सिंह*

11. प्रभा खेतान के उपन्यासों में अभिव्यंजित नारी जीवन 70
—पुष्प लता पाण्डेय

12. वेदान्तदर्शनस्थं "पञ्चरत्नम्" 78
—डॉ० राहुल चौधरी

13. रोहतास जिला (बिहार) में सिंचाई सुविधायें एवं उनका विकास 80
—अभिषेक कुमार

14. भारत की पंचायती राज व्यवस्था के विकास में महिला नेतृत्व 87
*—*विशाल, **डॉ० चिट्टीबाबू पुच्चा, ***डॉ० वीरेंद्र सिंह मटसेनिया*

15. ग्रामीण विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में साक्षरता का योगदान 92
—प्रियंका राय

16. हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार में काशी की साहित्यिक संस्थाओं व नाट्य परिषदों की भूमिका 96
—डॉ० मीनाक्षी मिश्रा

17. दिनकर साहित्य एक संक्षिप्त परिचय 101
*—*डॉ० रानी रूपमती, **प्रो० मनोज कुमार*

18. खोजी पत्रकारिता 105
—डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता

19. संशय की एक रात में मिथक और सांस्कृतिक मूल्य 109
*—*कृतिका पाण्डेय, **डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय*

20. हिन्द-यवन मुद्राएँ: प्रयुक्त धातुएँ व तोलमान 115
—डॉ० आरती गुप्ता

21. जगदीश चन्द्र का उपन्यास "धरती धन न अपना" में कृषक जीवन 120
—डॉ. के. विजय भास्कर नायुडु

22. रामचंद्र शुक्ल और प्राच्यवाद 123
*—*सुश्री लया एन, **डॉ. सर्वेश्वर प्रताप सिंह*

23. हिन्दी कहानियों में आदिवासी स्त्रियों की अभिव्यक्ति 130
—डॉ० विकास कुमार

PART–II

1. Intellectual Property Rights in Modern Global Environment 3
   —Aditya Kumar Yadav

2. Shaping Healthy Communities: The Historical Journey of Physical Education and Sports in Fostering Social Well-being and Health Advancement 12
   —Dr Shahanawaz Khan

3. An Attempt to Analyze Attributes, Challenges and Barriers Towards Women Empowerment in Present Scenario 23
   —Rekha

4. Rights of Indigenous Group 31
   —Mrs. Naipali

PART – I

भोजपुरी के बांग्ला भाषी विद्वान के योगदान आ बांग्लादेश के राष्ट्रीय कवि काजी नजरुल

डॉ. संतोष पटेल

भोजपुरी भाषा में क्षेत्र के हिंदी विद्वानन के भलेहूँ साहित्य ना देखाई देलस जइसे कबीर के साहित्य के भाषा के साजिशन भोजपुरी ना कह के हिंदी के इतिहासवेता लोगन में डॉ रामचन्द्र शुक्ल जइसन विद्वान सधुक्कड़ी, खिचड़ी आ पंचमेल कहल। त ओही समय भाषाविद सुनीति कुमार चटर्जी भोजपुरी के एगो अलग भाषा मननी। उहाँ के बात के उदय नारायण तिवारी जी भी स्वीकार कइनी। सुनीति कुमार चर्टजी आ क्षितिमोहन सेन खुदे उदय नारायण तिवारी जी के भोजपुरी के शोध में निदेशक के भूमिका निभवले रहनी।

देश के आजादी के बाद से आजू ले हर विधा में भोजपुरी में लेखन चल रहल बा। एकरा बादो हिंदी के विद्वान आ साहित्य अकादेमी के पूर्व अध्यक्ष डॉ विश्वनाथ तिवारी के भोजपुरी भाषा में साहित्य ना देखाई देलस। एह देश के एगो लमहर भू भाग के भाषा भोजपुरी में काव्य धारा चौरंगीनाथ, गोरखनाथ, गोपीचंद, भरथरी, कबीर, धरनी दास आदि लोगन से शुरू होके आजु ले समकालीन काव्यधारा के साथे कान्हा से कान्हा मिला के चलत बा।

भोजपुरी भाषा आ साहित्य के बरियार करे में बंगला भाषी विद्वान लोगन से बड़ा लगाव रहल ब। सबसे पहिले कविन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर के नाम से लिहल जा सकेला जे भोजपुरी साहित्य के लोहा मनलन। विश्वकवि टैगोर भोजपुरी के आदि कवि कबीर दास के सौ गो पद्य के भोजपुरी अनुवाद कइनी जेकरा"One Hundred poems of Kabir" नाम से मैकमिलन सन 1915 ई में प्रकाशित कइलस।एकर भूमिका अल्विन अंडरहिल महोदया लिखले बाडी। बतावल जाला कि टैगोर के साहित्य पर विशेषकर गीतांजली पर कबीर के पद्य के बहुत असर बा। एह किताब के इंग्लिश अनुवाद ओह समय भईल जब गीतांजलि के भी अनुवाद इंग्लिश में होखत रहे आ एकर भूमिका आयरलैंड के विद्वान सुप्रसिद्ध कवि डब्लू बी यीस्ट लिखले रहलन।

इहाँ एगो तथ्य जाहिर कइल जरुरी बा कि बिहार के मुजफ्फरपुर में बाबा साहेब आंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय में 1969 ई में सबसे पाहिले भोजपुरी के पढाई शुरू भईल एकर श्रेय एगो बांगला भासी के ही जा रहल बा जेकर नाम रहे डॉ तारा चंद बनर्जी (टी सी बनर्जी) बनर्जी साहेब उहाँ उप कुलपति रही आ उहाँ के सरपरस्ती में भोजपुरी के शिक्षण के आधार रखल गइल।

भोजपुरी के एगो लमहर पत्रिका 'द सन्डे इंडियन भोजपुरी' के प्रकाशन भोजपुरी भाषा में जे कइलस उहो एगो बंगला भाषी रहे –श्री अरिंदम चौधरी जी। 'द सन्डे इंडियन भोजपुरी' के एगो अंक 'सदी की सौ साहित्यकार' भोजपुरी भाषा के 1000 वर्ष के विकास के बरियार तरीका से पेश कइले बिया।

हमनी कवि, संपादक आ अनुवाद धीरज कुमार भट्टाचार्य जी के भोजपुरी सेवा के कइसे भुला सकत बानी ज। भट्टाचार्य जी कोइल भोजपुरी पत्रिका के प्रबंध संपादक रही। भोजपुरी गद्य आ पद्य दुनु खल में खूब लिखले बानी, सबसे लमहर काम इहाँ के बांगला साहित्य से भोजपुरी अनुवाद के बा।

धीरज कुमार भट्टाचार्य जी के लिखल एगो भोजपुरी कविता देखि

==============================

अबहीं कविता लिखल ना जाई
=====================
अबहीं कविता लिखल ना जाई
कि कुलही छान्ह छ्वले सकेर
आ परेत बनल सीसो
दूर अउरी दूर स्फटिक आकाश
आ बुधुआ के माई के मांजल
छीपा अस सुरुज /
अबहीं सूखल जड़ पर चाहीं
मन के दुखद मरोड़, बून-बून जल
एगो एचके अकेला छन,
गरम साँस -
एक ठोप शीतल पियास
अबहीं कविता लिखल ना जाई //(साभार ; आगे आगे)

बंगला भाषी कवि आ बंगला देश के राष्ट्रीयकवि काजी नजरुल इस्लाम के भोजपुरी रचना

==================================

बंगला के सबसे बड़ कवि रवीन्दनाथ टैगोर के बाद काजी नजरुल इस्लाम के ना लिहल जाला। 'संवेद' पत्रिका के अंक 2012 के अप्रैल अंक काजी नजरुल इस्लाम पर केन्द्रित रहे जेकर संपादन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिदी प्रो अवधेश प्रधान जी कइले बानी।

जून 1995 ई में एगो किताब नाम रहे - "नजरूल हिंदी गान" के प्रकाशन नजरुल इंस्टिट्यूट, कविभव, बाड़ी न-33, बी रोड न -28, धानमंडी आवासिका इलाका ढाका से भइल। एकर संग्रह आ संपादन बंगला देश के खोजी विद्वान श्री असदुक हक कइले।

काजी नजरुल इस्लाम देश भक्ति, श्री कृष्णभक्ति श्रृंगार, कुछ ऐहिक श्रृंगार से जुडल गीत लिखनी। कुछ बांग्ला गीतन के हिंदी रुपान्तरण कइनी। इहाँ के गीतन के चर्चा करत प्रो साहेब लिखत बानी की इस्लाम साहेब के गीत उर्दू में बा बाकिर ओहमे बंगला के मिश्रण बा। ब्रजबुली के इयाद दिला देला।

प्रो प्रधान के अनुसार – "शादी वाले संवाद ठेठ भोजपुरी में हैं" और भोजपुरी भाषी मजदूरों से साथ नजरुल के गहरे सम्पर्क का पता देते हैं। उनके कई हास्यपरक रचनाएं हैं, शादिवाला संवाद तो हास्य से भरपूर है ही, अपने ही प्रसिद्ध हास्यपरक "हास्यगीत आमार खोकार मासी, ओरे सर्वनाशी का जो हिंदी रूपांतरण है वह भी काबिले गौर है।"

एगो गीत बा जवना के हिंदी आ भोजपुरी के बीच के कविता कहल जा सकेला जेकर रचना काजी साहेब कइले बानी। फिलिम चौरंगी के इ गीत मेगाफोन कंपनी के ग्रामोफोन रेकॉर्ड में स्वरबद्ध भइल बा। रेकॉर्ड के ऊपर गीत के रचियता आ सरकार के बतौर नजरुल के नाम अंकित बा।

कैसे खेलन जाबे सावन में कजरिया
बदरिया घेर आई गोरिया
कैसे जैयो तू अकेली
कोई संग ना सहेली
गुंडा घेर ले हैं तोरी उगरिया /
केतनो चढ़ गेलो सूली
केतनो चढ़ गेलो फांसी
बदरिया घेर आई गोरिया /
तेरा देख गोरा चेहरा
करे हैं घर के सौ सौ फेरा
लम्बी लम्बी बांधे पगरिया
बदरिया घेर आई गोरिया /
भौजी बुलाला तोर गोरी
हमरे सुनने लागे गोली
काहे पडल बाटे उ हमरी उगारिया
कैसे खेलन जाबे सावन में कजरिया /
(साभार – संवेद, अप्रैल, 2012)

बंगला देश के राष्ट्रकवि काजी नजरुल इस्लाम साहेब के लिखल भोजपुरी गीत आ कविता पढ़ के एगो गीत जवन इस्लाम साहेब लिखले बानी 'चौरंगी' फिलिम ला भोजपुरी में पढ़ी रउरा लोग–

सारा दिन छत पिटी हाथहूँ दुखाई रे
तबहूँ तो पेट भर के खैका ना पाई रे
तू बोल बहिन आज घरे
का का पकाई हे
तू अभी चूल्हे तक बारो नहीं
बच्चा भुखाय हे

हमहूँ कुछ खावा नहीं बनावा नहीं
सास मोरी जुलुमी भोर उठ सताय हे
बैरन नन्द -बहुते हरजाई हे
सारा दिन छत पिटी हाथहूँ दुखाई रे

(चौरंगी का यह गीत मेगाफोन कम्पनी के ग्रामोफोन रेकार्ड में स्वरबद्ध हुआ था, रेकार्ड के ऊपर गीत के रचयिता और सरकार के बतौर नजरुल का नाम अंकित है)

काजी नजरुल इस्लाम के भोजपुरी कविता -शादी से पहिले।
==============================
काल के होई बियाह हमरे
परन्तु ऐ भूरुआ भइया
रह जइहा तू हकुआ भकुआ
मौज करब हम मुंह तू तकुआ
भेजी द हमका सास आ ससुरा
बढ़िया सुघर कपड़ा
हंसी-ठठोली साली करिहें
रूठब जब हमरा के मनइहें
घडी घड़ी ससुराल में जाइब
मौगी के ससुराल से लाइब
सासु लिहे मोर बलइया
साली करिहें खेल खेलइया
झाँकत जब तू लोग के पाइब
मडई में मौगी के छिपाइब
देख के तू लोग तरसब
मौज करब हम मुंह तू तकबा
हे, 'घोटालूवा/ आरेहे लोटलुबा /
कहाँ जात बाड़े रे /
जाइब कहाँ हो? राम राम राम
खेत में हल चलावे जात हई / कहो कहाँ
अरे सुन भइया ! रोज रोज त बरधा के लेके खेत जाइके
होला, कार भाई ठाट से हमरा ससुराल से चले के
होई, हमार गवनवा हो?
तीन बेर हम रोज नहाई
अंखिया भर भर कजरा लगाई
पउवां तेल दबाई

कंघा ले कर बाल बसाई
सुन्दर देख पड़ब भवे ओके
मौगी छड़िया लगाई मोके
सेगुआ से दिस रायन रही उ
कैसन करे मेह साउर तू
मोटी टिकरी पकाई
हमका खिलाई आपके खाई
देखिया जब खोजी मोको
अहो हो हो उहो से हो //
(संवेद, अप्रैल, 2012 पृष्ठ- 45 से साभार)

काजी नजरुल इस्लाम साहेब के दोसर भोजपुरी रचना – शादी के बाद।
++++++++++++++++++++++++++++++++++
हे भइया झपसट
कब अइला हो?
कहा आपन कुशल कहा
घरदौआ बीयाह कइला हमनी का पुछला भी ना
बोला कइसन कटल ह हो
हो मितरा का कहीं रे !
हल्ला करके त हम बड़का सवाल में पड़ गइली
अगड़म बगड़म खातिर झगड़ा रगड़ा हो दिन रामन
लत्तम जुत्तम चौकी बेलना दांत पिसौबल भइल
हम बोलिला ओसे सुन्दर औरत की छै जोय
उ बोलेला बोतल मोट का पुरुस ना ऐसा होय
गुजरे हमका लेवे देना आपन लेडाय ठायल
भारु बोलो हमके तू पुरुसू नाही कांच केला
तेरा बम्सका भाई देम्ही जोरू की दाबेला
अइसल के स्वामी जो रुहे तो ठंडक पाएं नैन
चोर पुलिस का लागा डांटी खींचल खिंचा होय
काफी काबली जइसे झगड़े ओके हमरे छोय
गोकसा का वास करक होय भैया जोसे आयलो गायेन
बाप रे बाप!
ऐसस गड़बड़ झाले वाला
बाज रहे जोरू औ साला
नाहि कते हम बिय आपसा

भागा जा हे ठकुआ तकुआ
छुप्ली जोरू के अस्पट से
खटपट से
राम बांचइल इ
ऐसी तरक्की कर छोती ह बोलो घर की साली /
दू चार प्यार रचते ... इग्गारहवें माह
बहु शुनेशा कहशा झंपाझांपी लत जाय
कहे ग्गास्सा होकर सादा हर्द बच्ची बच्चा
चार पइसा का इंसा देखो
हुए हो प्यारी मक्खी
आ पैर को चिउंटी बस कर
भूला मुछ्ददर छिख्खी
आखिर पागल हाय मुछ्ददर
तामा तब ये ऐ कमंडर
बे जे बन्दर ये ऐ कलददर
बोला कैसे शादी करके हो चें चे में विवाह
विकल शाम को मुरझाइल जूही
सुबह के खिल कर
देख के है फिकर
रखूँगा क्यों कर
पड़ी म्यारी जाऊं बरशाय
करूँ इसगेन का हाय /
(साभार – संवेग अप्रैल 2012, पेज 45-47)

अंत में हम अपना के ना रोक पावली महाकवि के एगो कविता के भोजपुरी अनुवाद करे से, एह महामनई के हमार शब्दांजलि काजी नजरुल इस्लाम के कविता के भोजपुरी अनुवाद 'माई'

===================================

माई, हम एगो नटखट लइका हई
बाकिर हई त तोहार बेटे नू
माई, तू हमार दुनिया हउ, तुही हमार दुनिया के रानी हऊ
तनी हमरा ओरि देख ल माई
हम तोहरा ओरि भिखमंगा लेखा टुकुर टुकुर देखत बानी
माई तू हमारा काहे तज रहल बाडू
बाकिर हम तोहरा परेम करीला

तोहरे से हम माई हम कुछु कह सकिला
माई तोहर खीस के, खोबसन के बादो हम
ओही लेखा तोहरा में सटीला जइसे
माई के डंटला बोलला के बादो ओकर बेटा महतारी से सटेला
ओही लेखा हम तोहरा भीरी भागल चलल आवेनी
तू कइसे हमरा अपना से दूर भगइबू माई!
तू हमार माई नू हऊ, हऊ कि ना?
ओहो, काहे हमरा दूर कइले बाडू हो माई
छोडि द हमरा के धुरा-माटी में खेले ला
हम तोहार एगो लायक लइका होखब
बस तू हमरा पर एगो किरपा करि द
हम बड़ा दुखी बानी, खिसियाइलो बानी, रिसिआइलो बानी
हम तोहरा आँखि से ढेर दूर चलि जाइब
जहवां हमार मन करी उहवाँ
हम इहो ना सोचब कि हम जीयब कि मरब
माई! जा रहल बानी हम।
(अंग्रेजी से भोजपुरी अनुवाद - संतोष पटेल)

उपन्यासालोचन के सही मुहावरे की तलाश में (अठारह उपन्यास – राजेन्द्र यादव)

प्रभात कुमार मिश्र
हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

"स्वतन्त्रता के बाद के हिन्दी उपन्यास का यह सर्वेक्षण न तो ऐतिहासिक है, न सम्पूर्ण, और न इसमें स्वतन्त्रता के बाद के सभी महत्त्वपूर्ण उपन्यासकारों की या किसी एक की सभी कृतियों पर ही विचार किया गया है। इसमें साहित्यालोचन की शास्त्रीय, शैक्षिक या शोध-प्रबन्धीय आदि किसी भी प्रचलित पद्धति के अनुसार नवीन हिन्दी उपन्यास के मूल्यांकन का भी कोई दावा नहीं है। इस अध्ययन का आरम्भ आधुनिक हिन्दी उपन्यास की मानवीय और कलात्मक सार्थकता की खोज में हुआ था।"

यह अंश नेमिचन्द्र जैन द्वारा स्वतन्त्रता के बाद के प्रमुख उपन्यासों के विवेचन से संबंधित पुस्तक 'अधूरे साक्षात्कार' की भूमिका से है। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों का ऐसा ही एक विवेचन राजेन्द्र यादव ने 'अठारह उपन्यास' में किया है। मैं जिस बात की तरफ ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ, वह दोनों ही आलोचकों द्वारा व्यक्त की गयी यह चिंता है हिन्दी में उपन्यास के मूल्यांकन की कसौटी का अभाव है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में कहें तो "पिछले दसियों वर्षों से हमारे यहाँ उपन्यास-समीक्षा की दो-तीन प्रणालियाँ ही प्रचलित हैं: कथासार देकर उसकी स्वाभाविकता-अस्वाभाविकता पर विचार; लेखक की दृष्टि की प्रशंसा-भर्त्सना, कुछ दार्शनिक या राजनीतिक मुहावरों में उसका मूल्यांकन; भाषा-शिल्प पर समीक्षक की प्रतिक्रिया, निष्कर्षत: 'उपलब्धि' या 'दस्तावेज' जैसे किसी विशेषण की घोषणा।" यहाँ तक कि नेमिचन्द्र जैन पर टिप्पणी करते हुए भी राजेन्द्र यादव कहते हैं कि "इनसे अलग एक और वर्ग है जो अधिक सम्वेदना और अंतर्दृष्टि के साथ रचना को समझना चाहता है, मगर हमेशा ही उसका यह साक्षात्कार अधूरा रहता है। शुद्ध अपनी पसंद और मन: स्थिति रचना की कसौटी बनती है।" स्पष्ट है कि राजेन्द्र यादव व्यक्तिगत पसंद-नापसंद से ऊपर उठते हुए वस्तुनिष्ठ ढंग से उपन्यासों का मूल्यांकन करना चाहते हैं, समीक्षा के सही मुहावरे की तलाश करना चाहते हैं और पद्धति के मानकीकरण की आवश्यकता भी उनके मन में कहीं है। दो दशक से भी अधिक समय गुजर जाने के बावजूद आज 'अठारह उपन्यास' की प्रासंगिकता बनी हुई है तो इसके कुछ खास कारण हैं। इसमें एक प्रतिष्ठित कथा-लेखक की प्रतिक्रियाएँ-भर नहीं हैं, अपने समय की कतिपय महत्त्वपूर्ण कृतियों को परखने की विशिष्ट समीक्षा-दृष्टि भी मौजूद है। यह विशिष्ट समीक्षा दृष्टि उसी आवश्यकता की उपज है जो उपन्यासालोचन के सुपरिभाषित मानक के अभाव से उभरा था।

राजेन्द्र यादव स्वयं एक सर्जक हैं। एक सर्जक की रचना-दृष्टि से लैस समीक्षा इस अर्थ में अलग होती है कि वह रचना और उसकी प्रक्रिया से जुड़े तमाम पहलुओं पर भी पूरी संलग्नता से विचार करती है। राजेन्द्र यादव की संलग्नता की परीक्षा हम कृतियों के उनके चुनाव के आधार पर कर सकते हैं। विवेचित अठारह उपन्यासों में से तीन तो स्वयं राजेन्द्र यादव के ही हैं। इनके चुनाव के अवसर और पीछे के दबाव चाहे जो हों, प्राथमिक स्तर पर राजेन्द्र यादव भी अपनी पसंद पर ही निर्भर हैं। श्रीलाल शुक्ल को पत्र में राजेन्द्र यादव लिखते हैं "मुझे अनेक स्थानों पर पढ़ते हुए यह लगता रहा कि शायद उन स्थानों को इतनी खूबसूरती से लिख पाना मेरे लिए संभव नहीं होता। बहुत ईर्ष्या के साथ मैंने इस उपन्यास को समाप्त किया है।" अमृतलाल नागर के उपन्यास 'बूँद और समुद्र' का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने लिखा- "जगह-जगह कथोपकथन, नाटकीय स्थितियों का चित्रण और मानसिक ज्वार-भाटों का वर्णन पढ़-पढ़कर मेरे मन में ईर्ष्यामयी 'हूक' उठी है: काश, मैं एक ही पन्ना ऐसा लिख पाता।" इस प्रकार की स्वस्थ ईर्ष्या बेहद पसंदगी से ही उपजती है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि उपन्यासों के चुनाव में भले ही राजेन्द्र यादव की पसंद-नापसंद की महत्त्वपूर्ण भूमिका है किन्तु उनके विवेचन-विश्लेषण में राजेन्द्र यादव की समझ व्यक्तिगत राय या पसंद तक सीमित नहीं रही है। यही कारण है कि राजेन्द्र यादव की कथा-समीक्षा अपने को सिर्फ तत्कालीन या फौरी सरोकारों और मूल्यांकन कर डालने की सीमा में आबद्ध नहीं है। राजेन्द्र यादव सिर्फ चौखटाबद्ध प्रवृत्तियों और सद्यः प्रकाशित कृतियों तक ही सिमटकर नहीं रह गए हैं। तात्कालिकता में उलझ जाने की मजबूरी से बाहर निकलकर इतिहास-दृष्टि के साथ 'चंद्रकांता संतति' के मूल्यांकन को प्रवृत्त होते हैं।

राजेन्द्र यादव द्वारा की गयी 'चंद्रकांता संतति' की समीक्षा आपने आप में एक विशिष्ट कुंजी है जिसने भारतीय समाज द्वारा बेहद पारंपरिक ढंग से पढ़े गए इस उपन्यास को न सिर्फ नए तरीके से समझने में मदद की बल्कि पाठक को देवकीनन्दन खत्री के अवचेतन तक भी पहुँचा दिया। इसी समीक्षा ने रचनाकार के मनोजगत में झाँकने की जरूरत पर भी ध्यान खींचा और याद दिलाया कि जिसे आप चाहने पर भी भौतिक रूप से नष्ट नहीं कर पाते, उसे अपने लिए मानसिक रूप से नष्ट कर डालते हैं। 'चन्द्रकान्ता संतति' के मूल्यांकन में राजेन्द्र यादव खुद के ही बनाए प्रतिमान को तोड़ते हैं। भूमिका में उन्होंने कहा है- "परम्परा से न जुड़ने के कारण ही आज हमारे पास न तो समीक्षा की समझ का मानकीकरण है, न मुहावरे का; शायद औजार तो हैं ही नहीं। इसीलिए सर्वज्ञ आलोचक अनेक है, कथा-विशेषज्ञ समीक्षक एक भी नहीं। हम या तो काव्य-शास्त्र के औजारों से काम चला रहे हैं, या दर्शन या अन्य शास्त्रों की बारीकियों में घुस जाते हैं। मानवीय अस्तित्व और नियति को समझने के लिए हर शास्त्र या ज्ञान अनिवार्य है, लेकिन हर विद्या का अपना एक मुहावरा या अनुशासन होता है और वह पूरे परिप्रेक्ष्य के विचार-पुनर्विचार से ही उभरकर आता है। दार्शनिक प्रतिपत्तियाँ, राजनीतिक स्थितियाँ, समाजशास्त्रीय सूक्तियाँ समझ को धार और शक्ति तो दे सकती हैं, खुद साहित्य की स्थानापन्न नहीं हो सकतीं।"

'चंद्रकांता संतति' की परीक्षा के लिए राजेन्द्र यादव केवल साहित्य के औजारों को अपर्याप्त मानते हैं। उनके अनुसार इस उपन्यास की जाँच-परख के लिए उस पूरे परिवेश और माहौल को समझना होगा जिसमें इसे लिखा-पढ़ा गया था। यहीं से राजेन्द्र यादव उस मूल सवाल तक पहुँचते हैं कि क्या केवल और केवल मनोरंजन

के लिए ही यह इतना बड़ा उपन्यास लिखा गया? अनायास और अनजाने ही पाठकों को बाँध लेनेवाली किताब या फिल्म किसी गहरी अचेतन जरूरत को प्रकट और इंगित करती है या नहीं? समय और रचना के रिश्ते की पहचान कर राजेन्द्र यादव ने वास्तव में 'चन्द्रकांता" नाम के तिलिस्म को ही तोड़ा है। उनका निष्कर्ष है कि 1857 के गदर के बाद अंग्रेजी शासन ने प्रायः सारे उत्तर भारत को अपने चंगुल में ले लिया था और धीरे-धीरे उसकी प्रशासनिक स्थिति मजबूत होती चली जा रही थी। राज्यों और प्रान्तों की पुनर्व्यवस्था और पुनर्गठन का कार्य लगभग पूरा हो गया था। अंग्रेजों का दबदबा, आतंक इस सिरे से उस सिरे तक छाया हुआ था। नए हथियारों, रणनीतियों और हथकंडों के साथ-साथ वे अपने उपयोग के नए-नए उपकरण भी ला रहे थे। सब मिलाकर असंगठित और गुप्त विरोधों के बावजूद भारतीय समाज ने इस पराजय को अंतिम रूप से स्वीकार कर लिया था। हाँ! मानसिक और आध्यात्मिक रूप से जन-मन इस स्थिति को कतई स्वीकार नहीं कर पाया था। भौतिक और सामाजिक पराजय के बाद भीतर कहीं यह बोध और कचोट बने रहना बहुत स्वाभाविक है कि जो बाहरी शक्ति से नहीं हो सकता, उसे बुद्धि और समझ से किया जा सकता है। 'चन्द्रकांता' अपनी पराजय का ही इकबाली-बयान नहीं, बल्कि सामंती शौर्य की घनघोर असफलता के बाद बौद्धिक चातुर्य की दिशा में एक अचेतन प्रयोग है-यानी भौतिक सामर्थ्य की व्यर्थता के बाद बौद्धिक श्रेष्ठता साबित करने का एक काल्पनिक और कमजोर प्रयास। इस विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि राजेन्द्र यादव इस बात के हिमायती हैं कि सामाजिक संरचनाओं का साफ असर साहित्य-रूपों पर पड़ता ही है। हम देखते हैं कि इस विवेचन से हमें ऐतिहासिक स्रोतों और रचना के सम्बन्ध के बारे में पता चलता है। किस ऐतिहासिक समय-समाज में रचना हुई है, रचना की ऐतिहासिकता के लिए यह जानना जरूरी है।

राजेन्द्र यादव के विवेचन के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन्होंने उपन्यासों के लिए सुंदर-खूबसूरत विशेषण का साभिप्राय प्रयोग किया है-

"और अंत में भारती जी से एक बात : उपन्यास (गुनाहों का देवता) वास्तव में उन्होंने सुंदर लिखा है, बड़ा प्यारा।"

"'राग दरबारी' के बाद इस शैली का सधाव और निथरना सचमुच एक सुखद विस्मय से भर जाता है। वह 'बिखराव' भी इसमें नहीं है। अपने गठन को खूबसूरती से बनाए रखा है।"

"कल ही तुम्हारा (शानी) उपन्यास (कालाजल) पढ़कर समाप्त किया है। तुम्हें इस निहायत ही खूबसूरत और दिलचस्प उपन्यास लिखने पर बधाई।"

वास्तव में उपन्यास या साहित्य मात्र में ही ऐसी आकांक्षाएँ और विश्वास व्यक्त होते हैं जो परस्पर विरोधी हो सकते हैं। उपन्यासकार की अपनी दृष्टि उन सबको एक विशेष क्रम में संयोजित करती है। संयोजन की विशिष्टता ही 'रचना' को सुन्दर बनाती है। यह संयोजन जितना ही संतुलित होगा, उपन्यास भी उतना ही खूबसूरत होगा।

इस पुस्तक के तीनों हिस्से (विवेचन, पत्र शैली और रचना प्रक्रिया) जिन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को सामने लाते हैं वे हैं- विश्वसनीयता, ऐतिहासिक आवश्यकता, योजनाबद्धता, यथार्थवाद का प्रकृतिवाद से अलग होना

और उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता। मोटे तौर पर इन्हें ही हम राजेन्द्र यादव के उपन्यासालोचन के औजार के रूप में देख सकते हैं। राजेन्द्र यादव का बहुत जोर उपन्यास के कथानक की विश्वसनीयता पर है, और इसके लिए वे मन:स्थितियों के चित्रण, छोटे-छोटे ऑब्जर्वेशन्स और गहरी अंडरस्टैंडिंग की बात करते हैं। इन सब बातों के साझे प्रभाव से उपन्यास रोचक तो बनता ही है, अनुभवाधारित ब्यौरों से उसमें वह गहराई और विश्वसनीयता भी आती है जो किसी भी अच्छे उपन्यास से अपेक्षित है।

उपन्यास को योजनाबद्ध ढंग से लिखने को राजेन्द्र यादव उसके स्वाभाविक विकास में बाधक मानते हैं "सब मिलाकर 'तमस' एक योजनाबद्ध उपन्यास है; इसलिए स्थितियाँ यहाँ विकसित नहीं होतीं, सिर्फ उद्घाटित होती हैं- कुछ-कुछ जासूसी उपन्यास की तरह।" वास्तव में संरचना की दृष्टि से उपन्यास दो तरह के होते हैं- सुनियोजित और अनियोजित। सुनियोजित उपन्यासों में उपन्यास की सम्पूर्ण संरचना की योजना बनी-बनाई होती है। ऐसे उपन्यासों में चरित्र और स्थितियों पूर्व निर्धारित होती हैं। इसलिए कई बार उपन्यास की पूरी संरचना में संगति का अभाव भी दिखाई देता है। दूसरी ओर अनियोजित उपन्यासों में रचनाकार का हस्तक्षेप कम-से-कम होता है। चरित्र और घटनाओं का स्वाभाविक गति से विकास होता है।

राजेन्द्र यादव उपन्यास में यथार्थ की प्रस्तुति को आवश्यक तो मानते हैं लेकिन उसके प्रकृतवाद की सीमा तक जाने से बचने की वकालत भी करते हैं। "वस्तुस्थिति को एक यथार्थ कोण से रखा जाए, यहाँ तक तो प्रेमचन्द के बाद अपने समकालीन अधिकांश उपन्यासकारों में अश्क आगे हैं- लेकिन इस यथार्थ में भी चुनाव की आवश्यकता है, कलम साधकर लिखने की जरूरत है - यह उसने अभी नहीं समझा।" इस चुनाव के बिना ही -यथार्थ प्रकृतिवाद रह जाता है- फोटोग्राफी बन जाता है- फलत: प्रतिनिधि या टाइप नहीं बन पाता। यथार्थ टाइप न हो- यह उसकी अकलात्मकता का पहला प्रमाण है। लेकिन इस चुनाव और विविधता का परिण ाम यह न हो कि यथार्थ खण्ड-खण्ड में इतस्तत: बिखर जाए। रामविलास शर्मा ने 'संस्कृति और साहित्य' में इसी डर की ओर संकेत किया है- "बड़े-बड़े उपन्यास लिखने में यह खतरा रहता है कि जीवन की विविध ता दिखाते हुए उसकी सम्बद्धता का ही लोप न हो जाए।" राजेन्द्र यादव के अनुसार इसका आशय यह नहीं है कि कुशल केमरामैन होता ही बुरा है- या प्रकृतिवाद कोई ऐसी अवांछनीय वस्तु है। प्रकृतिवाद या फोटोग्राफी में सबसे बड़ा दोष ही यह है कि उसके द्वारा जो जितना विकसित है आप उसे ही दिखा सकते हैं- आपके सारे वर्णन और व्याख्याएँ- जो जितना है उतने तक ही सीमित है। विकास की संभावनाएँ और दिशाएँ आप उसमें से उभरती नहीं दिखा सकते क्योंकि उसका यथार्थ गतिशील नहीं होता।

उपन्यास में राजेन्द्र यादव उसके शीर्षक को भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। ममता कालिया को लिखे एक पत्र में उन्होंने लिखा- "वस्तुत: जिन दिनों मैं उपन्यास को लिख रहा था उन दिनों इसका नाम दिया था- 'एक चुंबन'। लेकिन हमेशा एक डर बना रहता था कि यह नाम उपन्यास को एक अवांछनीय धरातल दे देगा। 'टीन एजर्स' को 'चुंबन' शब्द में ही एक थ्रिल और गोपनीयता की गंध मिलती है। उनके लिए एक ओर जहाँ यह कागज चढ़ाकर एकांत में पारायण करने वाली मनोरंजक रचना हो जाएगी, वहीं संस्कारी पाठक चुंबन नामक क्रिया को ही उपन्यास की धुरी मानकर पढ़ेगा, जिस तरह चेखव की कहानी 'द किस' को पढ़ता है। इस प्रकार दोनों ही कथ्य से भटक जाएँगे।" राजेन्द्र यादव के अनुसार शब्द की केवल एक ही शक्ति नहीं

होती – अभिधा के अलावा लक्षणा और व्यंजना शक्तियाँ भी होती हैं। ऐसा दुहराते हुए उनका आग्रह है कि शीर्षक में व्यंग्य होना ही चाहिए।

इस किताब में राजेन्द्र यादव औपन्यासिक सन्दर्भों की खोज, विकास की दिशाएँ, सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ, रूप, शिल्प और भाषा के दृष्टिकोण से विचार करते हुए एक अलग राह बनाने की कोशिश करते हैं। 'अठारह उपन्यास' के माध्यम से राजेन्द्र यादव एक नई समीक्षा दृष्टि लेकर उपस्थित हुए हैं। रचना में प्रवेश के लिए राजेन्द्र यादव ने कई-कई युक्तियों का इस्तेमाल तो किया ही है,पत्र-शैली की सीधी-सरल युक्ति में भी वे रचना का भेद खोलने में सफल रहे हैं। समीक्षा से रचना-प्रक्रिया तक के इस क्रम में राजेन्द्र यादव स्वयं को भी कुछ इस तरह शामिल कर लेते हैं, भले ही संकोच के साथ (हाँ, संकोच होता है कि अठारह उपन्यास में तीन मेरे अपने हैं। इसीलिए बाकी समीक्षाएँ प्रचलित 'आयोजन' जैसी लग सकती हैं।) जैसे अपने रचनाकार-व्यक्तित्त्व को भी वे एक खास दूरी से देख रहे हों।

डॉ० विद्यानिवास मिश्र के प्रमुख ललित निबंधों में केन्द्रीय तत्व

डॉ० अरुण कुमार मिश्र
असि० प्रो०, हिन्दी
एम०डी०पी०जी० कॉलेज, प्रतापगढ़

उद्देश्य :

डॉ० विद्यानिवास के प्रमुख ललित निबंधों में केन्द्रीय तत्व की तलाश करना है। इसमें निबंध के विकास क्रम के साथ-साथ अपने समय के परिवेश को किस प्रकार से उन्होंने जीवंत बनाने का प्रयास किया है। इसमें इन्हीं तत्वों को केन्द्र में रखकर अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ (Referance) : 10

संकेत शब्द (Key Words़- आत्माभिव्यंजन, अनुशीलन, पल्लवित

स्वतंत्रता के बाद के काल में भी ललित निबंध लेखन के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी प्रयास दिखाई देते हैं, जिसके कारण ललित निबंध साहित्य अपने चरमोत्कर्ष पर अवस्थित होता है। इस काल में निबंधकारों की बाढ़ सी दिखाई देती है, किंतु फिर भी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी को इस युग का प्रवर्तक साहित्यकार माना जा सकता है। इनके अतिरिक्त कुछ और मूर्धन्य निबंधकार इस युग में अपना योगदान प्रदान करते हैं जिनके विषय में संक्षिप्त संकेत हम आगे की चर्चा में करेंगे।

भारतेंदु युग में अंकुरित होने वाला ललित निबंध का बीज विभिन्न कालों में वृद्धि को प्राप्त होता रहा। इसीलिए इस काल को ललित निबंधों का विकास काल कहा गया। इस काल में ललित निबंध ने अपनी चरम प्रतिष्ठा को प्राप्त किया जिसमें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का सर्वश्रेष्ठ योगदान प्रस्तुत होता है। उसी के कारण निबंध साहित्य पुष्पित तथा पल्लवित हो सका। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ललित निबंधों की जो पृष्ठभूमि तैयार की थी उसी पर आचार्य द्विवेदी जी ने एक वटवृक्ष उगाया। विकास की प्रक्रिया यही नहीं रुकी अपितु आचार्य द्विवेदी से प्रारंभ होकर विद्यानिवास मिश्र तथा कुबेरनाथ राय तक पहुंचती है। इस युग के निबंध साहित्य में विषय वैविध्य के साथ-साथ जीवन के अनेकों पक्षों का चित्रण तथा मूल्यांकन हुआ है। एक तरु जहां मूल्य संक्रमण की पीड़ा प्रस्तुत होती है तो वहीं दूसरी ओर अनास्था, आत्म निर्वासन तथा उत्कट जीवन बोध भी संभव हो पाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह काल उत्कर्ष का काल सिद्ध होता है। मानवीय जिजीविषा तथा युगबोध के स्वर ही निबंधों के स्वर बनते हैं। भाषा तथा शैली की दृष्टि से भी विविधता विद्यमान है,

जिसके कारण आत्माभिव्यंजन अधिक प्रभाविता के साथ संभव हो सका है। प्रचलित साहित्य की लगभग सभी विधाएं ललित निबंधों में पच गई हैं। संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, फेंटेसी, कहानी तथा एकांकी, पत्र, मोनोलॉग जैसी समस्त विधाएं ललित निबंध के अंतर्गत प्रविष्ट हो गई। इन सबके बावजूद ललित निबंध का अपना स्वयं का स्वरूप अक्षुण्य बना रहा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग में ललित निबंधों के सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा उसकी स्थिति को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया गया तथा वह एक निश्चित संज्ञा का अधिकारी इसी युग में बन पाया। ललित निबंधकारों की एक समर्थ पीढ़ी इस युग में सक्रियता के साथ अपना योगदान प्रस्तुत करती दिखाई पड़ती है, जिसमें आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, कुबेरनाथ राय, शिवप्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, ठाकुर प्रसाद सिंह, डॉ०. नगेंद्र, विवेकी राय तथा विद्यानिवास मिश्र जैसे निबंधकार शामिल हैं। इनके अतिरिक्त श्रीराम शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, देवेंद्र सत्यार्थी, भदंत आनंद, कौशल्यायन, भगवतशरण उपाध्याय, प्रभाकर मच्वे, जगदीश चंद्र माथुर, नामवर सिंह जैसे नाम भी इसी युग की महत्वपूर्ण निधि हैं। इन सब निबंधकारों के उल्लेखनीय प्रयासों ने निबंध साहित्य को और भी समृद्ध बनाया। चर्चा के इस पड़ाव पर हम उपरोक्त निबंधकारों में से कुछ के विषय में संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

ललित निबंधों के विकास काल के प्रमुख निबंध लेखक के रूप में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रकट होते हैं जिन्हें ललित निबंध परंपरा का जनक भी माना जाता है। आचार्य द्विवेदी व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे। विद्वता और सहृदयता का अद्‌भुत संयोग उनमें दिखाई पड़ता था। संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्व ान आचार्य द्विवेदी की भाषा शैली अत्यधिक परिमार्जित तथा व्यवहार शिष्टता का प्रतीक था। संस्कृत साहित्य के साथ-साथ उन्होंने भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन तथा ज्योतिष के विषय में भी गहन अध्ययन किया था। इसलिए उन्हें भारतीय मूल्य परंपरा का गंभीर ज्ञान था। तभी तो उनके निबंधों में भारतीय संस्कृत के उदात्त पक्ष सम्मिलित हो जाते हैं। डॉ०. नगेंद्र अपनी प्रसिद्ध पुस्तक हिंदी साहित्य का इतिहास में इस बात को रेखांकित करते हुए कहते हैं- "उनके ललित निबंधों में सांस्कृतिक विरासत के वर्चस्व के साथ नवीन जीवन-बोध, उत्कट जिजीविषा और नई सामाजिक समस्याओं के बीच राह पाने की ललक सर्वत्र दिखाई पड़ती है। द्वि बेदी जी का व्यक्तित्व लचीला और निरंतर विकास मान है। देश की नई से नई गत्यात्मक विचारधारा से वे अपने को ही जोड़ लेते हैं और इस प्रकार अपनी ऐतिहासिक दृष्टि को नए सिरे से समंजित करते रहते हैं।"[1]

आचार्य द्विवेदी के प्रमुख निबंधों में 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता', 'विचार-प्रवाह', 'कुटज', 'आलोक पर्व' आदि निबंध संग्रह ललित निबंध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण आयाम स्थापित करते दिखाई देते हैं।

वासुदेव शरण अग्रवाल के निबंध भारतीय संस्कृति को पुनर्परिभाषित करते प्रतीत होते हैं। इनका जितना संबंध भारतीय संस्कृति से है उतना ही लोकजीवन से भी संबद्ध दिखाई देते हैं। एक पुरातत्व वेत्ता की भांति वह समस्त तथ्यों की गहराग्र से पड़ताल करते हैं। इस प्रकार उनके निबंधों की दृष्टि शोध परक हो जाती है।

इनकी भाषा शैली अत्यंत प्रांजल है। इनके प्रमुख श्रेष्ठ निबंधों में 'वाग्धारा', 'कल्पवृक्ष', 'मातृभूमि', 'पृथ्वी पुत्र', 'वेद विधा' जैसे निबंध सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर आलेखित किए गए हैं।

कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर भी ललित निबंधों के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान प्रस्तुत करते हैं। उनके निबंधों में भावुकता के साथ-साथ व्यंग्य का समन्वय दिखाई पड़ता है। भाषा शैली में ऐसा प्रवाह है कि सामान्य सा विषय भी विशिष्ट बन जाता है। उनके प्रमुख निबंध 'बाजे पायलिया के घुंघरू', जिंदगी 'मुस्काई, जिंदगी लहराई', 'माटी हो गई सोना', 'कारवां आगे बढ़े' तथा 'महके आंगन चहके' आदि ललित निबंधों के अग्रगण्य उदाहरण के रूप में प्रख्यापित किए जा सकते हैं।

ललित निबंधों की दृष्टि से धर्मवीर भारती का एक महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने तारसप्तक, कनुप्रिया तथा ठंडा लोहा की रचना के माध्यम से अपनी उत्कृष्ट रचना शैली का प्रदर्शन किया है। उनके निष्कर्ष गहन चिंतन पर आधारित है तथा भाषा शैली में विनोद तथा व्यंग्य दोनों का अद्‌भुत समन्वय विद्यमान है। उनकी भाषा की प्रवाहिता कहीं से भंग नहीं होती, जिसके कारण उनके निबंधों का लालित्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। अब तक प्रकाशित प्रमुख निबंध संग्रह में 'ठेले पर हिमालय', 'कहनी अनकहनी' और 'पश्यन्ती' आदि ललित निबंध के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित करते हैं।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न निबंधकार हैं। एक श्रेष्ठ कवि, श्रेष्ठ उपन्यासकार तथा श्रेष्ठ कहानीकार के साथ-साथ उत्कृष्ट संपादक भी हैं। ललित निबंध के क्षेत्र में उनका योगदान अविस्मरणीय है। उनके निबंध अत्यंत जीवंत प्रकृति के हैं जिसका कारण उनकी अनौपचारिक भाषा तथा पद लालित्य है। उनकी शैली अत्यंत सहज है, जिससे उनका निबंध साहित्य अधिक रुचिकर हो जाता है। 'त्रिशंकु', 'सबरंग', 'आत्मनेपद', 'आलवाल', 'भवंती', 'जोगलिखी' और 'लिखि कागद कोरे' जैसे निबंध संग्रह हिंदी साहित्य के अनूठे रत्न है। इसी लेखन परंपरा में एक महत्वपूर्ण ललित निबंधकार डॉ०. विद्यानिवास मिश्र का नाम भी उल्लेखनीय है जिनके विषय में चर्चा हम अगले क्रम में करेंगे। जैनेंद्र कुमार मूलतः कथाकार और उपन्यासकार माने गए, किंतु उनके भाव विचारों को सही मंच तो निबंधों के माध्यम से ही प्राप्त हो सका है। अपने निबंधों में उन्होंने अपनी दार्शनिकता का परिचय कराया है जो उनके नई जीवन दृष्टि को प्रमाणि ात करते हैं। समाज के प्रायः सभी विषयों पर उन्होंने प्रकाश प्रक्षेपित करने का प्रयास किया है जिसमें धर्म, राजनीति, संस्कृति, साहित्य, सेक्स तथा प्रेम विवाह जैसे ज्वलंत सामाजिक मुद्दे हैं। इन ज्वलंत मुद्दों पर खुलकर चर्चा करने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता। साहित्य जगत में मूलतः कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त रामधारी सिंह दिनकर ने ललित निबंधों के क्षेत्र में भी अपना अप्रतिम योगदान प्रस्तुत किया है। इनकी प्रमुख रचनाओं में 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' खास तौर पर चर्चित हैं। निबंध के क्षेत्र में भी इन्होंने 'अर्धनारीश्वर', 'मिट्टी की ओर' तथा 'रेती के फूल' जैसे निबंध संग्रहों द्वारा व्यक्ति व्यंजक निबंध लिखे हैं। नाटकों के क्षेत्र में अपना अप्रतिम योगदान प्रस्तुत करने वाले मोहन राकेश भी ललित निबंधों का प्रणयन करते हैं। उनका प्रमुख निबंध संग्रह 'परिवेश' के नाम से प्रकाशित हुआ। उनके द्वारा कई प्रकार के रिपोर्ताज तथा यात्रा वृत्त के साथ-साथ संस्मरण भी प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं शुक्लोत्तर युग में ललित निबंध साहित्य का अद्‌भुत विकास होता है, जिसके कारण इसे ललित निबंध साहित्य का प्रस्तरण काल अथवा विकास काल कहा जाता है।

शुक्लोत्तर युग के एक प्रमुख ललित निबंधकार तथा ललित निबंध परंपरा के श्रेष्ठ शिल्पी पंडित विद्यानिवास मिश्र के विषय में चर्चा किए बिना संपूर्ण अध्ययन अधूरा रह जाएगा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जिस रचना परंपरा का प्रादुर्भाव किया था पंडित विद्यानिवास मिश्र उसी पथ पर चलने वाले पथिक हैं। आचार्य द्विवेदी की भांति ही उनकी शैली पांडित्य पूर्ण तथा कोमल भाषा से युक्त है जिसमें स्निग्धता, तथा भाव प्रवाहिता विद्यमान है। ललित निबंधों को व्यक्ति व्यंजक निबंधों के स्वरूप में स्वीकार करने वाले पंडित विद्यानिवास मिश्र भाषा का मर्मज्ञ होने के साथ-साथ सकारात्मक लचतन के पुरोधा हैं। इनके लेखन की सर्व प्रमुख विशेषता यही है कि इन्होंने केवल ललित निबंधों को ही अपने लेखन के लिए चुना तथा संस्कृत भाषा एवं साहित्य के उद्भट विद्वान होने के कारण इनकी भाषा शैली अत्यंत लालित्य से परिपूर्ण हो गई। संस्कृत भाषा में व्याप्त मधुरता इनके निबंधों में भी स्पष्टत: देखी जा सकती है। उन्होंने संस्कृत वांग्मय का न केवल अध्ययन किया था बल्कि उसमें निहित विचार तत्वों का गहन मंथन भी किया था। डॉ०. मिश्र ग्रामीण समाज तथा लोकजीवन को निकटता से अनुभूत करते हैं, जिसके कारण उनके निबंध जनसामान्य के अत्यंत निकट पहुंच जाते हैं। ग्रामीण समाज का जिस उत्कृष्टता के साथ उन्होंने चित्रण किया है वह उनकी लेखन शैली का जीता जागता प्रमाण है। डॉ०. एस०एल० कुमारी के शब्दों में- "डॉ०. विद्यानिवास मिश्र ने लेखनी को एकमात्र ललित निबंधों की ओर ही प्रवृत्त किया है। आप संस्कृत भाषा एवं साहित्य के उद्भट विद्वान हैं। संस्कृत वांग्मय का उन्होंने भली-भांति मंथन भी किया है, किंतु उनकी रुचि लोक जीवन एवं ग्रामीण समाज की ओर भी अत्यधिक रही है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में जहां एक और संस्कृत के शास्त्रीय वैभव का उज्जवल आलोक दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर लोक जीवन एवं लोक संस्कृति की चांदनी छिटकती हुई दृष्टिगोचर होती है।"[2]

डॉ० रामचंद्र तिवारी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंदी का गद्य साहित्य' में मिश्र जी की विशेषता का उल्लेख करते हुए कहते हैं- "मिश्र जी के प्रारंभिक निबंधों में धरती की गंध तथा लोक संस्कृति की आर्द्रता एवं मांगलिकता प्रधान थी। क्रमश: आप के निबंधों की भाव भूमि विस्तृत होती जा रही है। अब आपका ध्यान शिक्षा, भाषा, राष्ट्रीयता, व्यक्ति स्वातंत्र्य जैसे विषयों पर केंद्रित होने लगा है। साथ ही आप में व्यंग का तीखापन भी उभर कर आया है। आपके निबंधों का आकर्षण तो कम नहीं हुआ है किंतु अब उनमें लोक संस्कृति एवं लोक जीवन की सरसता, निर्मलता, मांगलिकता एवं उदात्तता के स्थान पर जीवन की कुरूपताओं एवं रूढ़ियों के प्रति क्षोभ व्यंजना लक्षित होने लगी है।"[3]

वस्तुत: देखा जाए तो विद्यानिवास मिश्र और ललित निबंधों का चोली दामन का साथ है। दोनों एक दूसरे के पर्याय बन गए हैं। मिश्र जी का व्यक्तित्व इतना ओजस्वी तथा मधुमय है कि उसकी छाप उनके निबंधों पर पूरी प्रखरता के साथ पड़ती है। इसीलिए लालित्य की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। तभी तो डॉ० परमानंद श्रीवास्तव इस बात का उल्लेख करते हुए कहते हैं- "हिंदी में ललित निबंध और विद्यानिवास मिश्र एक दूसरे के पर्याय हो गए हैं। अजब है कि उनके सृजनशील व्यक्तित्व तथा चिंतक व्यक्तित्व के सभी आयाम ललित निबंध जैसी संज्ञा के साथ जुड़ी उनकी विशिष्ट पहचान से आच्छादित हो चले हैं।"[4]

पंडित विद्यानिवास मिश्र एक तरफ जहां भारतीय संस्कृति के अदम्य पुजारी हैं तो वहीं दूसरी ओर आधुनिकता को भी नजरअंदाज नहीं करते। अपने निबंधों की लालित्य वृद्धि करने के उद्देश्य से उन्होंने पुराणों तथा शास्त्रों में उल्लिखित सूक्तियां का प्रयोग भी बड़ी ही चतुराई के साथ किया है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसा करते समय उनकी भाषा की तारतम्यता कहीं से भी भंग नहीं होती है और लालित्य की बूंदें टपकती चली जाती है। उनका लोक मानस लोक वीथियों में ही विचरण करता रहता है और लोकजीवन के समस्त पक्षों का रसास्वादन करता है। वे ग्रामीण जीवन तथा ठेठ गांव की पद्धति को जीने वाले साहित्यकार हैं। उनके जीवन में कोई बनावट दिखाई नहीं पड़ती। डॉ० रामचंद्र तिवारी के अनुसार– "बौद्धिक धरातल पर उच्चतर मूल्यों की व्याख्या में रत मित्र जी का रससिक्त मन ठेठ गांव का है। इसी मन ने मिश्र जी को नकली जिंदगी जीने से बचाया है। इसी ने उनकी रचनाओं को लालित्य प्रदान किया है। इसी के बल पर मिश्र जी व्यक्ति व्यंजक निबंधों की एक नई दुनिया रचने में सफल हुये हैं। इस क्षेत्र में उनसे कुछ पाने की आशा अब भी शेष है।"[5]

'अज्ञेय' जी भी मानते हैं कि विद्यानिवास मिश्र ने संस्कृत वांग्मय का विधिवत अध्ययन किया और उसका मंथन करके उसका नवनीत चखा है। न केवल संस्कृत भाषा अपितु अरबी तथा फारसी के शब्दों का भी उनके निबंधों में यदा–कदा प्रयोग देखा जा सकता है। वे भारतीय संस्कृति को सहचरी के रूप में साथ लेकर चलते हैं। भाषा में चित्रमयता के साथ–साथ गजब की रमणीयता विद्यमान है। अज्ञेय जी के अनुसार– "रंजित सर्जनात्मक गद्य के रचयिताओं में डॉ० विद्यानिवास मिश्र अग्रगण्य है। उन्होंने संस्कृत साहित्य को मथ कर उसका नवनीत चखा है और लोक–वाणी की गोरज– गंध से सदा स्फूर्ति भी पाते रहे हैं। ललित निबंध वह लिखते हैं तो लालित्य के किसी मोह से नहीं, इसलिए कि गहरी, तीखी, आमंत्रण या चुनौती भरी बात भी वह एक बेलाग और निदर्वेष बल्कि कौतुक–भरी सहजता से कह जाते हैं।"[6]

डॉ० मिश्र नगरीय जीवन के स्थान पर लोक जीवन को अधिक महत्व प्रदान करते हैं और दिनों दिन बढ़ते हुए नगरीकरण को लेकर क्षुब्ध भी होते हैं। यदि हम उनके व्यक्तित्व एवं लेखन का समग्रता के साथ मूल्यांकन करना चाहें तो हम श्रीमती 'विमला सिंहल' लिखित 'समकालीन ललित निबंध: एक विहंगम दृष्टि में उल्लेखित निम्न पंक्तियों को उद्धृत कर सकते हैं– "विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों की यह विचार–यात्रा हमें धरती के धर्म से अवगत कराती हैं, लोक कथाओं और लोक गीतों के कर्म को सुझाती है। साहित्यकार के रूप में वे सम्पूर्ण अग जग की पीड़ा को अपने में समेट लेना चाहते हैं। उनके चिन्तन का द्वैत और तद्जनित तनाव हमें अनुभूत होता है। वे पक्षी बनकर आँगन के आस–पास चहकना चाहते हैं तो उनका मन बनजारा बन कर भटकना चाहता है। यायावरी वृत्ति के आकर्षण ने उन्हें क्फ़ी बोध सम्पन्न बनाया है। वे परम्परा और ट्रेडिशन, इतिहास और इतिवृत्त–धर्म और रिलिजन, संस्कृति व कल्चर का पुंखानुपुंख विवेचन कर हमारी सम्पूर्ण चेतना को झकझोर देना चाहते हैं तथा हमें आमन्त्रित करते हैं हमें युगीन राजनीतिक सामाजिक, भाषा विषयक समस्याओं को जिन पर लेखक ने समय–समय पर मंथन किया है, सही परिप्रेक्ष्य में देखें।"[7]

सन 2001 में इस निबंध संग्रह का प्रकाशन हुआ। इस संग्रह में निबंधकार ने अपने जीवन से जुड़ी घटनाओं का चित्रण किया है। संग्रह के प्रारंभिक सात निबंध उनके स्वयं के जीवन से जुड़े हुए तथ्यों का उद्घाटन करते हैं, साथ ही समकालीन अन्य साहित्यकारों के जीवन के चित्र को भी उभारते हैं। इस प्रकार

इन निबंधों को संस्मरणात्मक निबंधों की कोटि में रखा जा सकता है। संग्रह के चार निबंध तो भोजपुरी भाषा में लिखे गए हैं जो इन निबंधों के लालित्य को प्रदर्लशत करते हैं। इन निबंधों को 'भोजपुरी से हमार नाता' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा गया है।

संग्रह के प्रथम निबंध 'मेरे गुरुदेव: आचार्य क्षेत्रेशचन्द्र' में मिश्र जी ने स्वयं के कुल गुरु आचार्य क्षेत्रेश चंद्र की महिमा तथा उनके व्यक्तित्व का बखान किया है जिनमें सरलता तथा सहृदयता कूट-कूट कर भरी हुई थी। द्वितीय निबंध "राहुल जी के साथ" निबंध में राहुल सांकृत्यायन से जुड़े हुए विभिन्न संस्मरणों को उद्धृत किया गया है। "वन का छन्द: अज्ञेय" निबंध सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' को समर्पित है। इस निबंध को पुणे विद्यापीठ में व्याख्यान के तौर पर दिया गया था। चौथे निबंध "गिर रहा है आज पानी: भवानी भाई की याद में" "भवानी प्रसाद मिश्र को समर्पित किया गया है तथा उनसे जुड़े हुए संस्मरणों की चर्चा की गई है।" जड़ों से जुड़े हुए नागार्जुन और शिवप्रसाद सिंह "निबंध में इन दोनों साहित्यकारों से संबंधित साहित्य" की चर्चा की गई है तथा उसके विभिन्न स्वरूपों को प्रकट किया गया है। 'साँझ के बादल धर्मवीर भारती' "धर्मवीर भारती से जुड़े संस्मरण" को याद किया गया है तथा साथ ही उनके साहित्यिक योगदान पर भी प्रकाश प्रक्षेपित किया गया है। "प्रकाश की किरण" "निबंध में विश्व स्तर पर राजनीतिक नेताओं में उत्तरोत्तर बढ़ रहे व्यभिचार तथा भ्रष्टाचार की विभीषिका" को रेखांकित किया गया है। इस दृश्य को आसमान में छाए हुये घने काले बादलों के समान प्रख्यापित करते हुए उनके बीच से भी प्रकाश प्रकट होने की आशा प्रकट की गई है। "अपने-अपने सरग: अपने-अपने नरक" निबंध में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना ही परिवेश प्रिय होता है। वही उसके लिए उसका स्वर्ग तथा उसका नर्क होता है। इस निबंध को पत्रात्मक शैली में लिखा गया है। "जीवन उत्सव है" निबंध में निबंधकार इस नश्वर लोक को ही शाश्वत लोक से सुंदर मानता है क्योंकि यहां जन्म लेने के लिए देवता भी तरसते रहते हैं। इसमें मातृभूमि की प्रतिष्ठा की गई है। इस निबंध में लेखक के दर्शन पक्ष का उद्घाटन हुआ है। 'मेरे आँगन के तुलसी में' गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित साहित्य की प्रासंगिकता को स्पष्ट करते हुए राम के विविध स्वरूपों का चित्रांकन है। "शोभा सिन्धु में बहे सूरदास" निबंध में सूर साहित्य की मीमांसा की गई है तथा उन्हें लोकरंजन कवि के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। "एक यह भी तीर्थ यात्रा" निबंध में लेखक द्वारा की गई विभिन्न तीर्थ यात्राओं की चर्चा है। गुजरात राज्य की यात्रा के दौरान पांडुरंग शास्त्री आठवले के साथ आत्मीयता का भी उल्लेख है। 'मेले बीते' निबंध में लेखक ने मानव जीवन को एक मेले के रूप में प्रख्यापित किया है जहाँ मेले की भांति ही मिलन तथा बिछोह है तथा सम्मान भी है और तिरस्कार भी। व्यक्ति को इन सभी प्रक्रियाओं से दो चार होना पड़ता है। 'चिड़िया रैन बसेरा' में मानव जीवन में अवश्यमेव आने वाली मृत्यु का उल्लेख है और इस संसार को चिड़िया के रैन बसेरे की उपमा दी गई है, जहां आने वाले व्यक्ति को अवश्य ही जाना पड़ता है अर्थात जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित होती है। 'वसन्त: तीन परिदृश्य' निबंध में बसंत का तीन परिदृश्य के माध्यम से विवेचन किया गया है। इसमें प्रथम परिदृश्य को 'बसंत का पट्टा' दूसरे परिदृश्य को 'बसंत: नए होने का दर्द' तथा तीसरे परिदृश्य को 'नए बसंत के द्वार पर' नामक शीर्षक से उद्धृत किया गया है। निबंध के अंत में हिंदी साहित्य के दो प्रसिद्ध साहित्यकारों पंडित बलभद्र मिश्र और डॉक्टर देवराज थे शरीर परित्याग की चर्चा की गई है। 'भोजपुरी से हमार नाता' निबंध में भोजपुरी साहित्य के विकास पर दृष्टिपात किया गया

है तथा साथ ही भोजपुरी बोलने वाले लोगों की समस्याओं का उल्लेख किया है। यह निबंध भोजपुरी साहित्य सम्मेलन में लेखक द्वारा अध्यक्षीय भाषण के रूप में दिया गया व्याख्यान है। यह भोजपुरी बोली में ही दिया गया था। 'मानिक मोर हेरइलें' निबंध में लेखक द्वारा भोजपुरी भाषा में अधिक लेखन कार्य न किए जाने पर अफसोस व्यक्त किया गया है। 'इमली के बीया' निबंधन लेखक अपने गांव की चौहद्दी का उल्लेख करते हुए ग्रामीण लोगों के प्रति अपने आत्मीय संबंध को प्रकट किया है। इसमें लेखक के बचपन की स्मृतियां उकेरी गई है। 'मिर्च टापू में एक पखवारा' निबंध में लेखक की मॉरीशस यात्रा का वर्णन है, जिसमें मारिशस के लोगों द्वारा अपनी संस्कृति को जीवंत रखने के प्रयास की सराहना करते हुए उनकी आत्मीयता की चर्चा की गयी है।

इस निबंध संग्रह का प्रकाशन सन् 2001 में हुआ था। इसमें हिंदी भाषा से संबंधित निबंधों को स्थान प्रदान किया गया है। हिंदी भाषा से संबंधित मिश्र जी के वक्तव्यों को एकीकृत करते हुए इस संग्रह का निर्माण हुआ है। क्षेत्र, जाति तथा वाद की संकीर्णता से हटकर हिंदी के विकास के लिए सतत प्रयास करने की आवश्यकता पर जोर देते हुए निबंधकार ने हिंदी के स्वरूप पर विमर्श किया है। यह संग्रह कुल 22 निबंधों से आच्छादित है। इनमें से कुछ निबंधों जैसे– 'जय रानी अंग्रेजी', 'भाषा और अस्मिता', 'हिंदी की हारी हुई लड़ाई जीतने के लिए', 'हिंदी और हिंदी भाषी राज्य सरकारें', 'भाषा साहित्य और भविष्यत', 'हिंदी बनाम राजनीति', 'हिंदी के कारण सांस्कृतिक अवरोध क्यों', 'हिंदी का विभाजन', 'राष्ट्रभाषा की समस्या' आदि निबंधों की चर्चा अन्य निबंध संग्रह में यथा स्थान की जा चुकी है। अतः उनको पुनः व्याख्यापित नहीं किया गया है। 'तकनीकी में हिन्दी की भूमिका' 'निबंध में हिंदी भाषा को विकास' के मुख्य साधन के रूप में स्वीकार करते हुए उसे संपर्क भाषा के रूप में स्थापित करने का आग्रह किया गया है। तकनीकी ज्ञान के विकास के लिए अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को ही अपनाने पर जोर दिया गया है। 'हिन्दी और उर्दू की प्रकृति' 'निबंध में हिंदी' तथा उर्दू भाषाओं की विशेषताओं को प्रख्यापित किया गया है तथा दोनों भाषाओं को लेकर तथाकथित राजनीतिज्ञों द्वारा उत्पन्न की जा रही भ्रमात्मक स्थिति को दूर करने का प्रयास किया गया है। 'भाषा और विभाषा' 'निबंध में हिन्दी एवं संस्कृत' के उत्थान की दिशा में कदम उठाया गया है तथा दोनों भाषाओं के साथ साथ किये जा रहे सौतेले व्यवहार पर क्षोभ प्रकट किया गया है। 'हिन्दी अपने भरोसे' निबंध में हिन्दी भाषा की सम्मान वृद्धि के लिए उचित एवं सार्थक प्रयास किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है और लेखक इस दिशा में आशान्वित भी है। 'आज तो हिन्दी अपनों ही से हारी है' 'निबंध में स्वतंत्रता के पश्चात' अपने लोगों द्वारा ही हिंदी के विकास के लिए कोई विशेष प्रयास न किए जाने तथा हिंदी को दोयम दर्जे की भाषा माने जाने पर दुख व्यक्त किया गया है। इस अर्थ में लेखक को हिंदी अपनों से ही हारती नजर आ रही है। 'हिन्दी समाज' 'निबंध में हिन्दी भाषा' के व्यापक विस्तार पर चर्चा करते हुए हिंदी भाषी लोगों की विशेषताएँ वर्णित की गई है। 'हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि : हिन्दी भाषा और उसकी विरासत' में हिन्दी भाषा के विकास की पृष्ठभूमि निर्मित करने के लिए संस्कृत, पाली तथा प्राकृत भाषाओं की भूमिका पर चर्चा की गई है तथा अन्य बोलियों को उसकी सहायक के रूप में स्वीकार किया गया है। वर्तमान समय में हिंदी भाषा पर पड़ रहे अनैतिक राजनैतिक दबाव तथा हिंदी की वर्तमान परिस्थिति के संबंध में 'हिंदी और हम' निबंध के पृष्ठ 100 पर अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लेखक स्वयं लिखता है– 'इस समय हिंदी सत्ता के दबाव में है। वह नदी

के भीतर पहाड़ खिसक जाने से जो होता है वैसी हालत में है।' 'न ययौ न तस्थौ' न आगे बढ़ पाती है, न कुण्ड बनकर रह पाती है। वह खौल रही है।'[8]

'अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी की क्षमता' 'निबंध में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी भाषा' को पहचान दिलाने के लिए प्रयासरत रहने का आग्रह किया गया है तथा इस कार्य के लिए हिंदी भाषा को पूर्ण सक्षम स्वीकार किया गया है। 'हिन्दी–मानसिकता–निर्माण' की आशा आने वाली पीढ़ी से 'निबंध में हिंदी' को प्राचीन तथा स्वाभिमानी भाषा मानते हुए पुरानी पीढ़ियों द्वारा उसके विकास की दिशा में की गई त्रुटियों को नजरअंदाज करते हुए आगामी पीढ़ी से हिंदी के विकास की दिशा में सार्थक प्रयास करने की अपील की गई है। 'हिन्दी भाषा', राजभाषा 'निबंध में हिंदी को राजभाषा' के रूप में स्वीकार करने के पीछे उठ रहे मतभेदों की चर्चा की गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही हिंदी के प्रति पक्षपात पर लेखक दुख व्यक्त करता है। 'आहत पर अप्रतिहत हिन्दी' 'निबंध में हिन्दी भाषा को अंग्रेजी भाषा के आधार पर संचालित करने के प्रयास में' हिंदी के हो रहे ह्रास पर चिंता व्यक्त की गई है। अन्तिम निबंध 'एक ऐतिहासिक भूल' में संविधान निर्माण के समय हिंदी भाषा को लेकर की गई भूल को उद्धृत किया गया है जिसमें हिंदी को संपूर्ण हिंदुस्तान की भाषा घोषित न करना तथा पंजाबी भाषा को भाषा सूची में शामिल न करना आदि भूल के रूप में माना गया है।

इस निबंध संग्रह का प्रकाशन सन् 2001 में हुआ था। यह निबंध संग्रह 17 वैचारिक निबंधों से आच्छादित है। प्रारंभ के दो निबंध 'हम क्या हैं?' तथा 'देश की पहचान' की चर्चा अन्य संग्रह में की जा चुकी है। निबंध 'भारतीय परम्परा उच्छलित लोक' में भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ उजागर की गई है। 'भारतीयता की खोज: अंधधार्मिकता और नयी खोज' निबंध में लोक संस्कारों में निहित शास्त्रीय मान्यताओं को स्पष्ट किया गया है। यह निबंध मिश्र जी द्वारा दिया गया एक व्याख्यान है। 'विश्वसंस्कृति में विकल्पों की खोज: भारत' नामक निबंध में उस मानसिकता का दिग्दर्शन है जिसमें आधुनिक विज्ञान द्वारा सुख की अनंत सुविधाओं को विकसित कर लेने के कारण कुछ लोग अपने को श्रेष्ठ समझने लगते हैं तथा विश्व पर वर्चस्व कायम करने की महत्वाकांक्षा पाल लेते हैं। 'आस्था, विश्वास और श्रद्धा' निबंध में इन तीनों को प्रख्यापित करते हुए इनके भेद को स्पष्ट किया गया है। 'राजनीति और मूल्य' निबंध में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गिरते हुये राजनीतिक मूल्यों की भर्त्सना की गई है। 'विकास की सही दिशा' निबंध में इस बात को सिद्ध किया गया है कि सुख केवल धन के आधिक्य से नहीं बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार से प्राप्त किया जा सकता है। 'साधुमत' और 'लोकमत' दोनों निबंध मिश्र जी के द्वारा डॉ० राजेन्द्रप्रसाद स्मारक माला के अन्तर्गत व्याख्यान के रूप में दिए गए हैं। इन निबंधों में डॉ० राजेंद्र प्रसाद से जुड़ी अनेकों घटनाओं का चित्रण है तथा साथ ही साधु पुरुष की विशिष्टता के साथ लोक चेतना का भी प्रख्यापन है। 'मर्यादा और मर्यादा का अतिक्रमण: तुलसी का सन्दर्भ' भी एक व्याख्यान है जिसे तुलसी पंचशती समारोह के अवसर पर खण्डवा में दिया गया था। इसमें रामकथा के विभिन्न पात्रों द्वारा मर्यादा पालन तथा मर्यादा भंग करने को दर्शाया गया है। विशेष परिस्थितियों में मर्यादा भंग करना भी मर्यादा पालन के समान ही श्रेष्ठ घोषित किया गया है। 'भारतीय आत्मीयता की कथा: तुलसी की रामकथा' निबंध में तुलसी द्वारा वर्णित राम कथा के प्रति भक्तों के अनुराग को दर्शाया गया है। राम कथा के बारे में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए डॉ० विद्यानिवास मिश्र लिखते है– 'रामकथाएँ अनेक हैं

पर तुलसीदास जी की रामकथा की विशेषता यह है कि रामकथा की मिति, उसका माप राम से नहीं होता, उसका माप होता है राम के द्वारा संचारित ऐसी चिन्ता से जो राम की उपस्थिति से उद्‌भाषित हो जाता है।'[9]

'काल और कला की लीला' निबंध में काल को भगवान की सहकारिणी शक्ति के रूप में निरूपित किया गया है। इसी काल शक्ति के कारण ही स्वयंभू कश्यप ने भी अवतार ग्रहण किया। कला को यहाँ अमृत के रूप में माना गया है। 'साधारणीकरण' निबंध में मिश्रजी ने साधारणीकरण के संबंध में अपना अभिमत प्रकट किया है। 'भारतीय कला-दृष्टि का आधार' निबंध में मिश्र जी ने कला की सृष्टि के लिए सहभागिता को आवश्यक तत्व माना है जिसके लिए स्वरूप-विमर्श सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। अन्तिम निबंध 'भक्तिरस' में विभिन्न पौराणिक प्रसंगों के माध्यम से भारतीय कला को भगवान से भावित माना गया है। यह निबंध 'स्व. डॉ० प्रेमलता' 'शर्मा' की स्मृति व्याख्या में दिया गया प्रथम व्याख्यान है।

इस निबंध संग्रह का प्रकाशन सन 2002 में हुआ था। इन निबंधों की प्रकृति व्यंग्यात्मक होने के कारण इनमें व्यवस्थाओं के प्रति व्यंग्य की छटा विद्यमान है। यह निबंध संग्रह कुल 17 निबंधों से आच्छादित है। इसके सभी निबंधों को दैनिक समाचार पत्र हिंदुस्तान के साप्ताहिक संस्करणों में प्रकाशित किया जा चुका है।

प्रथम निबंध 'दादुर वक्ता भए' में मेढ़कों के माध्यम से आधुनिक राजनीतिज्ञों तथा देशद्रोही लोगो पर करारा व्यंग्य कसा गया है। इस निबंध में यह स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार मेढ़कों की विभिन्न श्रेणियां होती है उसी प्रकार राजनीतिज्ञों की भी विभिन्न श्रेणियां हैं जो अनावश्यक रूप से टर्र टर्र करते रहते हैं। 'मौसी का जंगनामा: उद्योग पर्व' में पत्रकारिता तथा पत्रकारों की वर्तमान कार्य पद्धति पर व्यंग्य कसा गया है, साथ ही कुछ शक्तिशाली देशों द्वारा छोटे देशों को दी जा रही गीदड़ भभकी को भी अनुचित बताया गया है। 'बनारस में भैंस' निबंध शिक्षा जगत से जुड़ा हुआ निबंध है जिसमें वर्तमान शिक्षा पद्धति की तुलना भैंस से करते हुए करारा व्यंग्य किया गया है। इसमें भैंस के विभिन्न नामों की भी व्याख्या की गई है। 'ज्योतिषी पन्नालाल' निबंध में ज्योतिषियों के पाखंड पर प्रहार किया गया है जो ज्योतिष शास्त्र का समुचित ज्ञान न होने के कारण मनगढ़ंत बातों के माध्यम से लोगों को दिग्भ्रमित करते हैं। 'राजधानी में बंदर और घोड़े' निबंध में आधुनिक राजनीतिज्ञों की तुलना बंदर तथा घोड़ों से की गई है जो अनावश्यक रूप से राजनीतिक गलियारों में उछल कूद मचाए रहते हैं। इन राजनीतिज्ञों में आपसी सहयोग न होने के कारण यह किसी भी राष्ट्रीय हित के मुद्दे पर एकमत नहीं हो पाते। 'मेघवर्ण वायस: वायस राग' में देश में तथाकथित धर्मनिरपेक्षता पर कटाक्ष के माध्यम से प्रहार किया गया है और इसे वायस राग अर्थात कौवे के द्वारा अलापा जाने वाले राग की उपाधि दी गई है। 'अथभंगारी कथा (चमगादड़ युग)' निबंध में ऐसे लोगों पर करारा प्रहार किया गया है जो समाज में विघटन का बीज बोते हैं तथा लोगों के मन में आपसी फूट तथा वैमनस्य को उत्पन्न करने का दुस्साहस करते हैं। 'काठ के उल्लू का क्या करे।' निबंध में भारत की गुप्तचर संस्था तथा मानवाधिकार आयोग की कार्यप्रणाली पर व्यंग्य कसा गया है। इसमें लेखक ने अपने ही जीवन की घटना की चर्चा की है। 'सियार मामा ने मून शाइन स्कूल खोला' निबंध में दल बदल की राजनीति में माहिर आधुनिक नेताओं पर कटाक्ष करते हुए वर्तमान शिक्षा पद्धति में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर किया गया है। 'चिड़ियों का अल्पसंख्यक राग' निबंध में राजनीतिक दलों तथा उनके नेताओं द्वारा अपने राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए वर्तमान में 'अल्पसंख्यक'

और 'बहुसंख्यक' के नाम पर की जा रही राजनीति पर व्यंग्य कसा है जिसमें अल्पसंख्यकों को बरग लाकर उनका राजनीतिक लाभ उठाया जाता है। यह स्थिति राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हितकारी नहीं है। 'कूड़ा-कचरावाद' निबंध में देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात उत्तरोत्तर बढ़ती भ्रष्टाचार तथा आतंकवाद की विभीषिका पर चिंता व्यक्त की गई है। 'देवलोक में सेकुलर जनतंत्र' निबंध में देश की लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए तथाकथित छद्म धर्मनिरपेक्षता पर व्यंग्य कसा गया है। 'देवलोक में सरकार गठित: आगे का हाल नारद बताएँगे' चुनाव के बाद बनाए जाने वाले मंत्रिमंडल की संरचना पर कटाक्ष किया गया है जिसमें विभिन्न समीकरणों को ध्यान में रखते हुए सिर्फ चुनावी दृष्टिकोण के आधार पर मंत्रिमंडल गठन किया जाता है जिसके कारण उपयुक्त व्यक्ति को मंत्रिमंडल में उचित स्थान प्राप्त नहीं हो पाता।

'मैं संपादकीय नहीं लिखूँगा' निबंध प्रकाशकों, लेखकों तथा संपादकों की समस्या से संबंधित है। 'भ्रमरानंद: फिल्म इंस्टिच्यूट में' निबंध द्वारा वर्तमान समय में की जाने वाली पत्रकारिता पर व्यंग्य है। 'आलोचक भ्रमरानंद' निबंध वर्तमान समय में की जा रही आलोचनाओं की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करता है जो उपयुक्त परिप्रेक्ष्य में नहीं की जाती। आलोचनाकार प्राय: निष्पक्ष भाव से आलोचना कर्म को नहीं करता। 'राजूदत का स्वप्न भंग' में वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के भोड़ेपन पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है। प्राय: देखा जाता है की मंत्रियों के चुनाव के समय नेताओं के मध्य आपसी खींचतान प्रारंभ हो जाती है।

कुल मिलाकर दस संस्मरणात्मक निबंधों से आच्छादित इस निबंध संग्रह का प्रकाशन सन् 2002 में हुआ था। किंतु पंडित विद्यानिवास मिश्र इन निबंधों को संस्मरणात्मक निबंध की कोटि में शामिल नहीं करते। इस विषय में अपने मंतव्य व्यक्त करते हुए वह स्वयं उद्धृत करते हैं- 'मैंने अपने जीवन के तिथि क्रम से कड़ियां नहीं लिखीं जो भी स्थान मेरे सामने किसी ब्याज से आ गया तो उससे जुड़े हुए संस्मरण अनायास चित्रपट की रील की तरह उभरने लगे। इन कड़ियों में क्रम का कोई महत्व नहीं है। .... ये कड़ियाँ न तो आत्मकथा हैं, न संस्मरण, ये बस स्मृति और प्रत्यक्ष की आँखमिचौनी के खेल की न थमने वाली दौड़ हैं।'[10]

इस संग्रह के कुछ निबंध जैसे 'चिड़िया रैन बसेरा', 'अपने गांव की बात', 'रीवा की बात' आदि निबंधों की चर्चा अन्य निबंध संग्रहों में की जा चुकी है। अत: उन्हें पुन: व्याख्यापितनहीं किया गया है।

'आमों आमोदित बौरा बसंत' निबंध में मिश्र जी द्वारा उनके इलाहाबाद में रुक कर अपनी शिक्षा दीक्षा पूर्ण करने के दौरान की स्मृतियों को चित्रित किया गया है तथा उनकी साहित्य एवं राजनीति की प्रमुख हस्तियों के साथ हुए संपर्क को भी उद्धृत किया गया है। 'बागों का शहर लखनऊ' निबंध में मिश्र जी द्वारा रीवा से लखनऊ आगमन पर वहां के राजनीतिक हालातों से अवगत होने तथा लखनऊ शहर के बाद गोरखपुर तक के प्रत्यागमन की परिस्थितियों का उल्लेख है। 'दिल्ली: कितनी चीन्ही, कितनी अनचीन्ही' में मिश्र जी के दिल्ली प्रवास की विविध घटनाओं का चित्रण है। इस निबंध के माध्यम से उन्होंने भारत की राजधानी कही जाने वाली दिल्ली की दशा का वर्णन है। 'मेरा ननिअउरा सहगउरा' मिश्र जी द्वारा लिखा गया एक संस्मरणात्मक निबंध है जिसमें मिश्रजी ने अपने ननिहाल की चर्चा के साथ-साथ वहाँ प्रचलित किवदंतियों का भी उल्लेख किया है। 'अफसोस कि दर आगरा वीरान' निबंध में मिश्रजी ने आगरा के 'कन्हैयालाल

माणिकलाल मुंशी विद्यापीठ' के निदेशक पद पर कार्यकाल के दौरान के संस्मरणों को व्यक्त किया है। अंतिम निबंध 'दुहरी भूमिकाओं का शहर' में गोरखपुर से संबंधित मिश्र जी के जीवन काल की प्रमुख घटनाओं तथा संपूर्ण शिक्षा दीक्षा की आयोजना का वर्णन है। इस निबंध में गोरखपुर शहर के पुरातात्विक महत्व तथा उसके प्राकृतिक सौंदर्य पर प्रकाश डाला गया है।

महत्व

उपर्युक्त शोध में डॉ० विद्यानिवास मिश्र के प्रमुख ललित निबंधों को केन्द्र में रखकर अपने समकालीन जीवन परिधियों-स्थितियों का अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है। इसमें यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि मानवीय संवेदनाएं स्थितियां परिस्थितियाँ मनुष्य द्वारा ही निर्मित की गयी है। जिन्हें वह जब चाहें स्वीकार करके उसे आम-जन के कल्याणार्थ प्रस्तुत कर सकता है। भाषा संस्मरण जैसे निबंध उनके व्यावहारिक प्रस्तुतीकरण का नायाब ढंग है। यह निबंधकार को निबंध कला में उदात्त बनाता है।

संदर्भ

1. डॉ० सुमन शर्मा, कुबेरनाथ राय के ललित निबंध, पृ० 45, प्रथम संस्करण-2015, निखिल पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा
2. डॉ० एस०एल० कुमारी, विद्यानिवास मिश्र के निबंध, आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० 41, प्रथम संस्करण-2017, अपर्णा प्रकाशन, कानपुर
3. डॉ० श्याम सुंदर पांडेय : विद्यानिवास मिश्र का निबंध साहित्यः संदर्भ और अभिव्यक्ति, पृष्ठ 39, संस्करण-2007 (ज्ञान प्रकाशन कानपुर)
4. वही, पृष्ठ 39-40
5. वही
6. डॉ० एस०एल० कुमारी, विद्यानिवास मिश्र के निबंध, आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० 41-42, प्रथम संस्करण-2017, अपर्णा प्रकाशन, कानपुर
7. डॉ० सुमन शर्मा, कुबेरनाथ राय के ललित निबंध, पृ० 46, प्रथम संस्करण-2015, निखिल पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा
8. डॉ० श्याम सुंदर पांडेय, विद्यानिवास मिश्र का निबंध साहित्य : संदर्भ और अभिव्यक्ति, पृष्ठ-108, संस्करण -2007 (ज्ञान प्रकाशन कानपुर)
9. डॉ० श्याम सुंदर पांडेय, विद्यानिवास मिश्र का निबंध साहित्य : संदर्भ और अभिव्यक्ति, पृष्ठ-125, संस्करण -2007 (ज्ञान प्रकाशन कानपुर)
10. डॉ० श्याम सुंदर पांडेय, विद्यानिवास मिश्र का निबंध साहित्य : संदर्भ और अभिव्यक्ति, पृष्ठ-110, संस्करण -2007 (ज्ञान प्रकाशन कानपुर)

मध्यकालीन कवियों की रस योजना

डॉ० वनीत कौर
पूर्व शोध छात्रा, हिंदी विभाग
कश्मीर विश्विद्यालय, श्रीनगर
जम्मू व कश्मीर-190006

कविता पढ़ने से पाठक को, सुनने से श्रोता को और नाटक देखने से दर्शक को जिस आनंद की अनुभूति होती है, उसे काव्य व नाटक में रस कहते हैं। रस का प्रयोग प्रत्येक काल में कवियों ने किया हैं। मध्यकालीन कवियों के काव्य में भी यह प्रवृति दिखाई पड़ती हैं–

1.) **कबीरदास**– कबीरदास ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि माने जाते हैं। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। उनके शिष्यों ने कबीर की वाणी को संजोकर रखा तथा बाद में पुस्तक का आकार दिया। इनकी रचना 'बीजक' नाम से जानी जाती है। कबीर ने जीवन भर धार्मिक, सामाजिक तथा अंधविश्वासों का तीखा विरोध किया हैं। भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए वह कहते हैं–

"भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा क्रमानां, कबीर समिरण सार ।।"[1]

2.) **रविदास**– संत रविदास कबीर जी के समकालीन माने जाते है। यह एक महान संत और समाज सुधारक के साथ-साथ ईश्वर के अनुयायी, दर्शन शास्त्री और एक महान कवि थे। संत रविदास जी रैदास के नाम से भी जाने जाते है। यह ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं–

"प्रभु जी तुम चंदन हम पानी ।
जाकी अंग-अंग बॉस समानी ।।
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा ।
जैसे चितवन चंद चकोरा ।।
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती ।
जीकी जोति बरै दिन राती ।।"[2]

3.) **गुरु नानक देव जी**– गुरु नानक देव जी संत सम्प्रदाय के प्रमुख कवि माने जाते है। इन्होनें अंधविश्वासों, पाखंडों आदि का जमकर विरोध किया हैं। यह एक ईश्वर को मानते है और ईश्वर तक पहुँचने का रास्ता हमें गुरु ही बता सकते है, क्योंकि बिना गुरु के अंधकार है–

"बाझ्ु गुरू गुबारु है बिन सबदै बुझ न पाइ ।
गुरमती परगासु होइ सचि रहै लिव लाइ ।।
तिथै कालु न संचरै जोती जोती समाइ ।।"[3]

4.) **मलिक मौहम्मद जायसी**– जायसी निर्गुण प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि सूफी कवि है। जायसी की कीर्ति का मुख्य आधार 'पद्मावत' नामक प्रबंध काव्य है। 'पद्मावत' प्रबंध काव्य होते हुए भी श्रृंगार प्रधान प्रेम काव्य है। इसमें श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन मिलता है। इसमें अन्य रस गौण रूप में भी मिलते है, जैसे– करुण, वीर, शांत आदि। जायसी के काव्य 'पद्मावत' में संयोग पक्ष का उतना विस्तृत चित्रण नहीं मिलता जितना की वियोग पक्ष का। संयोग के अंतर्गत नवोढ़ा स्त्री की भावनाओं का अत्याधिक सुंदर चित्र देखने को मिलता हैं–

"हौ बौरी औ दुलहिन, पीउ तरुण सह तेज।
न जानों कस होहिं, चढत कंते के सेज।।"[4]

वियोग पक्ष के अंतरगत नागमती का विरह वर्णन हैं। उसका पति उससे दूर चला गया है, इसलिए वह बहुत दु:खी है। वह सोचती हैं कि वे स्त्रियाँ कितनी धन्य है, जिनके पति उनके पास हैं–

"जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ ओ गर्ब।
कन्त पियारा बाहिरे, हम सुख भूला सर्ब ।।"[5]

5.) तुलसीदास – तुलसीदास सगुण भक्ति धारा के अंतर्गत आने वाले रामकाव्य धारा के प्रतिनिधि कवि है। तुलसीदास जी ने 12 ग्रंथों की रचना की। जिसमें 'रामचरितमानस' बहुत लोकप्रिय है। इसमें दास्य भाव की भक्ति दिखती है। 'रामचरितमानस' को समस्त उत्तर भारत में बड़े भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। इन्होंने अपने समस्त काव्य ग्रंथों में राम के प्रति अनन्य भक्ति भाव व्यक्त किया है। इनका काव्य भक्ति रस से भरा पड़ा है। तुलसी के आराध्य राम में जितनी महानता है, उतनी ही भक्त में दीनता का चित्रण हुआ है। वे भक्ति प्रधान ग्रंथ 'विनय पत्रिका' में कहते हैं–

"तू दयाल दीन हौ, तू दानी, हों भिखारी ।
हौ प्रसिद्ध पातकी, तू पाप–पुंज हारी ।।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसों ।
मो समान आरत नहिं, आरति हर तोसों ।
ब्रह्म तू, हौ जीव, तू है ठाकुर, हो चेरी ।
तात–मातु, गुरु–सखा तू सब बिधि हितु मेरो ।"[6]

6.) **सूरदास**– सूरदास ब्रजभाषा में रचना करने वाले कवियों में से एक महत्त्वपूर्ण सगुण धारा के कृष्ण भक्त कवि है। इनकी भक्ति भावना में सखा भक्ति झलकती है। इन्होंने श्री कृष्ण को अपना सखा माना है। इन्होंने कृष्ण की बाल लीलाओं का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया हैं। बाल जीवन का कोई पक्ष ऐसा नहीं, जिन पर इनकी दृष्टि न पड़ी हो, इसलिए इनका बाल वर्णन विश्व साहित्य की अमर निधि बन गया है। सूर के काव्य में वात्सल्य रस की प्रचुरता देखने को मिलती हैं–

"मैया री, मोहि माखन भावै ।
जो मेवा पकवान कहती तू, मोहि नहीं रूचि आवै ।।
ब्रज-जुवती इक पाछै ठाढी, सुनत स्याम की बात ।
मन-मन कहति कबहु अपनै घर, देखौं माखन खात ।।"[7]

7.) **केशवदास**- केशवदास रसिक कवि थे। इन्होंने अपने काव्य में अनेक स्थलों पर विविध रसों की उत्कृष्ट व्यंजना की हैं। श्रृंगार के दोनों पक्षों को उन्होंने अपनाया है। श्रृंगार रस से भरी उनकी यह पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"भांति भली वृषभानलली जब ते अखियाँ अंखियानि सो जोरी ।
भौंह चढाइ कछू डरपाइ बुलाइ लई हंसि के बस भोरी ।
केसव काहू त्यौं ता दिन ते रुचि के न बिलोकति केतौ निहौरी ।
लीलत है सब ही के सिंगार अँगारति ज्यों बिन चंद चकोरी ।"[8]

8.) **भूषण**- भूषण वीर रस के प्रसिद्ध कवि माने जाते है। इन्होंने अपने काव्य की रचना ब्रजभाषा में की है। वे सर्वप्रथम ऐसे कवि है, जिन्होंने ब्रजभाषा को वीर रस की कविता के लिए अपनाया। इन्होनें 'छत्रसाल दशक' में महाराज छत्रसाल की वीरता का वर्णन किया है। इनकी यह रचना वीर रस से ओत-प्रोत है। वह कहते हैं-

"भूपन बुंदेला-मनि चपति-सपूत धन्य,
जाकी ढक बचा एक मग्द मियाँ न है ।।"[9]

10.) **नरोत्तमदास**- नरोत्तमदास हिंदी के प्रमुख साहित्यकार थे। हिंदी साहित्य में ऐसे लोग विरले ही है, जिन्होनें मात्र एक या दो रचनाओं के आधार पर हिंदी साहित्य में अपना स्थान बनाया है। इनका एकमात्र खंड काव्य 'सुदामा चरित' है जो कि हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर मानी जाती है। यह काव्य ब्रजभाषा में लिखा गया है। नरोत्तमदास ने 'सुदामा चरित' में कृष्ण की दीन अवस्था व कृष्ण की उदारता का वर्णन किया है। 'सुदामा चरित' में करुण रस से भरी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"सीस पगा न झगा तन में प्रभु,
जानै को आहि बसै केहि ग्रामा,
धोती फटी सी लेटी दुपटी अरु,
पांय उपान्हु को नहीं सामां,
द्वार खडौ द्विज दुर्बल एक,
रहौ चकि सो बसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयाल कौ धाम,
बतावत आपनो नाम सुदामा ।।"[10]

11.) **मीराबाई**– मीराबाई एक बहुत ही प्रसद्धि और जानी–मानी कवयित्री होने के साथ–साथ कृष्ण की बहुत बड़ी भक्त थी। जब भी श्री कृष्ण की भक्ति की बात आती है तो सबसे पहला नाम मीराबाई का आता है। इन्होनें श्री कृष्ण की भक्ति के लिए अपना पुरा जीवन त्याग दिया। मीराबाई की कविता भक्ति रस से ओतप्रोत हैं–

"पायो जी मैंने राम नाम रतन धन पायों ।
वस्तु अमोलिक दी मेरे सतगुरु ।
कृपा कर अपनायो ।।
जन्म–जन्म की पूंजी पाई ।
जग में सबी खुमायो ।।
खर्च ना खूटे, चोर न लूटे ।
दिन–दिन बढ़त सवायो ।।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु ।
भवसागर तरवायो ।।
मीरा के प्रभु गिरिधर नगर ।
हरस–हरस जस गायो ।"[11]

संदर्भ

1. कबीर ग्रंथावली–साखी– सुमिरण कौ अंग, संपादक– श्यामसुंदर दास बी०ए०, इंडियन प्रेस लिमिटेड याग, पृ०–5
2. रैदास जी की बानी, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग, छठवी बार सन् 1948 ई०, पृ०–85
3. नानक वाणी– डॉ० जयराम मिश्र, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद, संपादक– श्री कृष्णदास, पृ०–137
4. जायसी ग्रंथावली– पद्मावती रत्नसेन भेट खंड– आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, 15 वां संस्करण, पृ०– 114
5. वही, नागमती वियोग खंड, पृ०–132
6. विनय पत्रिका– गो० तुलसीदास, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी, द्वितीय संस्करणः संवत 2019, पृ०–161–162
7. सूरदास दोहावली, न्यू साधना पांकेट बुक्स रोशनारा रोड, दिल्ली, संस्करणः 2008, पृ०–107
8. रसिक प्रिया का प्रियाप्रसाद तिलक–अष्टम प्रभाव– आचार्य केशवदास, टीकाकार–विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कल्याणदास एंड ब्रदर्स, ज्ञानवापी वाराणसी, संस्करणः द्वितीय
9. भूषण ग्रंथावली, टीकाकार– प० राजनारायण शर्मा, हिंदी भवन लाहौर, पहला संस्करणः 1937
10. सुदामा–चरित– नरोत्तमदास, हिंदी साहित्य संसार दिल्ली और पटना, तृतीय संशोधन संस्करण : 1966, पृ०–49–50
11. मीराबाई की पदावली– संपादक आचार्य पशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मलेन प्रयाग, 21वां संस्करण 2002, पृ०–240

रमणिका गुप्ता के कथा साहित्य में स्त्री संघर्ष और आत्मभिव्यक्ति

ऋतु

शोध सार

जो महिलाएं इस पुरुष प्रधान समाज में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तलाश में हैं उनके लिए आपहुदरी आत्मकथा एक प्रेरणादायक स्त्रोत है। रमणिका गुप्ता जी के बाल मन पर परिवार के परिजनों के व्यक्तित्व की छाप चुकी है। जिसका सूक्ष्म एवं तर्कपूर्ण विवेचन इस आत्मकथा में किया गया है। एक जिद्दी बालिका की कहानी है आपहुदरी। उनका जीवन रोमांच से भरा हुआ था। कितने ही प्रकार के जोखिम उन्होंने उठाएं परंतु फिर भी स्वयं को सिद्ध किया। बड़ी ही बेबाकी से उन्होंने अपने यौन संबंधों का चित्रण किया। बिना किसी झिझक के उन्होंने अपने मन के भीतर के सभी रहस्यों को इस किताब के माध्यम से खोल के रख दिया है। उन बातों को कहते हुए वह जरा भी नहीं हिचकिचाई जिनके बारे में सोच कर एक आम औरत शर्म से पानी पानी हो जाए। यहां पर उनका एक मजबूत व्यक्तित्व नगर आता है। जो केवल एक स्त्री ही नहीं बल्कि एक बौद्धिक व्यक्ति होने का प्रमाण है।

बीज शब्द :- रमणिका गुप्ता, महिला, स्त्री पीड़ा, समस्या, पितृसत्ता, बेबाक, आपहुदरी, ग्रामीण, विचार, आत्मकथा

हिंदी साहित्य में आत्मकथा लेखन की एक बेहद प्रचलित परंपरा बन गई है। देखा जाए तो हिंदी आत्मकथा का आरंभ सन् 1641 में बनारसी दास जैन द्वारा लिखित आत्मकथा अर्धकथनक से मना जाता है। हिंदी साहित्य में आत्मकथा नाम की विद्या का आगमन पश्चिम से हुआ है। और धीरे धीरे यह हिंदी साहित्य की एक मुख्य विद्या बन गई। नामवर सिंह ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि 'अपना लेने पर कोई चीज पराई नहीं रह जाती है' इसी प्रकार आत्मकथा विधा को हिंदी साहित्य ने अपना लिया और अब यह हिन्दी साहित्य की हो गई।

इसके बाद एक से बढ़ कर एक आत्मकथाएं लिखी गई जिनमे क्या 'भूलूं क्या याद करूं' 'अन्या से अनन्या' 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' 'शिकंजे का दर्द' आदि इस दौर की प्रसिद्ध आत्मकथाएं है। अपहुदरी एक अलग प्रकार की आत्मकथा है। बाकी आत्मकथाओं में लेखक अपने जीवन की परिस्थितियों को व्यक्त करते नजर आते है। साथ ही अपनी संघर्षो से जूझते नजर आते है। पर रमणिका गुप्ता की कथा में एक पूरे समाज की सोच का प्रश्न है। इस आत्मकथा में एक विरोध नजर आता है। जब वह लिखती है "नहीं ढकूंगी सिर! क्यों ढकूं? क्या लड़के सर ढक कर चलते हैं?"[1] यहां पर लेखिका केवल अपनी मां से ही नहीं बल्कि पूरे समाज से प्रश्न करती है। स्त्रीयों को ही सारे नियम कानून क्यों मानने पढ़ते है। उनको क्यों हमेशा डर

** First Author, **Corresponding Author, ***Co-Author*

कर रहना होता है? इसी प्रकार "महाराष्ट्र की पहली महिला उपन्यासकार काशीबाई ककानितकर ने 1890 के दशक में लेखन कार्य प्रारंभ किया तथा ठीक उसी समय महाराष्ट्र की पहली महिला डॉक्टर आनंदी बाई जोशी ने अपनी शिक्षा पूरी की।"[2] इतने बड़े पद पर उस समय पहुंच पाना जब महिलाओं को घर से बाहर जाने तक की आजादी नहीं थी। अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। परंतु "प्रगति के इन लक्षणों के बावजूद जिस माहौल में ये महिलाएं रहती थी वह बड़ा रूखा एवं असहिष्णु था। एक बार की बात है, काशीबाई कानितकर तथा आनंदी बाई जोशी–दोनों सहेलियां– जब पहली बार जूते पहनकर तथा छाता लेकर बाहर निकली तो इनपर ये कह कर पत्थर बरसाए गए कि उन्होंने पुरुष अधिकार वाले प्रतीकों को अपना कर उनका अपमान करने की हिमाकत की है।"[3]

अपहुदरी को पढ़ते समय ऐसा लगता है कि उसके पहले भाग में रमणिका जी ने अपने बाल मन और किशोर मन से उत्पन्न होने वाली शंकाओं और उलझनो को प्रदर्शित किया है। यह वह उम्र होती है जब व्यक्ति को दुनियादारी के दांव पेंच नहीं पता होते हैं। उसका हृदय उस समय एकदम निश्चल होता है और जब उसके साथ कोई ऐसी घटना हो जिसमें उसकी जानबूझकर कोई गलती ना हो। उसकी भी उसे सजा मिले तो उसके मन में उठने वाले प्रश्न उसका जीना दुश्वार कर देते हैं। जैसे हम देखते है कि किशोरावस्था में उनका प्रथम। प्रेम पत्र जब आता है तब उनके घर में जुड़े ट्यूशन पढ़ाने वाला मास्टर उसको लेकर रमणिका जी को ब्लैकमेल करने लगता है। मैं लड़की इस छोटी सी बात को लेकर इतना घबरा जाती है कि मैं अपने माता–पिता से अपने शिक्षक की शिकायत तक नहीं करती है। और वह जिसका फायदा उठा कर उसके साथ यौन तक हिंसा करता है। मुझे लड़की अभी प्रेम का मतलब तक नहीं समझी होती है उसे सीधा यौन संबंध में जोड़ दिया जाता है। उसके साथ शारीरिक नहीं मानसिक प्रताड़ना भी हो रही है। यदि उस समय का समाज कितना जागरुक होता तो ऐसा नहीं हो पाता।

इसके बाद रमणिका गुप्ता के साथ होने वाली घटनाओं को उस समय की लगभग सभी सामान्य लड़की के साथ घटने वाली घटनाएं नहीं कहा जा सकता हैं जैसे –बचपन की मासूमियत, किशोरवस्था की शंकाएं और युवा काल के रंगों से भर उनके ख्वाबों को आपहुदरी के प्रथम भाग की छोटी–छोटी कथाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

दूसरे भाग की बात करें तो इसमें एक वयस्क मन प्रौढ़ नारी के जीवन में होने वाली समस्याओं और कुंठाओं को व्यक्त किया गया है केवल उनकी कथाओं के नाम को भी ठीक से पढ़ लिया जाए तो भी जीवन के संघर्षों को कम से सजा समझ सकता है। किस प्रकार एक कविताएं करने वाली लेखिका के काव्य का विषय बदल जाता है। पद्य लिखते लिखते वह गद्य लिखना शुरू कर देती है। प्रकृति और समाज की जगह वह राजनीति में उतर आती है। रमणिका गुप्ता एक समाज सेविका रही है राजनीति में आने के बाद उन्होंने राजनीति के माध्यम से समाज सेवा करना प्रारंभ कर दिया। राजनीति के गांव पेज सीखने में उनका काफी समय लगा।

रमणिका जी लिखती है कि "जब तक स्त्री स्वयं मुक्त नहीं होना चाहती, जब तक उसकी इच्छा नही होती मुक्त होने की तब तक वह मुक्त नहीं हो सकती है। मुक्त होने का मतलब यहां पर निर्णय लेने की स्वतंत्रता से है। शादी कब करनी है, बच्चा कब करना है, करना भी है या नहीं? पढ़ाई कब तक करनी है

क्या पढ़ना है? इन सब चीजों का निर्णय लेने हक महिला को खुद होना चाहिए।"[4] कोई और उसके लिए ये सब कैसे तय कर सकता है और क्यों करे? शिक्षा और सजगता दोनो महिलाओ के लिए अनिवार्य है। हमारी शिक्षा व्यवस्था महिलाओं को शिक्षित तो कर रही है पर चैतन्य या सजग नहीं कर रही है।

शिक्षित और आत्मनिर्भर होने के बावजूद महिलाएं अंधविश्वासों के चक्कर में पड़ी हुई पाई जाती है। यही महिलाओं की सबसे बड़ी त्रासदी का कारण है।

"मैं औरत हूं। मैं मनुष्य हूं। मनुष्य की चेतना नहीं है। औरत भी अपने आप को द्वायम दर्जा मानती है। औरत जब खुद की इज्जत करेगी तभी तो दूसरे लोग उसकी इज्जत करेंगे। बल्कि सच्चाई यह है कि औरत खुद अपनी इज्जत नहीं करती है।"[5] इस कथन के माध्यम से रमणिका गुप्ता औरत को अपनी भीतर की शक्ति याद दिलाने की कोशिश करती हैं। "जब भैया की शादी का राज आनंद लता पर खुला तो उसने भैया से रिश्ता ही तोड़ दिया और फिर किसी और से विवाह कर लिया जिसे वह भैया के चलते आज तक टालती आ रही थी।"[6] अक्सर लोगों को ऐसा कहते सुन लेते हैं कि औरत ही औरत की दुश्मन होती हैं। शादीशुदा मर्द से दूसरी औरत विवाह करना चाहती है और दूसरी औरत का घर उजाड़ देती है। परंतु आप यहां पर यह महसूस कर सकते हैं कि औरत ही औरत की मित्र भी होती है जैसे आनंद लता ने यह जानने के बाद की उसका प्रेमी शादीशुदा है। स्वयं ही शादी से इंकार कर दिया। ऐसा करके उसने एक पितृसत्तात्मक सोच को परास्त ही नहीं किया। बल्कि एक स्त्री के घर को उजड़ने से भी बचाया। भले ही उसने इसकी लिए अपने प्रेम का बलिदान दिया।

रमणिका गुप्ता की भाभी जब नृत्य छेत्र में अपना नाम बनाने लगती हैं। तो वही एक तरफ उनकी सासू मां अर्थात रमणिका गुप्ता की मां को अपनी बेज्जती महसूस होती है। जब परंतु वह अपनी बहू को कुछ बुरा भला इसलिए नहीं कह पाती है, क्योंकि नृत्य के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए उनके बेटे ने ही उसे उकसाया होता है। परेशान होकर वह अपने पति और अपने पिता से इसकी शिकायत करती हैं। पर वहां से भी उन्हें हार का मुंह देखना पड़ता है। क्योंकि घर के बड़े बुजुर्ग अब इसे बदनामी नहीं, बल्कि इज्जत और शोहरत मानने लगे हैं। उन्हें तालियों की गड़गड़ाहट घुंगरू की झंकार से ज्यादा मधुर लगने लगी है। "शोहरत के इन नए कंक्रीट के स्तंभों सी ताजा उपलब्धियों के सामने पुरानी मान्यताओं के चूने और लाल पत्थरों या संगमरमर के ठंडे, बासी पड़े पत्थरों से बने स्तंभ छोटे और कमजोर पड़ रहे थे, गिर रहे थे, ढह रहे थे।"[7] अब वह इसे बेज्जती नहीं प्रशंसा समझने लगे हैं। रमणिका के नाना जी अब अपनी पुत्री को ही समझाने लगे हैं। कि तुम इस मामले पर शांति बनाए रखो। "सामंती दिमाग अपने पक्ष में शीघ्र तर्क गढ़ लेता है और फिर शोहरत और नाम का नशा सब गम भुला देता है।"[8] इससे यह पता चलता है। कि जब इस्त्री कोई काम छोटे स्तर पर करती है। तब तक वह उसकी बेइज्जती का कारण बनता है। परंतु जैसे ही वह उसे विश्व स्तर पर या उच्च स्तर पर करने लगती हैं।बस उसे अपने आत्मविश्वास को नहीं टूटने देना चाहिए। तभी वह उसके लिए सम्मान का कार्य बन जाता है। नाचना एक तरफ सभ्य घरों के लिए बेज्जती का कारण है। तो दूसरी तरफ जब वह उच्च स्तर पर पहुंच जाए तो वही प्रशंसा का कार्य बन जाता है। रमणिका गुप्ता जी लिखती हैं। 'जब स्त्री घर से बाहर निकलती है तो पहले उसे कुल्टा कहा जाता है। फिर जब वह थोड़ा और आगे बढ़ती है।

तो उसे कुछ और कहा जाता है। परंतु जब वह अपने शिखर पर पहुंच जाती है। उसका संघर्ष अपने शिखर पर पहुंच जाता है। तो वही स्त्री समाज के बीच देवी का स्थान ग्रहण कर लेती है।' इस प्रकार हम यह देख सकते हैं किसी भी स्त्री को अपने उत्थान के लिए संघर्ष करने से कभी घबराना नहीं चाहिए क्योंकि शुरुआत में मुश्किलें आती है। समाज उनका साथ नहीं देता है। परंतु जब वह आगे बढ़ जाती है। तो वह समाज स्वयं अपनी सोच बदल लेता है। और स्त्री का सम्मान करने लगता है।

"काश हर मर्यादा टूटने पर स्त्री के बदले पुरुष 'छिक्का' तोड़ने का जिम्मा लेता, तो हर स्त्री कभी की मुक्त हो गई होती।"[9]

यहां पर लेखिका पुरुष को स्त्री की ढाल बनने की बात कर रही है। उनकी संपूर्ण विचारधारा में यह बात मुझे कुछ अजीब सी लगी। जहां वह यह कहती नहीं थकती कि स्त्री को अपने हक के लिए लड़ना चाहिए। खुद अपने संघर्ष करने चाहिए। वहां पर वह पुरुष को स्त्री की ढाल बनने की बात कैसे कह सकती हैं? यदि मर्यादाएं तोड़नी है, तो स्त्री के अंदर सबसे पहले साहस का होना बहुत जरूरी है। वह क्यों किसी पुरुष का सहारा लेकर मर्यादाएं तोड़े? स्त्री के अंदर इतनी हिम्मत होनी चाहिए कि वह गलत को गलत और सही को सही कह सके। यदि स्त्री पुरुष का सहारा लेकर अपना संघर्ष करती है। और मर्यादा तोड़ती है। तो भी उसमें यह उस पुरुष की उपलब्धि मानी जाएगी स्त्री की नहीं।

"कोई तो है जो मुझ जैसी बदसूरत लड़की से जो उन दिनों लोग कहा करते थे, प्यार करता है। तोषी बहुत गोरी और सुंदर थी।"[10] अक्सर प्रेम में लड़कियां इसीलिए ठगी जाती हैं। क्योंकि वह स्वयं को उसके काबिल ही नहीं समझती। जबकि पुरुषों के साथ ऐसा नहीं है वह सुंदर हो या बदसूरत। उन्हें प्रेम के लिए लड़की सुंदर ही मिलनी चाहिए ऐसा उनका दृढ़ विश्वास होता है। परंतु जब लड़की समाज के द्वारा बदसूरत घोषित कर दी जाए तो वह केवल प्रेम ही पा जाए इसी से संतुष्ट हो जाती है। वह स्वयं को दूसरों की दया का पत्र समझने लगती है। यह नहीं सोचती कि मैं भी किसी से प्रेम कर सकती हूं। यह मेरा भी उतना ही हक है जितना किसी पुरुष का है। इसी मानसिकता के चलते लड़कियों के साथ शारीरिक शोषण की घटनाएं सामने आती हैं।

"सर्दी के मौसम में नानी के आदेश अनुसार सबेरे- सबेरे ठंडे पानी से नहाने के चलते ही छोटे मामा को निमोनिया हुआ था। नई -नई ब्याह कर आई मामी ने उनकी खूब सेवा की लाल चूड़ा पहने मामी ने उनका गू मूत तक किया। बलगम तक हाथों में ली। कभी नाक मुंह नहीं सिकोड़ी। छोटे मामा ने उनके हाथों में प्राण छोड़े। इतनी सेवा करने वाली मामी अंधविश्वास और रस्मों रिवाज के अनुसार कहलाई कुलच्छनी जो घर आते ही देवर को खा गई।"

भारत में अंधविश्वास का सिलसिला इतना बुरा है कि इसके सारे इल्जाम औरत को ही सहने पढ़ते हैं। कारण कुछ भी हो गलती किसी की भी हो औरत के कदम को शुभ या अशुभ माना जाता है। आज तक कभी भी मैंने ऐसा नहीं सुना कि इस लड़के से शादी करने के बाद या हमारे दामाद के आने से बाद घर में कुछ बुरा हुआ है। ऐसा बहुत बार सुना है कि इस बहू के आने के बाद कोई चीज खराब हो गई। कुलछनी,

कुलटा, कालमुही, रण्डी, खासमानू खानी आदि उपनाम केवल स्त्री सूचक ही क्यों बनाए गए? इनके पुलिंग शब्द कहां गए? इन अपशब्दों का चित्रण इस आत्मकथा में कई बार किया गया है। जैसे– "मैं जानती थी बीबी जी मुझे, 'खसमानूखानी, रण्डी' कह रही है, जो उनकी मनपसंद गलियां थीं।"[12] रमणिका जी का आत्मविश्वास इतना प्रबल है कि वो अपने साथ हुए इस बर्ताव को मुखर हो कर लिख सकती है, बता सकती है। जबकि अधिकतर महिलाएं इससे शर्मिंदा होती है। या घबरा जाती है। इसी निडर व्यक्तित्व के चलते रमणिका जी ने एक वक्तव्य में ऐसी बात कह दी जो सच तो थी पर बहुत कड़वी थी। और वह जानती थी कि इसके लिए उनको घर पर मार भी खानी पड़ सकती है।

"जितने बड़े-बड़े लोग या जनरल, कर्नल और कप्तान तथा उनके अर्दली यहां है या कहीं और है, अगर उनके यहां खोज की जाए, तो आधी से ज्यादा लड़कियां उन्हीं के यहां से बरामद हो जाएंगी।"[13] रमणिका गुप्ता जी के इस वाक्य से यह सिद्ध होता है कि उनके भीतर से प्रशासन का डर अब समाप्त हो चुका है। परंतु अपने माता पिता की मार का डर अभी भी बना हुआ है। परंतु एक अगले अध्याय में जहां वे हमीद और उसके परिवार की रक्षा के लिए घर से अकेली निकल जाती है वहा परिवार का डर भी उनके भीतर से जाता रहा है। उसके भीतर से नारी बोध एकदम मिट सा जाता है। यहां वह एक स्वतंत्र व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है। अपनी स्वतंत्र सोच का साथ देती है। और बंटवारे के समय में खुले आम निकल पड़ती है एक मुस्लिम परिवार की रक्षा के लिए।

"क्यों रोते हो औरत के लिए? तुम कहो तो मैं एक हजार औरतें लादू तेरे लिए। औरत के लिए भी कभी कोई मर्द होता है? एक मर गई तो दूसरी आ जाएगी।"[14] पुराने समय के दौर में कितनी ही औरतें अपने पतियों के लिए सती हो जाया करती थी। और कितनी ही राजाओं ने अपनी रानियों की आबरु बचाने के लिए अपनी जान तक कुर्बान कर दी थी। परंतु धीरे-धीरे यह प्रचलन बदल गया। बलिदान का हक केवल महिलाओं तक सीमित रह गया। और अधिकार केवल पुरुषों तक। अब यह समय आ गया कि औरत को पुरुषों केवल वस्तु समझ लिया है। अब महिलाओं का कोई अस्तित्व नहीं रह गया है। जब मन किया औरत के साथ खिलवाड़ किया और जब मन किया उसे छोड़ दिया। पत्नी का कोई स्थान नहीं है। पति मर जाए तो औरत विधवा हो जाती है। परंतु पत्नी मर जाए तो पति को रोने का भी हक नहीं है। तुरंत दूसरी पत्नी का इंतजाम हो जाएगा। ऐसी मानसिकता वाले समाज में रमणिका गुप्ता जी ने एक नई सोच की जड़ जमाई हैं।

यहां पर भी एक आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती नजर आती है। मैं केवल बातों से ही नहीं अपने कर्तव्यों में भी आधुनिकता का वरन करती हैं। हो सकता है उस समय की औरत को इनके कार्य पसंद ना आए। परंतु आज के समय में यह सब बातें प्रासंगिक नजर आती है। रमणिका जी बात करती है कि औरत को सबसे ज्यादा मानसिक रुप से कमजोर किया जाता है। यह कह कर कि तुम्हें अपनी सुचिता की रक्षा करनी होगी। परंतु पुरुष से कोई शुचिता की रक्षा की बात नहीं करता है।

संदर्भ

1 अपहुदरी पृष्ट 33

2 इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली में मीरा कोसांबी का आलेख–वीमेन, इमेनसिपेशन एंड इक्वालिटी: पंडिता रमाबाई कंट्रीब्यूशन टू वीमेन काज – वर्ष 23,अंक 44 अक्टूबर, 1988 पृष्ठ 39

3 तथैव, पृष्ठ 41

4 https://youtu.be/aZ4U2Yx3BHE?si=8urBLGfIgskby9yX

5 https://youtu.be/aZ4U2Yx3BHE?si=8urBLGfIgskby9yX

6 आपहुदरी पृष्ठ 128

7 आपहुदरी पृष्ठ 130

8 वही पृष्ठ

9 अपहुदरी पृष्ट 132

10 अपहुदरी पृष्ठ 142

11 अपहुदरी पृष्ठ 65–66

12 अपहुदरी पृष्ठ 178

13 अपहुदरी पृष्ठ 178

14 अपहुदरी पृष्ठ 93

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन 1900 से 1920 तक

सत्य बहादुर सिंह
शोधा छात्र, इतिहास विभाग
कलिंगा विश्वविद्यालय, जयपुर

संकेत शब्द : नरमपंथी, अंतर्कलह, छितिज, कालखंड, न्यायशीलता

भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर कांग्रेस के उदय ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को एक नया आयाम प्रदान किया था। कांग्रेस की स्थापना जिस चरम लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य से की गई थी, धीरे–धीरे वह उसी ओर बढ़ती चली जा रहा थी। यद्यपि इस दौरान कांग्रेस में अंतर्कलह के भी दृश्य दिखाई पड़े, किन्तु फिर भी कांग्रेस के नेता राष्ट्र को एकजुट करने के प्रयास में निरंतर लगे रहे। इतिहासकार कांग्रेस के इस प्रथम काल को नरमपंथी राष्ट्रीयता का काल घोषित करते हैं। कुछ लोग इसे अभ्यर्थना युग के नाम से भी संबोधित करते हैं क्योंकि इस काल में कांग्रेस का रुख अपेक्षाकृत नरम ही बना रहा। इस काल में पूर्ण स्वराज्य जैसी किसी भी क्रान्तिकारी मांग को सामने नहीं रखा गया था और न ही किसी क्रान्ति के मार्ग का अवलंबन ग्रहण किया गया था। अंग्रेज अधिकारियों को संतुष्ट करने के लिए उनके प्रति छद्म श्रद्धा की भावना प्रकट की जाती थी। इस कालखण्ड में अंग्रेज सरकार द्वारा कांग्रेस की बातों को तवज्जो दी जाती थी और उनकी मांगों पर सहानुभूति पूर्वक विचार किया जाता था। किन्तु कुछ ही समय पश्चात परिस्थितियों में अंतर दिखाई पड़ने लगा और कांग्रेस की विभिन्न भागों को अंग्रेजी सरकार ने नकार दिया, जिसके कारण कांग्रेस को संघर्ष का रास्ता अपनाना पड़ा। लेकिन इस बात को लेकर कांग्रेस में ही मतैक्य नहीं बन पा रहा था। कांग्रेस के कुछ नेता कांग्रेस को संघर्ष के रास्ते पर न ले जाकर उसे सरकार के साथ सामंजस्य बनाने की दिशा में अग्रसर करना चाहते थे, किन्तु लोकमान्य तिलक जैसे कुछ नेता सरकार से किसी भी समझौते के पक्ष में नहीं थे। वह सरकार के साथ आर पार की लड़ाई के लिए तैयार थे। इस प्रकार कांग्रेस दो भागों में विभक्त होती नजर आ रही थी, जिसमें एक दल अंग्रेजों के प्रति नरम था तो दूसरा अंग्रेजों के प्रति संघर्ष के लिए उद्द्यत था। प्रथम दल को नर्म दल तथा दूसरे दल को गर्म दल की संज्ञा दी गई। सन 1885 से लेकर 1905 तक का कांग्रेस का प्रारंभिक कालखण्ड नरमपंथी नेताओं की विचारधाराओं से ही प्रभावित होता रहा, जबकि सन 1906 से लेकर सन 1920 तक के कालखंड पर गरम दल का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। नरम दल के लोग अंग्रेजों के प्रति अपना अटूट विश्वास रखते थे क्योंकि यह नेता पाश्चात्य सभ्यता तथा विचारों से पूरी तरह प्रभावित हो चुके थे। ऐसे नेता मुख्य रूप से उच्च मध्य वर्ग से आते थे और उन्होंने पश्चिमी शिक्षा ग्रहण कर रखी थी। इसलिए ये पूरी तरह से पश्चिमी विचारधारा तथा पश्चिमी संस्थाओं का समर्थन करते थे। इन्होंने अंग्रेज प्रशासन

के साथ अपने संबंधों को मधुर बनाए रखने का सतत प्रयास किया और अंग्रेज शासन को भारत वासियों के लिए वरदान माना। इसीलिए कुछ इतिहासकार इनकी राष्ट्र के प्रति निष्ठा में संदेह व्यक्त करते हैं। नरम दल के प्रमुख नेताओं में मुख्य रूप से व्यापारी, शिक्षक, वकील, संपादक सभी वर्गों के लोग शामिल थे। यह ऐसे लोग थे जिन्हें भारतीय जनता के दुख दर्द से कोई लेना–देना नहीं था क्योंकि उनके भीतर अंग्रेज प्रशासन में उच्च पद प्राप्त करने की लालसा विद्यमान थी। इसलिए ये लोग समय–समय पर ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी राज भक्ति का प्रदर्शन करते रहते थे। उन्हें अंग्रेजों की सत्यता तथा न्याय पर पूर्ण विश्वास था। उनकी मान्यता थी कि अंग्रेज लोग न्याय प्रिय होते हैं और कालांतर में अपनी इसी न्यायशीलता के कारण धीरे–धीरे भारत का प्रशासन उदारवादियों के हाथों सौंप देंगे। उदारवादियों की मान्यता यह भी थी की वर्तमान परिस्थिति में भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था को केवल अंग्रेज ही व्यवस्थित रूप से संचालित कर सकते हैं। ऐसे नेताओं में दादाभाई नौरोजी, डी०ई० वाचा, बदरुद्दीन तैयब जी, डब्ल्यू सी बनर्जी, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, रहमतुल्ला सयानी, आनंद चार्लु आदि प्रमुख थे। कांग्रेस के नेता अंग्रेजी साहित्य और इतिहास से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण अंग्रेजी संपर्क को ईश्वर की अनन्य कृपा मानते थे। इस प्रकार वे लोग अंग्रेजी सरकार को शत्रु न मानकर भारतीयों का हितैषी समझते थे। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि अंग्रेजी शासन भारतीय लोगों के हित में है। उन्हें उम्मीद थी कि आने वाले समय में अंग्रेज उन्हें स्वशासन करने के योग्य बनाकर देश की सत्ता सौंप देंगे। इसीलिए ऐसे लोग अंग्रेजों के प्रत्येक कार्य में उनके सहभागी बनकर उनकी सहायता करने लगे। कांग्रेस के तकरीबन सभी अध्यक्षों ने अंग्रेजों के प्रति अपनी निष्ठा प्रदर्शन में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्हें यह विश्वास हो चला था यदि अंग्रेजी सरकार को भारत की स्थिति का अच्छी तरह से ज्ञान करा दिया जाए तो वे भारतीयों की मांगों को स्वीकार करने में जरा भी देर नहीं करेंगे। सन् 1886 में कोलकाता के दूसरे अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर रहते हुए अपने भाषण में अंग्रेजी राज्य के लाभ का विस्तार से वर्णन करते हुए यह घोषणा की– “आओ हम पुरुषों की तरह बोले और घोषणा कर दें कि हम अचूक राज भक्त हैं।”[1]

वहाँ उपस्थित प्रतिनिधियों ने उनका समर्थन करते हुए जोर से तालियाँ बजाकर महारानी विक्टोरिया की तीन बार जय ध्वनि की। फिरोजशाह मेहता ने भी कांग्रेस के छठवें अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में यह विश्वास व्यक्त किया था कि ब्रिटिश सरकार अंत में उनकी मांगों को स्वीकार कर लेगी, इसमें किंचित भी संदेह नहीं है। सन 1896 में कांग्रेस के 12वें अधिवेशन में मोहम्मद रहमतुल्ला सयानी ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से अभिभाषण करते हुए अंग्रेजों को विश्व के सर्वाधिक चरित्रवान लोगों की संज्ञा दी। उनके अनुसार– “अंग्रेजों से बढ़कर सच्चरित्र तथा सच्ची जाति इस सूर्य के प्रकाश के नीचे नहीं बसती।”[2]

इस प्रकार अंग्रेजों के प्रति समर्थन का भाव कांग्रेस के नेताओं के मन में निरंतर चलता रहा। सन् 1898 में कांग्रेस अध्यक्ष के तौर पर आनंद बोस ने भी कुछ इसी प्रकार का मंतव्य व्यक्त किया और अंग्रेजों के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करते हुए इस बात की उद्घोषणा की– “शिक्षित वर्ग इंग्लैंड का शत्रु नहीं अपितु उसके सम्मुख बड़े कार्य में उसका प्राकृतिक और आवश्यक सहयोगी है।”[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि नरम दल के लोग अंग्रेजों को अपना भाग्य विधाता मान चुके थे। उनकी प्रत्येक

बात में केवल ब्रिटिश सरकार का गुणगान ही दिखाई देता है। इस संदर्भ में गोपाल कृष्ण गोखले का वह वक्तव्य उल्लेखनीय है जो 1905 में बनारस अधिवेशन के दौरान अध्यक्षीय भाषण देते हुए उन्होंने कहा था। उनके शब्दों में– "हमारा भाग्य अंग्रेजों के साथ ही मिला हुआ है, चाहे वह अच्छे के लिए हो या बुरे के लिए।"[4]

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उदारवादी दल के नेता भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के बने रहने तथा उसको सुदृढ़ करने के पक्षधर थे। इसका एक मुख्य कारण अंग्रेजों की शासन व्यवस्था का चुस्त–दुरुस्त होना था। उदारवादी दल के लोग यह मानते थे कि ऐसा कार्य केवल अंग्रेज ही कर सकते थे इसीलिए गोपाल कृष्ण गोखले ने इस बात का उल्लेख किया कि– "अंग्रेज नौकरशाही कितनी ही बुरी क्यों न हो परंतु आज केवल अंग्रेज ही व्यवस्था बनाए रखने में सफल है और व्यवस्था के बिना कोई उन्नति संभव ही नहीं।"[5]

यद्यपि इस कालखंड में कांग्रेस ने भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की मांग नहीं की थी बल्कि उन्होंने कुछ रियासतों को ही प्राप्त करने की अभिलाषा व्यक्त की थी। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग लोकमान्य तिलक द्वारा किया गया था, किन्तु कांग्रेस के अधिकृत प्रस्तावों में इसका कोई उल्लेख नहीं था। कांग्रेस केवल संवैधानिक तरीकों से ही सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहती थी, इसलिए उन्होंने कभी भी क्रान्ति का मार्ग नहीं अपनाया। इसीलिए कुछ इतिहासकार इस युग को 'वैधानिक संप्रदाय' का युग कहते हैं, जिसमें इस युग के नेता वैधानिक साधनों से ही अपनी मांगों को पूर्ण कराना चाहते। उन्होंने परिषदों तथा व्यवस्थापिकाओं के माध्यम से ही राज कारोबार में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने का प्रयत्न किया। इस दल के नेता ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहते थे जो ब्रिटिश हुकूमत को नागवार गुजरे और उन्हें देश के नियमों के विरुद्ध लेकर जाए। वह अराजकता के बिल्कुल विरुद्ध थे और शांतिपूर्ण तरीके से स्वतंत्रता के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहते थे। अपनी मांगों को प्राप्त करने के लिए उन्होंने प्रार्थना पत्रों, स्मृति पत्रों तथा प्रतिनिधि मंडलों का सहारा लिया। इसीलिए राजनीतिक आलोचक इसे 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' का नाम देते हैं। नरमपंथी दल का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत स्वशासन की स्थापना करना था। सन् 1906 को कोलकाता में कांग्रेस के 22वें अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया और संसार के समक्ष अपना अंतिम राजनीतिक लक्ष्य प्रस्तुत कर दिया। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का प्रमुख लक्ष्य– 'स्वराज्य की प्राप्ति' का शंखनाद हो गया।

कांग्रेस की स्थापना के बाद के 20 वर्षों का प्रयास कुछ मायनों में सफल तो कुछ मायनों में असफल भी कहा जा सकता है। कई–कई विद्वान तो नरम दल की कठोर आलोचना करते हैं और उनके द्वारा अपनाए गए तरीके को 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' की संज्ञा देते हैं। उनके द्वारा यह आरोप भी लगाया जाता है तत्कालीन कांग्रेस का जनसाधारण से कोई संबंध नहीं रह गया था। कांग्रेस के नेता पूरी तरह अपने ही स्वार्थ में लगे रहे और राष्ट्र के लिए कोई भी त्याग करने के लिए तैयार नहीं थे। अंग्रेजों के प्रति उनकी राजभक्ति इसी भावना का परिणाम थी। यद्यपि पूर्ण रूप से यह नहीं कहा जा सकता की प्रारंभिक कांग्रेस के नेता पूरी तरह स्वार्थ में ही लिप्त थे क्योंकि उनके ही प्रयासों से कांग्रेस को एक आधारभूमि प्राप्त हो सकी थी। लाला लाजपत राय ने नरमवादियों द्वारा किए जा रहे आंदोलन को अवसरवादी आंदोलन की संज्ञा दी और कहा– "अधिक से अधिक इससे पाखंड और देशद्रोह को बढ़ावा मिला है। कुछ लोगों को देशभक्ति के नाम पर व्यापार करने

का अवसर मिला।"[6]

उदारवादी पक्ष पर लगने वाला सबसे बड़ा आरोप उनका ब्रिटिश राजसत्ता के प्रति राज भक्ति थी क्योंकि उनके मन मस्तिष्क में यह विचार समा गया था की अंग्रेजों के भारत भूमि से चले जाने पर भारत के राष्ट्रीय हितों को नुकसान होगा। इसे केवल तत्कालीन परिस्थितियों की उपज ही माना जा सकता है। उन्हें निकट भविष्य में अंग्रेजी राज्य का कोई विकल्प इसलिए दिखाई नहीं पड़ रहा था क्योंकि उनकी दृष्टि में भारतीयों में राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्वों का सर्वथा अभाव था। कुछ ऐसे भी नेता थे जो अंग्रेजों के प्रति अपनी राज भक्ति को देशवासियों के प्रति राजभक्ति से भिन्न नहीं मानते थे। इस संबंध में सन 1887 में दिए गए बिपिन चंद्र पाल के वक्तव्य को देखा जा सकता है, जिसमें उन्होंने कहा था– "मैं अंग्रेजों का राज भक्त हूँ क्योंकि मेरे लिए अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति राजभक्ति वास्तव में अपने देश और उसके वासियों के प्रति राज भक्ति दोनों अभिन्न है। मैं अंग्रेज के प्रति राज भक्त हूँ क्योंकि मैं स्वशासन को प्यार करता हूँ।"[7]

कांग्रेस का प्रारंभिक काल बहुत सारे मामलों में सफल भी रहा। यदि हम इस युग के नेताओं के प्रति न्याय करें तो हमें यह निश्चित रूप से स्वीकार करना होगा कि ये ऐसे लोग थे जो समकालीन भारतीय समाज में सर्वाधिक प्रगतिवादी और सच्चे देशभक्त थे, भले ही उनके कार्यों से अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित होती हो। अंग्रेजों के प्रति राज भक्ति का प्रदर्शन महज कांग्रेस को उसकी प्रारंभिक अवस्था में ही अंग्रेजों द्वारा कुचले जाने से बचाने के लिए किया गया प्रयास था। अंग्रेजों का विश्वास हासिल करके ही उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार के कार्यक्रमों में सफलता प्राप्त की। सन 1886 का लोक सेवा आयोग की स्थापना रही हो, अथवा 1892 में भारतीय परिषदों का अधिनियम रहा हो, इन दोनों महत्वपूर्ण कार्यों में कांग्रेस सफल रही, किन्तु निराशा की बात यह रही कि इसके द्वारा भी मूलभूत संविधान में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। उन्होंने ही आईसीएस जैसी प्रतिष्ठित सेवा के लिए भारत तथा इंग्लैंड में एक साथ परीक्षा कराये जाने की मांग की। इन सारे कार्यों को करने के लिए उन्होंने प्रार्थना, याचना और विरोध प्रकट करना जैसे हथियारों का प्रयोग किया। इसी से भारतीय जनमानस में राजनीतिक प्रौढ़ता आई, जिसके कारण उनमें राष्ट्रीय भावना की वृद्धि हुई। भारतीय लोगों की निर्धनता को समाप्त करने का प्रयास भी इस वर्ग द्वारा किया गया था। उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य के भारत पर आर्थिक प्रभाव का मूल्यांकन किया तथा अंग्रेजी औपनिवेशिक शोषण को ही भारतीय लोगों के निर्धनता का कारण माना था। दादा भाई नौरोजी, दत्त तथा वाचा द्वारा दिया गया "निकास का सिद्धांत' (ड्रेन थिअरी) वस्तुतः भारतीय संदर्भ में अंग्रेजों की आर्थिक योजना पर किया गया दोषारोपण था, जिसे आगे चलकर उग्रवादी दल द्वारा भी अंग्रेजों को बदनाम करने के लिए प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया। इसलिए कांग्रेस की प्रारंभिक सफलताओं तथा उनके नेताओं का मूल्यांकन करते समय हमें उनकी राष्ट्रभक्ति पर संदेह तो बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए क्योंकि वह ऐसा काल था जहाँ प्रत्यक्ष विरोध तथा संघर्ष द्वारा कुछ भी प्राप्त कर पाना संभव नहीं था। इसलिए याचना तथा विनम्र प्रदर्शन ही एकमात्र सहारा था। गोपाल कृष्ण गोखले इसी भावना का प्रकटीकरण करते हुए कहते हैं– "हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम देश की उन्नति के उस चरण पर हैं जहां हमारी उपलब्धियाँ थोड़ी ही होंगी और हमारी निराशाएं अधिक और कठोर। विधि का ऐसा ही विधान है कि हमें संघर्ष में यही भूमिका मिली है और जब हमने अपना कार्य सम्पन्न कर दिया है तो हमारा उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। निस्सन्देह

हमारी देशवासियों की आने वाली पीढ़ियाँ अपनी सफलताओं से भारत की सेवा करेंगी। हम आज की पीढ़ी अपनी असफलताओं से ही इसकी सेवा कर सन्तोष प्राप्त करें। यद्यपि यह बहुत कठिन है, इन असफलताओं से ही वह शक्ति आएगी जो अन्त में बड़े कार्य करने में सफल होगी।"[8]

पट्टाभी सीतारमैय्या भी कुछ इसी प्रकार का विचार व्यक्त करते हैं। उनके शब्दों में– "हम उनको उस रुख से अधिक के लिए दोषी नहीं ठहरा सकते जो उन्होंने भारतीय राजनीतिक सुधारों के मार्गदर्शक के रूप में अपनाया जितना कि हम उस ईट और मिट्टी को दोष दे सकते हैं जो कि एक आधुनिक भवन की नींव में छः फुट तक गड़ा है। उन्होंने भवन के ऊपरी भाग का बनाना सम्भव बनाया, मंजिल–दर–मंजिल औपनिवेशिक स्वशासन, साम्राज्य के भीतर स्वायत्ततापूर्ण शासन स्वराज्य और अन्त में पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग द्वारा।"[9]

गुरुमुख निहालसिंह भी पटाभी सीतारमैया तथा गोखले के विचारों का ही समर्थन करते दिखाई देते हैं। उनके शब्दों में– "प्रारम्भिक दिनों की काँग्रेस ने अपनी कादारी की घोषणाओं के साथ, मध्यम मार्ग तथा अपील के स्वर को ही नहीं प्रार्थना स्वर को अपनाया तथा उन दिनों राष्ट्रीय जागृति वाली राजनीतिक शिक्षा के सम्बन्ध में पर्याप्त वास्तविक कार्य किया। साथ ही उसने भारतीयों को संगठित करने तथा उनमें समान भारतीय राष्ट्रीयता की जागृति की भावना उत्पन्न करने में भी पर्याप्त योग दिया है।"[10]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि काँग्रेस के नर्म दलीय नेताओं की नीति तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप उचित व व्यवहारानुकूल थी तथा उसमें दूरदर्शिता का भी समावेश था। अगर उन्होंने आरम्भ में विनम्रता तथा उदारता का सहारा न लिया होता तो काँग्रेस को विराट स्वरूप प्रदान करा पाना संभव न होता। यदि कांग्रेस ने प्रारंभ से ही उग्र स्वरूप धारण किया होता तो उसके सशक्त होने के पूर्व ही ब्रिटिश सरकार उसकी जड़ उखाड़ कर फेंक सकती थी। अतः यह कहना गलत न होगा की नर्म दल के नेताओं ने काँग्रेस का पौधा लगाया और अपनी ममता से उसे उचित पर्यावरण तथा खाद पानी देकर बड़ा किया, जिससे कि यह पौधा भविष्य में विराट स्वरूप ग्रहण कर सकें और पुष्पित तथा पल्लवित हो सके। अतः कहा जा सकता है कि नरम पंथी लोगों की नीति ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का आधार तैयार किया था तथा उनके द्वारा ही ब्रिटिश शासन के दोषों को उजागर किया गया था। प्रारंभिक दौर में इन्हीं राष्ट्रवादियों ने मध्य, निम्न मध्य तथा शिक्षित वर्ग के भारतीय लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव किया और सभी को एक समान शत्रु साम्राज्यवाद के खिलाफ खड़ा किया। इसलिए यदि यह कहा जाए की आरंभिक कांग्रेस के राष्ट्रीय नेता ही भारतीय राजनीतिक जागरण के अग्रदूत थे, तो गलत नहीं होगा। इस प्रकार सन् 1885 से सन् 1905 ईसवी के बीच का कालखण्ड वस्तुतः भारतीय लोगों में राष्ट्रवादिता के बीजारोपण का समय था। इसी राष्ट्रीयता की भावना ने संपूर्ण भारत को एक सूत्र में बांध दिया और वे स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए मचल उठे।

संदर्भ

1. राजाराम यादव, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास, पृष्ठ–76, संस्करण–2005, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद
2. वही, पृष्ठ–76
3. बी०एल० ग्रोवर, अलका मेहता, यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन; पृष्ठ–300, 36वां संस्करण–2018, एस चंद एंड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली
4. राजाराम यादव, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास, पृष्ठ–76, संस्करण–2005, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद
5. बी०एल० ग्रोवर, अलका मेहता, यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास : एक नवीन मूल्यांकन, पृष्ठ–300, 36वां संस्करण–2018, एस चंद एंड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली
6. वही, पृष्ठ–301–302
7. वही, पृष्ठ–302
8. वही, पृष्ठ–302
9. वही, पृष्ठ–302
10. डॉ० शंकर बसंत मुद्गल, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन (1857–1947), पृष्ठ–52, संस्करण–2014, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर

भारत के आत्मनिर्भर अभियान में सौर ऊर्जा की भूमिका

डॉ० कौशल किशोर मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर – भूगोल विभाग
लाल विजयानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय
टिकरी अमेठी

सारांश :-

आत्मनिर्भर भारत अभियान में निश्चित रूप से भारत की सौर ऊर्जा की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अवसरों के नए द्वार खोले है। प्रस्तुत पत्र में सौर ऊर्जा में छिपा आत्मनिर्भर भारत की पूरी रूपरेखा का निरूपण किया गया है। पर्यावरण प्रबन्धन में भारत विश्व गुरू की भांति सम्पूर्ण विश्व का प्रतिनिधित्व करते हुए एक विश्व, एक सूर्य, एक ग्रिड की अवधारणा प्रस्तुत कर पूरे विश्व का शुभचिन्तक होने का एहसास करा दिया है। 'मेड इन इंडिया' ने देश की अर्थव्यवस्था को वापस पटरी पर ला खड़ा किया है जिसमें सौर ऊर्जा की भूमिका का निरूपण किया गया है। भारत में ऊर्जा की भारी कमी को पूर्ण करने में सौर ऊर्जा सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। भारत की जलवायु परिवर्तन के खिलाफ अपनी प्रतिबद्धता को साकार करने तथा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में सौर ऊर्जा के योगदान को सविस्तार निरूपित किया गया है। सौर ऊर्जा तकनीक का उल्लेख कर महत्वाकांक्षी योजनाओं की ऊर्जा पूर्ति के अनेक उपायों को सुझाया गया है। क्लीन एनर्जी के उत्पादन पर देश जिस तरह निरन्तर प्रगतिशील है इससे 2050 तक पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर होने का लक्ष्य भी रखा गया है। कुसुम योजना का लाभ तथा आत्मनिर्भरता की तरु अग्रसर अनेक आयामों का वृहद विश्लेषण किया गया है।।

मुख्य शब्द :- सौर ऊर्जा, आत्मनिर्भर, अवधारणा, अभियान, योजना, अर्थव्यवस्था, तकनीक, जलवायु, एनर्जी, मेगावाट, मॉड्यूल, सिलिकॉन, केर, सेल, मॉड्यूल, सोलर पैनल, संसाधन, ऊर्जा, उपकरण, परियोजना, किलोवाट, महत्वाकांक्षा।

प्रस्तावना :-

आत्मनिर्भर भारत के निर्माण के लिए ऊर्जा बहुत जरूरी है। कोयले और जल से प्राप्त बिजली ही देश के आत्मनिर्भर बनाने में सहायक नहीं है। विद्युत उत्पादन में रेडिएशन और प्रदूषण का खतरा भी कम नहीं। देश की बढ़ती आबादी और कारोबारी संभावनाओं के मद्देनजर वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोत की तलाश बहुत पहले

ही आरम्भ हो गई थी इस तलाश में भारत न केवल सफल हुआ बल्कि स्वच्छ और क्रियाशील ऊर्जा बनाने के मामले में उसने दुनिया के शक्तिशाली देशों को भी बहुत पीछे छोड़ दिया है। मध्य प्रदेश के रीवा जिले में एशिया के सबसे बड़े 750 मेगावाट क्षमता के सौर ऊर्जा संयंत्र का शुभारंभ भारत की ऐतिहासिक उपलब्धि है। चार हजार करोड़ की लागत से बने इस सौर ऊर्जा संयंत्र की स्थापना से रीवा, सफेद बाघ और नर्मदा के लिए ही नहीं, सौर पार्क के लिए भी पूरी दुनिया में जाना जाएगा। यहां उत्पन्न होने वाली वैकल्पिक, स्वच्छ और सस्ती सौर ऊर्जा का लाभ मध्य प्रदेश ही नहीं, दिल्ली मेट्रो को भी मिलेगा। सौर ऊर्जा भरोसेमंद, शुद्ध और सुरक्षित है। भारत अब दुनिया के सौर ऊर्जा उत्पादक शीर्ष पांच देशों में शामिल हो गया है। इससे बड़ी उपलब्धि और प्रसन्नता की बात किसी देश के लिए भला और क्या हो सकती है। रीवा सौर पार्क की मध्य प्रदेश ऊर्जा विकास निगम लिमिटेड और सोलर एनर्जी कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया के संयुक्त उपक्रम रीवा अल्ट्रा मेगा सोलर द्वारा विकसित किया गया है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने यह विश्वास दिलाया है कि इस संयंत्र के सुचारू संचालन के साथ ही मध्य प्रदेश साफ–सुथरी और सस्ती बिजली का हब बन जाएगा। इससे किसानों, मध्यम और गरीब परिवारों और आदिवासियों को ल़ायदा होगा। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी 'मेक इन इंडिया' कार्यक्रम को बहुत आक्रामक तरीके से बढ़ावा दे रहे है इसका लक्ष्य भारत के घरेलू निर्माण क्षेत्र को मजबूत बनाकर देश की अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाना है।

भारत की ऊर्जा उत्पादन एवं आवश्यकता :-

भारत में ऊर्जा की भारी कमी है। विश्व बैंक के अनुसार देश में अब भी 20 करोड़ लोगों के पास बिजली की सुविधा का अभाव है। वर्ष 2035 तक भारत में ऊर्जा की मांग में 4.2 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि होगी जो दुनिया की सभी प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में सबसे अधिक है। विश्व के ऊर्जा बाजार में भारत की मांग 2016 में पांच प्रतिशत थी जो 2040 तक बढ़कर 11 प्रतिशत हो जाएगी। चूंकि, भारत की जीवाश्म ईंधन जैसे कि कोयले और तेल पर निर्भरता वर्ष 2030 तक काफी कम होने की उम्मीद जताई जा रही है ऐसे में कम कार्बन उत्सर्जन वाले ऊर्जा के स्रोत जैसे कि सौर ऊर्जा के माध्यम से भारत की आधी से अधिक ऊर्जा जरूरतों को पूरा किया जाएगा। इसके अलावा भारत ने जलवायु परिवर्तन के खिलाफ अपनी प्रतिबद्धता के अंतर्गत वर्ष 2030 तक अपनी कुल ऊर्जा की मांग का 40 फीसद हिस्सा गैर जीवाश्म ईंधन वाले स्रोतों से पूरी करने का वादा किया है फिर भी भले ही भारत में सौर ऊर्जा के निर्माण की मांग 20 गीगावाट प्रति वर्ष हो लेकिन इसके संसाधनों की निर्माण क्षमता केवल 3 गीगावाट की जरूरतों को पूरा कर पाने में सक्षम है। ऐसे में घरेलू सौर ऊर्जा निर्माण क्षेत्र के विकास में और देरी होने से देश की ऊर्जा सुरक्षा और अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा असर डालेगी।

भारत को तुरंत ही एक ऐसा नीतिगत ढांचा बनाने की जरूरत है, जिससे वो सौर ऊर्जा के उपकरणों जैसे सोलर मॉड्यूल के घरेलू निर्माण उद्योग और इनसे जुड़े अन्य उत्पादों के निर्माण को बढ़ाए और आयात पर अपनी निर्भरता कम करके आत्मनिर्भर बने। इसलिए भारत को तुरंत ही एक ऐसा नीतिगत ढांचा

बनाने की जरूरत है, जिससे वो सौर ऊर्जा के उपकरणों जैसे सोलर मॉड्यूल के घरेलू निर्माण उद्योग और इनसे जुड़े अन्य उत्पादों के निर्माण को बढ़ाए और इनके आयात पर अपनी निर्भरता कम करके आत्मनिर्भर बने। ताकि देश को स्थायी और कम लागत वाले ऊर्जा संसाधन मिल सकें और इनके माध्यम से रोजगार के भी अधिक अवसर पैदा हों।

वर्ष 2011 तक सौर ऊर्जा के मॉड्यूल बनाने और इनके निर्यात में भारत अव्वल हुआ करता था। भेल, टाटा पावर, मोजर बियर, इंडोसोलर और लैंको जैसे निर्माताओं ने देश में इस उद्योग की शुरूआत की थी। लेकिन, सरकार की नीतियों में उलट ेर और वित्तीय मदद की कमी के कारण इस क्षेत्र का औद्योगिक विकास आगे नहीं बढ़ सका। घरेलू उत्पादन के मुकाबले सस्ते चीनी आयात ने भारत के घरेलू सौर ऊर्जा उद्योग की तकनीक और निर्माण क्षेत्र के विकास को रोक दिया। आज देश को राष्ट्रीय सोलर मिशन से मेल खाती हुई एक ऐसी आक्रामक रणनीति की जरूरत है, जिससे सौर ऊर्जा उद्योग का लंबी अवधि के लिए विकास किया जा सके और इसके माध्यम से मुनफ़ा बरकरार रखते हुए सस्ते आयात का मुकाबला करने लायक निर्माण किया जा सके। इसके लिए उचित दर पर वित्तीय संसाधन मुहैया कराए जाने चाहिए। ताकि घरेलू निर्माण क्षमता की कमी को जल्द से जल्द दूर किया जा सके। अगर भारत ऐसा कर पाता है, तो घरेलू सौर ऊर्जा निर्माण उद्योग का विकास होने से भारत वर्ष 2030 तक लगभग 42 अरब डॉलर के सौर ऊर्जा उपकरणों के आयात की बचत कर सकेगा। साथ ही साथ वो सौर ऊर्जा क्षेत्र की आपूर्ति की सुरक्षा दे सकेगा। इससे देश में अगले पाँच वर्षों में 50 हजार नौकरियों का प्रत्यक्ष रूप से तो सवा लाख रोजगार का अप्रत्यक्ष रूप से सृजन हो सकेगा।

रीवा सौर ऊर्जा संयंत्र स्वच्छ प्रौद्योगिकी कोष से 0.25 फीसदी ब्याज पर 40 साल की अवधि के लिए प्राप्त धन से तैयार भारत की पहली सौर ऊर्जा परियोजना है। यह भारत का पहला सोलर पार्क है जिसे विश्व बैंक से रियायती ऋण मिला है। इस परियोजना से राज्य डिस्कॉम को 4600 करोड़ रुपये और दिल्ली मेट्रो को 1400 करोड़ रुपये की बचत होगी, ऐसा दावा किया जा रहा है। रीवा परियोजना में 250–250 मेगावॉट की तीन सौर उत्पादक इकाइयां हैं और यह सौर पार्क के अंदर 500 हेक्टेयर की जमीन पर स्थापित हैं। अल्ट्रा मेगा सौर ऊर्जा संयंत्र के निर्माण के लिए 1542 हेक्टेयर भूमि उपलब्ध कराई गई है। जिसमें 1276.546 हेक्टेयर वन भूमि अधिग्रहीत की गई है, शेष निजी भूमि है। मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान अगर यह कह रहे हैं कि विभिन्न सौर ऊर्जा परियोजनाओं के जरिये मध्य प्रदेश भविष्य में 10 हजार मेगावॉट बिजली का उत्पादन करेगा और आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में अहम योगदान देगा तो इससे उनके आत्मविश्वास और देश को आगे ले जाने की भावना ही झलकती है। शाजापुर, नीमच और छतरपुर में भी बड़े सोलर पावर प्लांट पर काम चल रहा है। ओमकारेश्वर बांध पर तैरने वाला सौर ऊर्जा संयंत्र लगा है, यह इस बात का द्योतक है कि सौर ऊर्जा के क्षेत्र में प्रदेश को आत्मनिर्भर बनाने की बड़ी सोच के तहत यह सब किया जा रहा है।

सौर ऊर्जा को श्योर, प्योर और सिक्योर बताते हुए प्रधानमंत्री ने जो वजह बताई हैं, वे पूर्णतया वाजिब है। सूर्य हमेशा चमकता रहेगा। उससे इस देश को हमेशा ऊर्जा मिलती रहेगी। इससे पर्यावरण पूरी तरह से सुरक्षित और साफ–सुथरा बना रहेगा। इससे बिजली की जरूरत को आसानी से पूरा किया जा सकेगा। प्रधानमंत्री ने वन वर्ल्ड, वन सन, वन ग्रिड की बात कहकर पूरी दुनिया का ध्यान

अपनी ओर खींचा है। रीवा के गुढ़ में स्थापित इस सौर ऊर्जा संयंत्र परियोजना से पैदा हुई बिजली का 76% हिस्सा प्रदेश की पावर मैनेजमेंट कंपनी और 24% दिल्ली मेट्रो को मिल रहा है। 2 रुपए 97 पैसे प्रति यूनिट बिजली मिलना, इस परियोजना की बड़ी खासियत है। रीवा सौर परियोजना से हर साल 15.7 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन रुकेगा। जाहिर है, इन अपार संभावनाओं को देखते हुए इस क्षेत्र में विदेशी निवेश में भी बढ़ोतरी होगी।

सौर ऊर्जा तकनीक :-

सोलर सेल का निर्माण करना एक प्रक्रिया है जिसमें उच्च तकनीक भी लगती है और काफी पूंजी भी लगानी पड़ती है और ऊर्जा के उपकरणों की आपूर्ति श्रृंखला में पॉली सिलिकॉन, केर, सेल और मॉड्यूल की असेंबली होती है सौर ऊर्जा से संबंधित भारत की अधिकतर कंपनिया अभी केवल मॉड्यूल असेंबली का काम करती हैं। भारत के पास ज्यादा लागत और तकनीकी सक्षमता वाले सिलिकॉन और इन्गॉट के उत्पादन का तकनीकी अनुभव नहीं है। भारतीय कंपनियों ने सौर ऊर्जा के क्षेत्र में अब तक केवल 246 पेटेंट कराए हैं। साफ है कि सौर ऊर्जा तकनीक के क्षेत्र में भारत की उपलब्धियां बेहद कम हैं जबकि भारत के मुकाबले दुनिया के सबसे बड़े सौर ऊर्जा उपकरण निर्माता चीन की कंपनियों ने 39 हजार 784 पेटेंट करा रखे हैं। सौर ऊर्जा के संसाधनों के निर्माण की तकनीक के क्षेत्र में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं। इसमें पूंजी की भी जरूरत होती है और जानकारी की भी। जहां तक नई तकनीक हासिल करने में आने वाली लागत की बात है, तो भारत को अपने रिसर्च और विकास को बढ़ावा देना चाहिए। ताकि स्वदेशी निर्माता कम लागत वाले स्वदेशी और अगली पीढ़ी के सोलर पैनल बनाने वाली तकनीक विकसित कर सकें।

अब चूंकि निर्माण की प्रक्रिया में तीन स्तर के कामगारों की जरूरत होती है। जिनके पास अलग-अलग तरह के हुनर हों। जैसे कि डिजाइन और मैन्युफैक्चरिंग के इंजीनियर, बिल्डिंग सिस्टम के विशेषज्ञ, मॉडल बनाने वाले और असेंबली लाइन के श्रमिक। ऐसे में वैल्यू चेन के हर स्तर पर कौशल की कमी का विश्लेषण करके, क्षमताओं के विकास की नीतियां बनाना एक सही दिशा में उठाया जाने वाला कदम होगा। हालांकि नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ सोलर एनर्जी (NISE) सौर ऊर्जा के क्षेत्र में रिसर्च और अनुसंधान, परीक्षण, स्किल डेवेलपमेंट और सर्टिफिकेट देने का काम कर रहा है, लेकिन, इस संस्थान का पूरा ध्यान और ऊर्जा के उत्पादन पर है। एनएसआईई और अन्य बड़े तकनीकी संस्थानों जैसे कि आईआईटी, आइटीआई, सीएसआईआर और नेशनल स्किल डेवेलपमेंट काउंसिल मिल कर कौशल विकास के कार्यक्रम बना सकते हैं जिनके माध्यक से भारत सौर ऊर्जा के निर्माण क्षेत्र का विकास कर आत्म निर्भर बन सकता है।

आत्मनिर्भर भारत अभियान में सौर ऊर्जा का लक्ष्य :-

पिछले कुछ सालों में भारत में प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत में वृद्धि हुई है। इस स्थिति में अक्षय ऊर्जा के क्षेत्र में संभावनाएं बढ़ती जा रही है। इसी संदर्भ में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने आत्मनिर्भर बनने का आह्वान

किया है। उन्होंने वर्ष 2018 में आयोजित अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन की पहली सभा में 'एक विश्व, एक सूर्य, एक ग्रिड' की अवधारणा प्रस्तुत की। इसका उद्देश्य ही एक ग्रीन ग्रिड के माध्यम से पूरी दुनिया में अक्षय ऊर्जा में आपूर्ति संतुलन स्थापित करना और आपस में साक्षा करना था। ऐसी व्यवस्था से सातों दिन और 24 घंटे विद्युत की आपूर्ति की जा सकती है। हमारे देश के द्वारा प्रस्तुत की गई यह अवधारणा नवीनीकरण ऊर्जा को बढ़ावा देने की दिशा में बड़ा कदम है और यह भी संकेत करता है कि भारत ऐसे अवधारणा के माध्यम से आत्मनिर्भरता की ओर तो बढ़ेगा ही साथ ही ऊर्जा के क्षेत्र में पूरे विश्व का नेतृत्व भी करेगा। भारत ने सौर ऊर्जा के क्षेत्र में काफी उपलब्धियां हासिल की है और यह भी अनुमान लगाया जा रहा है कि साल 2030 तक यह साढ़े चार सौ गीगावाट तक ऊर्जा हरित साधनों से पैदा करेगा। हमारे देश में सौर ऊर्जा की प्रचुरता है और यह पर्यावरण की दृष्टि से पूरी तरह सुरक्षित है। हम सौर ऊर्जा के क्षेत्र में दुनिया के शीर्ष देशों में शामिल हो रहे हैं, यह अच्छी उपलब्धि है। मेक इन इंडिया अभियान के तहत भारत सरकार द्वारा सोलर प्लांट लगाने को प्रोत्साहन देने के लिए विशेष छूट दिये जा रहे हैं।

भारत सौर ऊर्जा से बिजली पैदा करने वाले सबसे बड़े देशों में शामिल हो गया है। भारत इस क्षेत्र में अपने पारंपरिक अनुभवों को आधुनिक विज्ञान के साथ जोड़कर सम्पूर्ण जनमानस के जीवन में बदलाव ला रहा है। भारत के किसान कुसुम योजना का लाभ लेकर अपने खेतों में सोलर पंप लगाकर आत्मनिर्भर हो रहे हैं और बहुत से लोगों को सौर ऊर्जा से बिजली उत्पादन करने से बिल आने की बजाय बिजली के पैसे भी मिल रहे हैं। गुजरात के मौढ़ेरा गाँव के ज्यादातर घर सोलर पावर से बिजली पैदा करने लगे हैं जिसके फलस्वरूप सरकार बहुत से गाँवों को सौर ऊर्जा में आत्मनिर्भरता की तरफ कदम बढ़ाते हुए सूर्यग्राम में बदले जा रहे है। जिससे गाँवों में 24 घण्टे बिजली भी आ रही है ओर बिजली का बिल भी नहीं आ रहा है। ओडिशा के केन्दूझर जिले के आदिवासी महिलाओं को सोलर से चलने वाली रोलिंग मशीन पर रेशम कताई का प्रशिक्षण मिल रहा है जिससे वे अपने कुटीर उद्योग के पूर्णरूप से आत्मनिर्भर हो रही है। प्रधानमंत्री द्वारा 'मिशन लाइफ' भी शुरू किया गया है यह पर्यावरण संरक्षण के लिए एक समर्पित कार्यक्रम है। मिशन लाइफ का सीधा सिद्धांत है कि ऐसी जीवन शैली को बढ़ावा दिया जाए जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाये बिना विकास पथ पर अग्रसर होते हुए आने वाली पीढ़ियों के जीवन का सुखमय बनाये रखें।

स्रोत :-

1. आत्मनिर्भर अभियान से भारत के सौर ऊर्जा की बदलती तस्वीर–अपनीराव।
2. By Air News October 30, 2022 page 137.
3. सौर ऊर्जा में छिपा आत्मनिर्भर भारत का सपना–सियाराम पाण्डेय।
4. Agniban 14 Jul-2020.

महिला स्वाबलम्बन एवं सहकारी डेयरी समितियों के विकास में शिक्षा का योगदान

डॉ० रवेन्द्र राजपूत,
असि० प्रोफेसर,
बी०एड० विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

सार

महिलाओं के स्वावलम्बन का अर्थ है महिलाओं का आत्मनिर्भर एवं शक्तिशाली होना। महिलाओं को अपने निर्णयों पर चलने की स्वतंत्रता हो। स्वावलम्बन का अर्थ केवल आर्थिक स्वतंत्रता ही नहीं है वरन् उन्हें अपने शक्ति तथा सामर्थ्य के अनुसार अपनी योग्यता सिद्ध करने की आजादी हो। जो नारी अभी तक दमित, शोषित, अबला, शक्तिहीन व पुरुषों के अधीन समझी जाती हैं, उसके शक्तिशाली, सबला तथा उनकी स्वतंत्रता प्राप्त करना ही उनका आर्थिक तथा सामाजिक दोनों रूपों में स्वावलम्बी होना व्यक्त करता है एक महिला ही परिवार का सृजन करती है जिसके कारण ही घर, समाज और राष्ट्र का समग्र विकास हो पाता है और शिक्षा इसमें अपनी महती भूमिका निभाती है। जहां तक महिला साक्षरता का प्रश्न है 1951 में मात्र 7.3 प्रतिशत महिलायें शिक्षित थीं वहीं आज 54.14 प्रतिशत महिलायें शिक्षित हैं।

आज भारत दुग्ध उत्पादन में आत्मनिर्भर है तथा निरन्तर विश्व का सबसे अधिक दूध उत्पादन करने वाला देश है। वर्ष 2015-16 में विश्व के कुल दूध उत्पादन में भारत 18 प्रतिशत योगदान रहा। भारत में सहकारी डेयरी समितियाँ महिलाओं को स्वालम्बी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। सहकारी डेयरी समितियाँ दुग्ध उत्पादकों को दूध की बिक्री से प्राप्त धनराशि का अधिकतम भाग (लगभग 75 प्रतिशत) हस्तान्तरित कर देती है। भारत में आज 200 से अधिक सहकारी डेयरी समितियाँ हैं जिनमें लगभग 1.70 लाख गाँव सम्मिलित हैं जिनकी पहुँच 1.58 करोड़ दूध उत्पादकों तक है। इन सहकारी समितियों में 48 लाख से अधिक महिला सदस्य शामिल हैं। ये सहकारी डेयरी समितियाँ देश के 5 वें हिस्से को कवर करती हैं।

डेयरी उद्योग में महिलाओं का योगदान सराहनीय हैं। देश के अधिकांश भागों में महिलायें ही हैं जो पशुओं की देखभाल करती हैं, उन्हें चारा खिलाती है और दूध दुहती हैं। फिर भी सहकारी समितियों के प्रबन्धन में उनकी भागीदारी कम ही रही हैं। सहकारी डेरी समितियों में

महिलाओं की भूमिका को प्रोत्साहित करने, मान्यता देने तथा दुग्ध सहकारी समितियों के सदस्यों और लीडरशिप के रूप में उनकी भागीदारी बढ़ाने में शिक्षा ही उनकी संगिनी बन सकती है। महिलाओं को स्वाबलम्बी बनाने के लिए शिक्षा के योगदान पर प्राची थापन कहती हैं– "आज एक खुशहाल भविष्य की कामना करते हुए संकल्प लें कि मैं अपने कौशल को पहिचानुँगी और स्वावलम्बी बनकर दूसरों के लिए प्रेरणा स्रोत बनूंगी, मैं स्वयं एक स्वाबलम्बी लड़की हूँ, मैं घर और अपने व्यवसाय दोनों का उचित प्रबन्धन करती हूँ। ना मैं डाक्टर हूँ, ना वकील और न ही शिक्षिका पर हाँ मैं शिक्षित हूँ और एक सहकारी समिति में काम करती हूँ और इस बात से खुश हूँ कि मैं स्वावलम्बी हूँ।" इसलिए सहकारी डेयरी समितियों से जब एक शिक्षित महिला जुड़ती है तो वह पशुओं के उचित व सन्तुलित आहार, देखभाल, उपचार, दुग्ध उत्पादन, विपणन एवं प्रबन्धन कार्यों को बिना किसी बाधा के पूर्ण कर पाती है।

दूध हमेशा ही किसी ना किसी रूप में हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है चाहे वह खाने–पीने की बात हो या फिर पूजा–पाठ आदि की बात हो। "दूधों नहाओ, पूतों फलों" का आशीर्वाद भी हमारे बुजुर्ग देते आए है। रोजगार उत्पन्न करने तथा आदमी के जीवन निर्वाह के लिए भी यह एक रोजगारजनक के रूप में देखा जाता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में सहकारी दुग्ध उत्पादन सफलता की हमारी महान् गाथाओं में शामिल रहा है और ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक–आर्थिक विकास पर इन दुग्ध सहकारी सामतियों का गहरा प्रभाव रहा है। आज स्थिति यह है कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश बन गया है जहां लगभग हर वर्ष 10.2 करोड़ मीट्रिक टन दूध का उत्पादन होता है।

गांवों का देश होने के नाते भारत के आर्थिक विकास के लिए ग्रामीण विकास आवश्यक हैं। इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के आर्थिक कल्याण और जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए उचित स्तर पर प्रयास किए जाएं। विकसित और विकासशील, दोनों ही अथव्य व स्थान में तृतीयक क्षेत्र की पहचान सामाजिक–आर्थिक विकास खासकर ग्रामीण लोगों के विकास में एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में की गई है। यह ऐसा क्षेत्र है जो कृषि और अनुषंगी गतिविधियों के माध्यम से सामाजिक–आर्थिक विकास कार्यक्रमों को लागू करने और साथ में ग्रामीण विकास में कई तरह से बहुमूल्य योगदान कर रहा है। इसी संदर्भ में दूध उत्पादन सहकारी संगठनों के विभिन्न पहलुओं, ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सामाजिक–आर्थिक विकास में उनकी भूमिका आदि का अध्ययन आवश्यक हो गया।

भारत में डेयरी सहकारिता का विकास

भारत में डेयरी विकास के प्रारंभिक प्रयास ब्रिटिश शासनकाल में उस समय से खोजे जा सकते हैं, जब रक्षा विभाग ने औपचारिक सेना के लिए दूध और घी की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए सैन्य डेयरी फार्मों की स्थापना की थी। इस तरह का पहला फार्म सन् 1913 में उ०प्र० के इलाहाबाद शहर में स्थापित किया गया था। बाद में बंगलौर और करनाल में इसी तरह के फार्म खोले गए। इसके बाद द्वितीय विश्वयुद्ध में भी कुछ हद तक आधुनिक प्रसंस्करण सुविधाओं के साथ निजी डेयरी उद्योग को बढ़ावा दिया गया। समय बीतता गया

और भारत में आयोजना काल शुरू होने के साथ ही डेयरी उद्योग का भी भविष्य उज्जवल हो गया। सरकार ने पहली ही योजना (1951) में इस उद्योग को प्राथमिकता इसका लक्ष्य देश की बढ़ती शहरी आबादी के लिए स्वास्थ्यवर्धक दूध उपलब्ध कराना था। इस दिशा में सरकार के प्रारंभिक प्रयासों में बड़े शहरों के लिए दूध योजना विभागों की स्थापना भी की गयी थी। दूध उत्पादन में तेजी लाने के लिए सरकार ने एकीकृत पशु विकास परियोजना और महत्वपूर्ण ग्राम योजना आदि कार्यक्रम लागू किए है।

डेयरी विकास के लिए आनंद मॉडल के प्रयासों को बढ़ावा देने के लिए तैयार किए प्रमुख कार्यक्रमों में ऑपरेशन फ्लड शामिल है। श्वेत क्रांति का पहला चरण 1970 में विश्व खाद्य कार्यक्रम के साथ एक समझौते के बाद प्रारंभ हुआ। इसके अंतर्गत विश्व संगठन ने कार्यक्रम के लिए अर्थ प्रबंध सहायता के रूप में कुछ कच्चा माल उपलब्ध कराया। कार्यक्रम के अंतर्गत ग्राम स्तर पर डेयरी सहकारी संस्थाओं का गठन, दूध खरीदने, उसके प्रसंस्करण, विपणन और उत्पादन वृद्धि सेवाओं के लिए यूनियन स्तर पर भौतिक और संस्थागत ढांचा तैयार करने, और भारत के प्रमुख महानगरीय केंद्रों में डेयरियों की स्थापना जैसे प्रयास शामिल थे। कार्यक्रम का लक्ष्य हासिल करने में धवल क्रांति के पहले चरण ने आधुनिक भारतीय उद्योग की आधारशिला रखी। यह एक ऐसा उद्योग था जिसे अंततः दूध और दूध उत्पादों की देश की आवश्यकता पूरी करनी थी। 1970 के दशक के शुरू में धवल क्रांति के विस्तार की तुलना व्यापक हरित क्रांति से की गयी।

श्वेत क्रांति का दूसरा चरण 1981 और 1985 में लागू किया गया। पहले चरण के दौरान निर्मित आधारभूत सुविधाओं को ध्यान में रखकर इस चरण में भारतीय डेयरी एसोसिएशन की सहायता से कुछ राज्यों में जारी डेयरी विकास परियोजनाओं को एक समग्र कार्यक्रम में एकीकृत करने का प्रयास किया गया। विश्व बैंक ने भी इस योजना के लिए आर्थिक मदद की है जिससे इस परियोजना की महत्ता साबित होती है।

श्वेत क्रांति के वर्तमान चरण यानी तीसरे चरण का लक्ष्य सहकारी संस्थानों के लिए आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करना है। कार्यक्रम के लिए विश्व बैंक ने 37 करोड़ अमेरिकी डॉलर, यूरोपीय आर्थिक समुदाय ने वस्तु और नकद सहायता तथा राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड ने अपने आंतरिक संसाधनों से धन निवेश किया है। कार्यक्रम के दौरान डेयरी प्रसंस्करण और विपणन सुविधाओं का व्यापक विस्तार करने, दूध खरीदने के लिए आधारभूत ढांचे को बढ़ावा देने, उत्पादन बढ़ाने की गतिविधियों के दायरे का विस्तार करने और डेयरी संस्थानों में प्रबंधन का व्यावसायीकरण करने का प्रयास आज भी जारी है।

महिला डेयरी सहकारिता

किसान और कृषि श्रमिक दोनों के लिए वर्तमान में अपने परिवार तथा स्वास्थ्य को बनाये रखना मुश्किल हो रहा है। ग्रामीण गरीब मुश्किल से 100–150 दिन का ही काम प्राप्त कर पा रहे हैं। यहां तक कि सघन कृषि वाले क्षेत्रों में भी, जहां काम की उपलब्धता अधिक है, यह खास मौसम के कुछ महीनों में ही है। पत्नी और कुछ बच्चों के साथ निर्वाह के लिए पति की आय हमेशा अपर्याप्त है। यद्यपि महिलाएं भी काम करने के लिए इच्छुक हैं, परंतु अवसर कम हैं और पारिश्रमिक भी कम है। नीति निर्धारकों के लिए महिलाओं को

लाभकारी रोजगार की ओर आकृष्ट करना हमेशा एक मुद्दा रहा है। आनंद दुग्ध संघ ने अनुभव होते ही ग्रामीण महिलाओं को शामिल कर ग्रामीण रोजगार के राष्ट्रीय कार्यक्रम में डेयरी आंदोलन मुख्य रूप से चिन्हित कर लिया गया था। आठवें दशक तक आंध्र प्रदेश में डेयरी सहकारिताओं में महिलाओं के सराहनीय निष्पादन ने इसे अन्य राज्यों में लागू करने के लिए उत्साहित किया। इस तरह डेयरी कार्य को परिवार से संबद्ध माना गया तथा मिश्रित लिंग वाली सहकारिताओं की वकालत को समर्थन मिला।

परंतु केवल महिलाओं वाली सहाकारिताओं ने यह प्रदर्शित किया कि इसके कार्यक्रम आयोजना में लिंग आधारित अंत:क्षेपों ने न केवल आय और रोजगार की वृद्धि की बल्कि परिवार और समाज में महिलाओं की स्थिति भी बेहतर हुई तथा उन्हें समाज में अधिक बड़े परिवर्तन की ओर उन्मुख किया।

महिला डेयरी सहकारिता सोसाइटी को गठित करने हेतु परियोजना के तहत परीक्षक उपस्करों सहित निवेश, प्रबंधकीय आर्थिक सहायता, दुधारू पशुओं के क्रय हेतु अतिरिक्त राशि, चारा, खनिज मिश्रण, सामान्य सदस्यों, समिति सदस्यों तथा क्षेत्र भ्रमण और रोजगार समर्थक सेवाएं भी उपलब्ध कराई गई थी। स्वयं सहायता समूहों का गठन तथा अनौपचारिक शिक्षा देना भी ऐसे आयाम थे जिनका प्रचार करने पर विचार किया गया था। डेयरी संगठन के अंदर फेडरेशन तक सहकारिता संरचना के सभी पदानुक्रमों से प्रतिस्पर्धा करने की सुविधा महिलाओं को प्रदान करने पर भी विचार किया गया। सामाजिक उद्धार की अपेक्षाओं के अनुसार महिला डेयरी सहकारिता सोसाइटी ग्रामीण महिला नेतृत्व के विकास में मदद करेगी। यह इस तथ्य से प्रमाणित है कि ये महिलाएं कई स्वयंसहायता समूहों का गठन कर रही हैं जो उपभोक्ता भंडार, स्कूल की वर्दी, चाक बनाने, पेपर, पापड़ तथा अचार बनाना आदि तमाम गतिविधियां चला रही हैं। महिलाओं की इन सभी क्रियाओं से ग्रामीण भारत में ग्रामीण उद्यमियों तथा ग्रामीण महिला नेतृत्व का विकास हुआ है।

हाल ही के वर्षो में ग्रामीण–स्तरीय नेतृत्व सामान्यत: पारंपरिक तथा इसका दृष्टिकोण रूढ़िवादी रहा है और छुआछूत को मानता रहा है। अब यह कलंक तेजी से मिट रहा है। इस महिला सोसाइटी में अधिकतर महिलाएं पिछड़ी जातियों से हैं। विभिन्न जाति की महिलाओं को एक साथ देखना अपने आप में एक अलग किस्म का अनुभव है। यह केवल एक समूह के माध्यम से लोगों का निकट आना नहीं है बल्कि वर्षो से मौजूद जातिगत विद्वेषों का टूटना भी है। अवशोषक कार्य के अलावा इस सोसाइटी ने विभिन्न वर्ग की कृषक महिलाओं को कुछ विशिष्ट लाभ भी प्रदान किए हैं। यह लाभ अमीर एवं गरीब दोनों को प्राप्त है तथा विशेषत: उच्च जाति की उन महिलाओं को भी जिन्होंने पहले कभी पशुपालन कार्य नहीं किया है। मध्यम जाति के किसानों हेतु संगठन के स्तर पर साधारण लाभ की भी प्राप्ति होती है।

महिला डेयरी सहकारिता सोसाइटी की सफलता के कई ऐसे प्रतिबिम्ब है, जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। प्रत्येक ग्राम में इस सोसाइटी में औसतन 50–55 सदस्य हैं और उनमें से करीब दो तिहाई निश्चित रूप से लाभार्थी हैं। इस तरह एक गांव में कम से कम 35 परिवार मुख्य व्यवसाय के रूप में डेयरी से आर्थिक लाभ प्राप्त करने लायक है, जबकि प्रत्येक गांव में कम से कम दो महिलाएं सीधी लाभार्थी हैं। सचिव, दूध टेस्टर, प्राथमिक पशु चिकित्सा कार्यकर्ता एवं प्रधान दानकर्ता जैसे सभी तकनीकी कुशल कार्यकर्ताओं को अब अतिरिक्त काम मिल गया है। अग्रणी टीम के छोटे समूह के अलावा प्रबंध समिति के नौ सदस्यों, एक अध्यक्ष,

जो सामान्यतः ग्रामीणों में सामान्य एक सौम्य महिला होती है, को भी जन संगठनों के लोकतांत्रिक प्रबंध में प्रशिक्षित किया जाता है। ऐसे सभी गांवों में महिलाओं का एक मुख्य समूह है और इन गांवों के इतिहास में पहली बार नए प्रकार के नेतृत्व का उदय हुआ है।

भारत में सहकारिता आंदोलन के 100 वर्ष पूरे हो चुके हैं। सारा देश इस आंदोलन के शताब्दी समारोह मनाने में लगा है। यह विश्व के सबसे बड़े आंदोलनों में से एक है तथा विभिन्न प्रकार की क्रांतियां लाने में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। यह संपूर्ण ग्रामीण भारत में क्रांति ला रहा है। इस आंदोलन का योगदान ग्रामीण ऋण वितरण, उर्वरक का उत्पादन एवं वितरण, चीनी का उत्पादन, दूध का वितरण तथा अन्य कृषि निवेशों आदि में देखा जा सकता है। महिलाओं के स्वामित्व, प्रबंध तथा नियंत्रण वाली सहकारिताओं के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय की महिला डेयरी परियोजना के अंतर्गत गठित महिला डेयरी सहकारी समितियां सहकारिता आंदोलन में महिलाओं के शामिल होने के सफल उदाहरण हैं। महिला डेयरी सहकारिता के मूल्यांकन से यह स्पष्ट होता है कि इसने महिलाओं की आय और रोजगार बढ़ाने में मदद की। अब उनके पास न सिर्फ पैसे हैं। बल्कि अपनी आय पर कुछ सीमा तक नियत्रण भी है, जिसका इस्तेमाल घरेलू खर्चा तथा व्यक्तिगत जरूरतों के लिए होता है। सामूहिक अंतक्रिया तथा बाहरी दुनिया की जानकारी ने उनकी जागरुकता बढ़ाने में मदद की जो स्वच्छता, सफाई तथा अग्रिम सोच के रूप में परिलक्षित होता है। वे अब पुत्रों और पुत्रियों दोनों के साथ समान रूप से व्यवहार करती हैं।

इस तरह केवल सहकारी संस्थाओं के माध्यम से ही आम आदमी निर्णायक तरीके से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन को प्रभावित कर सकता है। वास्तव में भारत में सहकारिता को भारतीय समाजवाद, खासकर ग्रामीण समाज के संदर्भ में समाजवाद के एक अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। सहकारिता के माध्यम से हम उच्चस्तरीय और खुशहाल जीवन स्तर प्रभावकारी ढंग से हासिल कर सकते हैं। सहकारिता को बेहतर व्यापार, बेहतर खेती और बेहतर जीवनशैली के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः देखा जाए तो डेयरी सहकारी समितियां अपने में बेजोड़ हैं। उन्होंने ग्रामीण भारत में किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। डेयरी सहकारी समितियों की ग्रामीण भारत में कृषि, रोजगार, आय, स्वास्थ्य और स्वच्छता की स्थितियों, पोषण और शिक्षा के विकास में बहुआयामी भूमिका है। इस क्षेत्र में व्यक्ति, समूह और सरकार ने उपयुक्त भूमिका अदा की है। इस नेटवर्क प्रणाली की ग्रामीण विकास में प्रशंसनीय भूमिका रही है, जो विभिन्न स्तरों के साथ जुड़ी हुई है। सहकारिता आंदोलन में व्यक्तियों की भूमिका भली–भांति परिभाषित है। समिति और सरकार दोनों ही ग्रामीण लोगों के विकास और विकास प्रक्रिया में उनकी भागीदारी के लिए अनिवार्य हैं। इसीलिए भारत जैसे देश में ग्रामीण विकास के लिए डेयरी सहकारिता काफी उपयुक्त है शिक्षित महिलाएँ समाज और राष्ट्र के सामाजिक और समग्र आर्थिक, विकास में महती भूमिका निभा सकती हैं।

सन्दर्भ

1. महिलाओं के सपनों को मिलेगी अब पहचान – डब्ल्यू०सी०डी० विभाग
2. सहकारिता क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका – विकीपिडिया

3. डेयरी सहकारी समितियों की उपलब्धियों पर एक दृष्टि – अमूल

4. डेयरी में उद्यमिता के मामले में महिला स्वयं सहायता समूह सबके आगे – icar.orgin

5. महिला में सहकारी डेयरी फार्मिंग – आई०ए०एस० बाटा

सादात विकास खण्ड (जनपद गाजीपुर) के जनसंख्या वितरण का एक अवलोकन

कृतिज्ञा सिंह*,
शोध छात्रा, भूगोल विभाग,
श्री गणेशराय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर।
डॉ० तारकेश्वर सिंह**
पूर्व प्रोफेसर, एवं विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग,
श्री गणेशराय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी, जौनपुर।

भूमिका :-

सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या का क्षेत्रीय वितरण उल्लेखनीय माना जाता है। किसी विशिष्ट समय में, किसी विशिष्ट स्थान पर जनसंख्या का वितरण वहाँ की प्राकृतिक दशाओं के अतिरिक्त वहाँ के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक एवं जनांकिकीय कारकों के सम्मिलित प्रभाव का प्रतिफल है जो सतत् परिवर्तनशील रहा है। इसलिए जनसंख्या वितरण को एक गत्यात्मक प्रक्रिया के अभिन्न अंग के रूप में देखा जा रहा है जो मानव समूहों से सम्बन्धित होता है किसी व्यक्ति विशेष से नहीं। डेमको (1970) के अनुसार किसी स्थान विशेष की भूमि एवं उस पर निवास करने वाले जनसंख्या के अभिज्ञान हेतु जनसंख्या वितरण एवं घनत्व का अध्ययन एक आवश्यक तत्व होता है।

शोध प्रपत्र का उद्देश्य एवं विधितंत्र

प्रस्तुत शोध प्रपत्र के द्वारा अध्ययन क्षेत्र सादात विकास खण्ड (जनपद गाजीपुर) के जनसंख्या वितरण का अध्ययन किया गया है। इस शोध प्रपत्र का प्रमुख उद्देश्य यह है कि अध्ययन क्षेत्र में जिस प्रकार से अनियमित जनसंख्या का वितरण पाया गया है, जिससे क्षेत्र का विकास नहीं हो पा रहा है। इस प्रकार से इस क्षेत्र में अनियमित जनसंख्या वितरण को दूर करके इस पिछड़ें क्षेत्र को भी आगे बढ़ाया जा सके। प्रस्तुत शोध प्रपत्र के अध्ययन में अवलोकनात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधितंत्रों का प्रयोग करते हुए पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा प्रस्तुत अध्ययनों के समीक्षोंपरान्त इसका विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र का सामान्य परिचय

उत्तर प्रदेश के पूर्वी अंचल में विस्तृत सादात विकास खण्ड मध्य गंगा मैदान में स्थित गंगा–घाघरा दोआब के पूर्वी भू–भाग में जनपद गाजीपुर से 46 किमी० पश्चिमी अंचल पर अवस्थित है। यह विकास खण्ड 25^0 34′ 45″ उत्तर से 25^0 46′ 30″ उत्तरी अक्षांश एवं 83^0 08′ 30″ पूर्व से 83^0 21′ 05″ पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है। इसकी उत्तर से दक्षिण अधिकतम लम्बाई 21.5 किमी० एवं पूरब से पश्चिम चौड़ाई 16.5 किमी० है। बेसो, गांगी, उदन्ती एवं उनकी सहायक नदियों के आस–पास ऊँचे–नीचे धरातल, टीले, कगार, खढ भूमि एवं बीहड़ों का निर्माण हुआ है। इस क्षेत्र की समुद्र तल से ऊँचाई 78 मीटर से 80 मीटर के मध्य है तथा सामान्य ढाल पश्चिम से पूरब की ओर है, जैसा कि अपवाह तन्त्र से परिलक्षित होता है। इस विकास खण्ड की पश्चिमी एवं उत्तरी–पश्चिमी सीमा का निर्धारण आजमगढ़ जनपद की लालगंज तहसील की सीमाओं से हुआ है जबकि उत्तरी–पूर्वी सीमा का सीमांकन गाजीपुर जनपद के जखनियाँ विकास खण्ड (जखनियाँ तहसील) की सीमा रेखा से हुआ है। इसकी पूर्वी सीमा का निर्धारण गाजीपुर जनपद की मनिहारी विकास खण्ड (सैदपुर तहसील) से निश्चित होता है तथा दक्षिणी–पश्चिमी भाग गाजीपुर जनपद की देवकली विकास खण्ड (सैदपुर तहसील) की सीमा रेखा से सीमांकित है जबकि दक्षिणी भाग में दक्षिणी सीमा गाजीपुर जनपद की सैदपुर विकास खण्ड द्वारा निर्धारित होता है (चित्र संख्या 1)। सादात विकास खण्ड की अर्थव्यवस्था कृषि द्वारा ही संचारित जिसका अपना एक गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। अध्ययन क्षेत्र जनपद गाजीपुर के समस्त भौगोलिक क्षेत्रफल 3377.0 वर्ग किमी० के सन्दर्भ में 235.38 वर्ग किमी० क्षेत्र को आवृत्त करता है जो समस्त जनपदीय भौगोलिक क्षेत्रफल का 6.97 प्रतिशत है।

जनसंख्या वितरण

जनसंख्या का वितरण जनसंख्या के भौगोलिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसका सामान्य अर्थ किसी भी भौगोलिक इकाई में मानव समूहों के प्रकीर्णन की प्रवृत्तियों से है। जनसंख्या का कम या अधिक दबाव ज्ञात करने के लिये जनसंख्या वितरण का अध्ययन आवश्यक होता है क्योंकि इसके द्वारा जनसंख्या समूहों के वे विशिष्ट प्रारूप स्पष्ट होते है जो औसत या सामान्य से भिन्न होते है। चूँकि राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध जनसंख्या औसत वास्तविक जनसंख्या का आभास नहीं करा पाता, अत: जनसंख्या वितरण के अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है (सिंह, 1996)। स्टील (1995) ने स्वीकार किया है कि जनसंख्या का भूवैन्यासिक वितरण द्वारा किसी क्षेत्र की सामान्य निवास्यता एवं ऐतिहासिक घटनाएं नियंत्रित होती है। गर्ग (1995) के अनुसार जनसंख्या वितरण एक सूक्ष्म जनांकिकीय विश्लेषण है। जिसका उद्देश्य क्षेत्रीय विषमताओं को ज्ञात करना एवं इसके वितरण प्रतिरूपों के लिये उत्तरदायी कारकों एवं परिणामों को जानना है।

सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से किसी भी प्रदेश में जनसंख्या का क्षेत्रीय वितरण उल्लेखनीय माना जाता है। इसी से क्षेत्र विशेष पर जनसंख्या के दबाव एवं कमी का अनुमान लगाया जाता है। प्रति इकाई क्षेत्रफल पर जनसंख्या का वितरण वास्तव मे उस क्षेत्रीय इकाई के लिये जनसंख्या–संसाधन अन्तर्सम्बन्ध को व्यक्त करता

है। किसी क्षेत्र या स्थान में जनसंख्या का वितरण विभिन्न आधारभूत कारकों पर आधारित होती है– नदी बेसिन एवं मैदानी क्षेत्र जहाँ अधिक वर्षा होती है या जलस्रोत उपलब्ध है वहाँ जनसंख्या प्रायः सघन पायी जाती है। इसके विपरीत शुष्क, अर्द्धशुष्क तथा पठारी भाग में जनसंख्या विरल मिलती है क्योंकि इन क्षेत्रों में जीवन–यापन अपेक्षाकृत अधिक कठिन होता है। सामाजिक–आर्थिक विकास के परिणाम स्वरूप प्रतिकूल पर्यावरण वाले क्षेत्रों में भी यदि जीवन–यापन की सुविधायें, कृषि, उद्योग, व्यापार आदि विकसित हों तो वे भी जनसंख्या के आकर्षक का केन्द्र बन जाते हैं। अत्यधिक अनुपयुक्त धरातल एवं विषम जलवायु वाले क्षेत्र आज भी जन शून्य हैं।

तालिका संख्या–1

सादात विकास खण्ड की जनसंख्या (1991 से 2011 ई० तक)

न्यायपंचायत	वर्ष		
	1991	2001	2011
पलिवार	12979	15664	16703
रायपुर	10905	13268	15898
कस्बास्वाद	12543	16091	19642
हुरमुजपुर	12308	15334	18768
दौलतनगर	7699	9707	10903
सादात	9956	11766	13975
शिशुवापार	11127	14312	16759
मिर्जापुर	17682	20969	26106
मंगारी	7231	8546	9615
मई	7028	9064	10623
भीमापार	14958	19183	21324
कनेरी	13892	17207	19224
पिपनार	10302	11976	14226
ग्रामीण नगरीय	148610 8279	183087 10336	213766 12361
सम्पूर्ण सादात विकासखण्ड	156889	193423	226127
गाजीपुर जनपद	2416617	3037582	3620268

स्रोतः– *जिला जनगणना हस्त पुस्तिका, 1991, 2001 एंव 2011 द्वारा संगणित।*

सादात विकास खण्ड में जनसंख्या का वितरण विशिष्टताओं से युक्त हैं। जनसंख्या का केन्द्रीयकरण बाजारों एवं ग्रामीण सेवा केन्द्रों के आस-पास अधिक है जहाँ यातायात एवं संचार की आधुनिक सुविधायें उपलब्ध हैं। भौगोलिक तत्वों यथा-मिट्टी, भूमि की बनावट, स्थिति, जलापूर्ति तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषमताओं के कारण अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या का वितरण असमान है। तालिका संख्या 1 में सादात विकास खण्ड की जनसंख्या का वितरण विगत तीन जनगणना वर्षो के अन्तर्गत मिलता है, जिसमें 1991, 2001 एवं 2011 में ग्रामीण जनसंख्या का वितरण क्रमश: 148610, 183087 एवं 213766 तथा नगरीय जनसंख्याा का वितरण क्रमश: 8279, 10336 एवं 12361 तथा सम्पूर्ण जनसंख्या (ग्रामीण एवं नगरीय) का वितरण क्रमश: 156889, 193423 एवं 226127 प्राप्त हुआ है जिसका प्रारूप क्रमश: वृद्धि की ओर अग्रसर है। सादात विकास खण्ड के कुल 13 न्यायपंचायतों में जनगणना वर्ष 1991, 2001 एवं 2011 में सर्वाधिक जनसंख्या वितरण क्रमश: 17682, 20969 एवं 26106 सभी मिर्जापुर न्यायपंचायत में संगणित है, जिसमें समय के साथ क्रमिक वृद्धि दृष्टिगोचर हो रहा है।

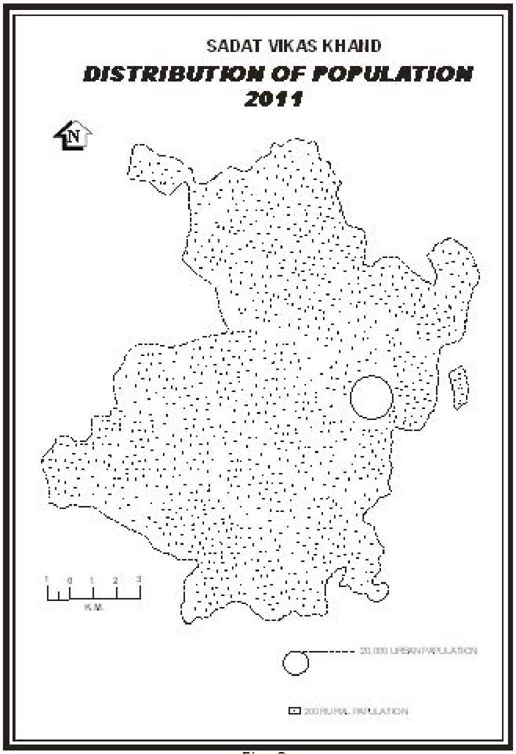

Fig. 2

चित्र संख्या 2 एवं तालिका संख्या 1 से सादात विकास खण्ड की जनसंख्या वितरण (वर्ष 2011) प्रदर्शित किया गया है। स्थलाकृतिक मानचित्र 63 O/6 एवं 63 O/2 के सिंहावलोकन और क्षेत्र में वर्तमान जनसंख्या के बसाव प्रारूप (2022) का व्यक्तिगत सर्वेक्षण तथा सूक्ष्म अवलोकन व निरीक्षण करने के बाद विकास खण्ड में तीन पृथक जनसंख्या जमाव क्षेत्र परिलक्षित होते है-

1. जनसंख्या का सघन जमाव क्षेत्र
2. जनसंख्या का सामान्य जमाव क्षेत्र
3. जनसंख्या का विरल जमाव क्षेत्र

1. जनसंख्या का सघन जमाव क्षेत्र :-

सादात विकास खण्ड मध्य गंगा मैदान का जलोढ़ उपजाऊ भू-भाग है जहाँ उर्वरा मिट्टी, समतल मैदान, सुलभ जलापूर्ति इत्यादि जनसंख्या आकर्षण के कारक रहे है जिसके कारण यहाँ जनसंख्या का जमाव सामान्यत: सघन है परन्तु आंशिक धरातलीय विषमताओं के कारण जनसंख्या का केन्द्रीयकरण कुछ निश्चित भागों में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण विकास खण्ड में सघन जनसंख्या का जमाव कुछ निश्चित क्षेत्रों में यत्र-तत्र पाया जाता है जिसका विवरण इस प्रकार है-

(क) प्रथम क्षेत्र सादात विकास खण्ड के उत्तरी-पश्चिमी भाग में (पलिवार, रायपुर कस्बास्वाद न्यायपंचायत) विस्तृत खादर भू-भाग पर स्थित है।

(ख) द्वितीय क्षेत्र सादात बाजार एवं उसके पूर्व स्थित दौलतनगर न्यायपंचायत के आस-पास अवस्थित है।

(ग) तृतीय क्षेत्र अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी भू-भाग पर स्थित भीमापार न्यायपंचायत पर केन्द्रित है।

इस प्रकार के क्षेत्र विकास खण्ड मुख्यालय एवं अधिकांश बाजारों के आस-पास स्थित है। इन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधाओं के अतिरिक्त आवागमन की सुविधाओं का भी विकास हुआ है। वर्तमान समय की जनसंख्या में ग्रामीण क्षेत्रों से सड़कों की तरफ पलायन की प्रवृत्ति बढ़ी है फलस्वरूप सड़कों पर स्थित बाजार केन्द्रों में जनसंख्या का केन्द्रीयकरण बढ़ता जा रहा है, जैसे सादात बाजार, बहरियाबाद, भीमापार, मिर्जापुर, रायपुर, परसनी, सवास, कनेरी, इत्यादि। नदियों के समीपी उच्च धरातल वाले क्षेत्रों में जनसंख्या का केन्द्रीकरण अधिक है। दोना, उदन्ती एवं गांगी नदियों के उत्तरी भागों में जनसंख्या का केन्द्रीकरण अधिक है।

2. जनसंख्या का सामान्य जमाव क्षेत्र :-

अध्ययन क्षेत्र के कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या का जमाव सामान्य कहा जा सकता है जो सामान्यतया मृदा उर्वरता स्तर एवं प्राकृतिक स्वरूपों से निर्धारित होती है। सादात विकास खण्ड के अन्तर्गत मुख्यतया दो सामान्य जमाव क्षेत्रों का उल्लेख किया जा सकता है- (क) प्रथम सामान्य जनसंख्या जमाव क्षेत्र अध्ययन क्षेत्र के सम्पूर्ण पूर्वी भूभाग (सादात बाजार क्षेत्रों एवं दौलतनगर न्यायपंचायत को छोड़कर) पर अवस्थित हैं जिसमें हुरमुजपुर, सादात, पिपनार न्यायपंचायत सम्मिलित है। (ख) द्वितीय क्षेत्र के अन्तर्गत विकास खण्ड के पश्चिमी भू-भाग में अवस्थित मंगारी न्यायपंचायत का सम्पूर्ण क्षेत्र आता है।

3. जनसंख्या का विरल जमाव क्षेत्र :-

जनसंख्या का विरल जमाव क्षेत्र मुख्यतया सादात विकास खण्ड में भूमि की उत्पादन क्षमता एवं अन्य भौगोलिक कारकों द्वारा प्रभावित होती है। बेसों, दोना, उदन्ती, गांगी इत्यादि नदियों के समीपवर्ती क्षेत्रों में बाढ, मिट्टी अपरदन इत्यादि के कारण भूमि की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है और ये क्षेत्र जनसंख्या बसाव के अनाकर्षक क्षेत्र बन जाते हैं। इसके साथ विकास खण्ड में सिचाई सुविधाओं की कमी, आवागमन की असुविधा, ऊसरीली अनुत्पादन भूमि आदि ऐसे तत्व है जहाँ अधिक जनसंख्या का भरण पोषण नहीं हो सकता। अतः विरल जनसंख्या जमाव मिलता है जो अध्ययन क्षेत्र के कनेरी, शिशुवापार, मिर्जापुर, एवं मई न्यायपंचायतों में मिलता है।

सन्दर्भ

1. सिंह, तारकेश्वर, 1996 : "जनसंख्या संसाधन एवं पर्यावरण : केराकत तहसील (जनपद जौनपुर) का एक अध्ययन", शोध-प्रबन्ध (अप्रकाशित), वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर।
2. सिंह, सुजीत कुमार, 2007 : "जनसंख्या संसाधन एवं पर्यावरण : सादात विकासखण्ड (जनपद गाजीपुर) का एक अध्ययन", शोध-प्रबन्ध, (अप्रकाशित) वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, पृ० 27-30।
3. गर्ग, एच०एस०, 1995 : जनसंख्या भूगोल, प्रगति प्रकाशन मेरठ पृ० 13।
4. Steel, R. W., 1955 : Land and People in British Tropical Africa, Geography, P. 40.
5. Demoko, George. J., 1970 : Population Geogrphy : Reader, McGraw Hill Blook Company New Yark P.-511.

राहुल सांकृत्यायन की कहानियों में सांस्कृतिक चेतना

पौल्टी कुमारी (शोधार्थी)
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, म०वि०वि०, बोधगया
स्नातकोत्तर हिन्दी (स्वर्ण पदक)
राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा उतीर्ण
एवं
डॉ० आनंद कुमार सिंह
हिन्दी विभागाध्यक्ष, गया महाविद्यालय, गया
म०वि०वि०, बोधगया

शोध सार

महापंडित 'राहुल सांकृत्यायन की कहानियों में सांस्कृतिक चेतना' का अध्ययन प्रस्तुत है। राहुल सांस्कृत्यायन एक महान पर्यटक, महान साहित्यकार और महान इतिहासकार मलीपी थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य की समृद्धि की दिशा में अपना योगदान देकर एक महान किर्तिमान स्थापित किया है। उनकी कहानी संग्रहों में धर्म दर्शन, राजनीति, इतिहास, संस्कृति आदि सभी कुछ समान रूप से विधमान है, उनके साहित्य संसार में विश्व-संस्कृति की झलक मिलती है। उन्होंने कई विचार धाराओं को परखा और छोड़ा। मानव मार्ग से प्रेम करना, उसकी समस्याओं को सुलझाना ही उनका सबसे बड़ा धर्म था। इसलिए 'राहुल जी' की रचना संसार उनकी विविधताओं को दर्शाता है, इनके कहानी संग्रह में प्रतिपादित सांस्कृतिक दर्शन की विशद् व्याख्या उपलब्ध है।

बीज शब्दः इनके कहानी संग्रह में प्रतिपादित सांस्कृतिक दर्शन की विराट् व्याख्या उपलब्ध है।

मूल आलेखः 'राहुल जी' की कहानियों के द्वारा हिन्दी कहानी का एक अलग रचना-शिल्प और स्वरूप उभरता है। 'राहुल जी' के कथा साहित्य में कहानी का यह नया और अलग स्वरूप अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को बदल देने के क्रांतिकारी सपनों और प्रगतिशील जनपक्षधर आंकाक्षाओं से तय होता है। हिन्दी कथा-साहित्य में अपनी इस विशेष युगीन भूमिका में 'राहुल जी' का कथा-रचना संसार 'प्रेमचन्द्र' के रचना संसार के पूरक है। 'प्रेमचन्द' का कहानीकार जहाँ निरंतर अपने वर्तमान युग की समस्याओं से जूझता हुआ समकालीन यथार्थबोध और विचार चिन्ताओं वाला है, तो 'राहुल' का कहानीकार एक कालिक यथार्थदृष्टि का अतिक्रमण करके बीते हुए दिनों और इतिहास के गर्भ में भी अपने युग की समस्याओं और उसके समाजैतिहासिक कारणों की तलाश करता है।

समाज ऐतिहासिक कला संस्कृति किसी न किसी रूप में मानवता और राजनीति की सेवा करते है। 'राहुल जी' की कहानी संग्रह की मानवीय संदवेदना और उसकी राजनीतिक दिशा समाज में उर्जा भरती है और कभी संघर्ष आन्दोलन और राजनीति लेखक में। 'राहुल जी' की लेखनी ने हमारे साहित्यों को राजनीतिक कार्यकत्ताओं और तरूणों में ऐसी उर्जा और वैज्ञानिक दृष्टि का संचार किया कि एक पूरी पीढ़ी उनकी दीवानी हो गई। राहुल जी का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही युवा पीढ़ी के लिए अद्विितीय प्रेरणादायी थे। अपने कर्मठ बहुरंगी जीवन और बौद्धिक, भौगोलिक, पुरातात्विक, धर्मशास्त्रीय दुस्साहसिक यात्राओं में नयी-नयी खोज करने वाले वह एक औपन्यासिक महानायक की तरह बार-बार हमारे सामने आ खड़े होंगे। तीस और चालीस के दशकों में उत्तर भारतीय युवा वर्ग ने जिन लेखकों के माध्यम से मार्क्सवाद का बकायदा परिचय प्राप्त किया उनमें 'यशपाल' से भी पहले 'राहुल जी' का नाम है।[1]

राहुल सांस्कृत्यायन ने अपनी कहानियों में सांस्कृतिक चेतना के साथ-साथ लोकसंस्कृति और इतिहास को ही शामिल किया है। राहुल जी के साहित्य सृजन के अतीत के गर्भ में छिपे तमाम संदर्भों को अपनी साहित्य सृजनशीलता में सांस्कृतिक चेतना को आधार बनाया है।

'अपने अनुभवों के आधार पर राहुल जी ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। सैर-सपाटे को अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर, उससे ज्ञान का भंडार भरने वाले, अपने देश की सांस्कृतिक विरासत वापस लाने। अपने देश, माटी और भाषा से प्रेम करने वाले बिना डिग्री लिए निःस्वार्थ रहकर, तन-मन, धन की परवाह किए वगैर, कठिन से कठिन परिस्थितियों को सहकर देश-विदेश की दुर्गम यात्राएँ कर अपने अनुभवों के आधार पर वहाँ की भाषा, संस्कृति, भौगोलिक परिस्थितियों, राजनैतिक वातावरण का वर्णन अपने साहित्य में किया। उनकी कहानी संग्रह हिन्दी साहित्य जगत् में अपना विशेष स्थान रखते हैं।'

'राहुल सांकृत्यायन जी का कहानी संग्रह ऐतिहासिक काल से आधुनिक काल तक के भारतीय समाज का यथार्थवादी युग का चित्रण प्रस्तुत करती है। राहुल जी की कहानियों में भारतीय ग्राम समाज की प्रत्यक्ष और मार्मिक रूपों को देखने का अवसर मिलता है। इन्होंने अपने चारों कहानी संग्रहों में समाज की विभिन्न स्थितियों का चरित्रांकन किया है। राहुल जी की कहानियाँ जिजीविषा और संघर्ष की गाथा का चित्रण करने के उद्देश्य से रचित है। उन्होंने गरीबी स्तर से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों के माध्यम से कुछ ऐसे पात्रों को चुनकर कहानियों की रचना की है जो प्रायः अछूते ही रह गए। ऐसा चित्रण बहुत कम कहानियों में देखने को मिलता है। यह साहित्य के लिए राहुल जी की अमूल्य देन है।[2]

'बहुरंगी मधुपुरी' और 'सतमी के बच्चे' संग्रहों में समाज के विभिन्न वर्गो की यथार्थ बोध का सामाजिक चित्रण करती है। यहाँ वर्ग हास-विलास के कहकहों में इठलाते हुए रायबहादुर कुमार दुरंजय, मीनाक्षी और प्रमोद भवन की मेमसाहब का हो या अपनी हंसी खुशी गिरवी रखकर आँसुओं का उपहार पाने वाले गोलू, रूपी, डोरा, राउत, सुलतान, चम्पो, राजबली, रामगोपाल और सतमी का, राहुल जी की सजग दृष्टि ने उनकी वर्गीय मनोवृति का अच्छी तरह उद्घृत किया है। 'महाप्रभु और पेड़बाबा' जैसे विचित्र व्यक्ति भी राहुल जी की लेखनी से अछुते नहीं रह सके। 'बहुरंगी मधुपुरी' की कहानियाँ' इस सामर्थ्य को विशेष रूप से प्रभावित करती

है। 'कनैला की कथा' कहानी में जन–जीवन के अनेक चित्र हैं, काशी ग्राम, बड़ी रानी और सैयद बाबा आदि से संबंधित प्रभूत तथ्य है, उनका कलात्मक व्यंजन इतना संशक्त है कि इतिहास की कल्पना में पाठक जी का ध्यान तक नहीं जाता। कनैला के इतिहास का कथा–संपातरम बहुत मार्मिक है, लेकिन उससे भी अधिक मार्मिक है, इस कथा के माध्यम से हवनित किए जाने वाला दिशा–संकेत। यह आशा नहीं है कि आर्थिक विषमता पर आधारित छोटी–बड़ी जाति का जो वर्ग–भेद कनैला और दूसरे गाँवों में युगों से चला आ रहा है अब वह कायम रह सकेगा।'[3]

'वोल्गा से गंगा' की कहानियों में राहुल जी ने अनेक उद्देश्यों को परिलक्षित किया है। एतिहासिक पृष्ठाधार पर कहीं उन्होंने सांस्कृतिक चेतना को आधार बनाया है। जैसे–'रूद्राक्ष' कहानी में कहीं ब्राह्मण और पुर्नजन्मवाद का उपहास किया है जैसे 'प्रवाहम' कहानी में और कहाँ वैभव की कुटिलता की ओर अंगुली निर्देश किया है जैसे –'मिट्टी से सोना पैदा करने वाले भूखे-नंगे मरते हैं और सोने को मिट्टी करने वाले मौज उड़ाते है।'[4] 'चक्रपाणि' शीर्षक कहानी में राजाओं की वासनाप्रियता और विलासिता का बड़ा रोमांचक चित्र अंकित किया गया है। ग्राम व्यवस्था के लिए राहुल जी ने पंचायत प्रणाली का समर्थन किया है। 'रेखा भगत' शीर्षक कहानी में जमीन्दारी प्रथा की तीव्र भर्त्सना की है।

'साम्यवाद कहता है नफा का ख्याल छोड़ों। अपने राष्ट्र या सारे संसार को एक पविार मानकर उसके लिए जितनी आवश्यकताएँ हो उसे पैदा करो, हर एक से उसकी क्षमता के अनुसार काम लो। हर एक को उसकी आवश्यकता के मुताबिक जीवनोपयोगी सामग्री दो।'[5]

'राहुल जी' मंतव्य के अनुसार सारी समस्याओं का केवल एक ही अमोध निदान है– साम्यवादी जीवन प्रणाली का अनुगमन। अत: आवश्यक है कि जर्जर पुरातनता को निर्भीकतापूर्वक ध्यस्त कर दिया जाए, क्योंकि 'बिना ध्वंस के रचना नहीं हो सकती।'[6]

'राहुल जी' समाज दुर्दशा पर आँसू बहाने और सहानुभूति प्रदर्शित करने में ही मनुष्य का कर्त्तव्य नहीं समझते। राहुल जी मनुष्य के पौरूष की क्रियात्मक अभिव्यक्ति पर बल देते हैं। उनके अनुसार दुख और दैन्य के मूलोच्छेद पर ही समाज को सुख शांति निर्भर है। 'लोग दीन और अनाथ हो जिसमें हमें उनकी से वा का अवसर मिले, यह कौन सा अच्छा विचार है? क्या उससे अच्छा यह नहीं कि कोई दीन और अनाथ दुनिया में रहे ही नहीं और हमें वैसा अवसर न मिले।'[7]

'राहुल जी' की कहानियों में सांस्कृतिक चेतना का कलात्मक व्यंजन हुआ है और इन चेतना के प्रचार–प्रसार के द्वारा 'राहुल जी' ने आदर्श समाज के निर्माण को प्रोत्साहित किया है। 'राहुल जी' के कहानी–कला की सर्वोपरि विशेषता यही है कि उद्देश्यप्रधान और सर्मस्पर्शी है।

'राहुल सांकृत्यायन' उपभ्रंश के महान कवियों के साहित्य और उनकी सामाजिक भूमिका को उद्घाटित करने वाले हिन्दी प्रथम साहित्यकार हैं। भारतीय भाषा के इस सांस्कृतिक आदर्श को राहुल ने अपने कथा–साहित्य में पूर्णत: निभाया है।

कथा साहित्य में 'राहुल जी' ने सांस्कृतिक चेतना और प्रतिबद्ध दृष्टिकोण पर धर्म-दर्शन को बड़े नाव की तरह माना है। तो राहुल जी का लक्ष्य है मानवीय जीवन-चेतना का समग्र उत्थान करना है।

'राहुल जी' की तीसरी कहानी संग्रह 'बहुरंगी मधुपुरी' हिन्दी कथा साहित्य का एक अन्यतम प्रयोग है। यह अंग्रेजी कहानीकार आर०के० नारायण के 'मालगुड़ी डेज' जैसा प्रयोगात्मक कहानी संग्रह है। डॉ० प्रभा-मण डल से संवलित किया। 'राहुल जी' की मान्यता है कि जातिवाद को भारतीय समाज से हटा देना चाहिए। यह एक ऐसा कलंक है जिसे समाज से शीघ्र ही मिटाया नहीं गया तो समाज का विघटन हो जाएगा। राहुल जी जातिवाद को सामाजिक प्रगति के खिलाफ समझते हैं। वे धर्म व्यवस्था के कट आलोचक हैं। हिन्दू धर्म की जाति व्यवस्था की वजय से हिन्दू समाज वर्ग के आधार पर एकताबद्ध नहीं होता। इससे देश में सामाजिक क्रांति भी संभव नहीं हो पाती। राहुल जी ने अपनी रचनाओं में जातिवाद, छूआछूत, बाल-विवाह, अनमेल विवाह आदि का विरोध करते हुए एक समाज-सुधारक के रूप में अपना व्यक्तित्व निखारा है।

इन कहानियों की विशेषता है कि ये जीवन के एक पक्ष पर आधारित न होकर विभिन्न पक्षों जैसे जातीयता, शोषण, धर्म, आडम्बर, स्त्रियों की दयनीय एवं वास्तविक स्थिति फैशन के दौर में भारती नारियों की भावनाओं, अंग्रेजों के कर व्यवहार, भार वाहकों, श्रमिकों और निम्न श्रेणी के लोगों के अथक परिश्रम, आर्थिक विवशता, शासकों के वैभव और विलास का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव तथा स्वतंत्रता के पश्चात् भी स्वतंत्रता विहिन लोगों के मनोभावों आदि पर आधारित है। राहुल जी मुख्यत: एक इतिहासकार थे अत: उन्होंने सदैव जीवन के यथार्थ को ही महत्व दिया है।

राहुल जी द्वारा रचित 'वोल्गा से गंगा' कहानी संग्रह में ब्रिटिश शासन काल में भारतीयों की मनोदशा, राजनीतिक स्थिति, सामाजिक जीवन आदि का चित्रण किया है। 'वोल्गा से गंगा' की कहानियाँ मानव विकास की घटनाओं का अनूठा संग्रह है। जिसमें समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थितियों का चित्रण राहुल जी ने किया है।

राहुल जी की कहानियों में मौलिक और अभुतपूर्व अनेक पुरातात्विक अपनाएँ और जानकारियाँ प्राप्त होती है। चाहे 'कनैला की कथा' के किरात-निषाद हो या 'सतमी के बच्चे' की भर जाति। 'सुपर्म यौधेय' का जाट हो या 'बहुरंगी मधुपुरी' के विसुन की कहानी की 'खुम्बा' जाति या गुरू जी कहानी की मैथिल ब्राह्मण अथवा 'राउत' कहानी का अहीर ही क्यों न हो, राहुल सांकृत्यायन ने अपने ज्ञान से पाठकों को आश्यर्चचकित कर दिया है। अपनी जिस कहानी में से वे पहाड़ी जीवन का वर्णन करते हैं उसमें ही कथा-तत्व के साथ-साथ समाज और संस्कृति विश्लेषण की गंभीर प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। राहुल जी की दृष्टि ध्वंशात्मक और सृजनात्मक दोनों ही एक ओर तो वे समाज की विकृत समस्याओं को उठाते हैं। उनका खण्डन करते है और दूसरी ओर भारतीय संस्कृति सभ्यता और भाषा के उत्थान का भी संदेश देते हैं। राहुल जी के साहित्य सृजन को अतीत के गर्भ में छिपे तमाम संदर्भों को अपनी सृजनशीलता का आधार बनाया है।

निष्कर्षः

मेरी दृष्टि में संस्कृति और दर्शन का स्थान निरूपण करना एक दुर्घष प्रयास है। ऐसा इसलिए कि संस्कृति और दर्शन दोनों में सूक्ष्म अंतर दिखाई देती है। सुक्ष्म इसलिए की एक ऐसा नियामक बिन्दु है, जहाँ आकर दोनों का उद्देश्य समदर्शी हो जाता है सांस्कृति की निरंतरता का उद्देश्य कभी मानव समृद्धि है। यह समृद्धि धन का हो, ज्ञान का हो, विचार का हो चाहे विज्ञान का हो, व्यक्ति, जो करता है, जो व्यवहार में दिखता है, वही संस्कृति का मूल्यांकन कर देती है। दर्शन अपनी विचारधारा के माध्यम से एक वैसे उद्देश्य तक व्यक्ति को ले जाना चाहता है जहाँ से बेहतर दिख सके। पाश्चात्य दर्शन हो, या भारतीय दर्शन हो सबो का लक्ष्य है मानव का विकास। 'राहुल सांकृत्यायन' हमें एक ऐसे साहित्यकार के रूप में प्रतीत हुए जो संस्कृति को अपने साहित्य के माध्यम से संभालता है और दर्शन को देश और काल के आलोक में देखता है।

संदर्भ

1. रामशरण शर्मा – 'मुंशी'
2. 'हंस' मार्च 1889 श्री राजेन्द्र यादव, पृ० सं०–5
3. राहुल सांकृत्यायन का साहित्य सृजन, पृ० सं०–127–128
4. राहुल सांकृत्यायन पुरातत्व निबंधावली, 1936 ईलाहाबाद, पृ०सं०–274
5. राहुल सांकृत्यायन का साहित्य सृजन, पृ०सं०–166
6. राहुल सांकृत्यायन का सृर्जनात्मक साहित्य, पृ०सं०–98
7. कहानी का रचना विधान, डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रथम संस्करण, पृ०सं०–53–54
8. वोल्गा से गंगा: चतुर्थ संस्करण राहुल सांकृत्यायन पृ०सं०–340–41
9. वही पृ०–341
10. बहुरंगी मधुपुरी राहुल सांकृत्यायन पृ०सं०–77
11. वोल्गा से गंगा राहुल सांकृत्यायन पृ०सं०–172
12. वही पृ०सं०–240
13. वोल्गा से गंगा, सुमेर शीर्ष कहानी, पृ०सं०–329–371
14. विस्तृत यात्री, राहुल सांकृत्यायन पृ०सं०–369

Vol. XX Issue No. II, May–August 2023, ISSN: 0970-1745 **Impact Factor 5.875**

मध्यान्ह भोजन योजना : एक विश्लेषणात्मक समीक्षा

डॉ० हेमलता सागुड़ी
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
डी०बी०एस० कॉलेज, गोविन्दनगर, कानपुर
प्रतिमा सिंह
शोध-छात्र

सारांश-

मनुष्य के सर्वागीण विकास के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास करके उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन करती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है। व्यापक दृष्टि से शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य जीवन में अनवरत रूप से कहीं न कहीं बालक को विद्यालय से ही शिक्षा प्राप्त होती है। वर्तमान समय में प्राथमिक विद्यालय में संचालित मध्यान्ह भोजन योजना (मिड डे मील) एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्यक्रम है, जो बालक की स्कूली शिक्षा से जोड़ने तथा पौष्टिक आहार प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। मध्यान्ह भोजन योजना बच्चों के पूरक पोषण के स्रोत और उनके स्वस्थ्य विकास के रूप में कार्य करता है।

महत्वपूर्ण शब्द –मध्यान्ह भोजन योजना, गुणवत्ता, नियमितता, सामाजिक पृष्ठभूमि, दृष्टिकोण, समस्याएँ।

प्रस्तावना

प्रारम्भिक शिक्षा प्रत्येक नागरिक के विकास की नीव है एवं छात्रों के भविष्य निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। बच्चों की अपनी शिक्षा जारी रखने और प्राथमिक विद्यालय में भाग लेने के लिए प्रोत्साहन के रूप में स्कूल के दिन के दौरान बच्चों को भोजन प्रदान करने के लिए 1995 में भारत सरकार द्वारा एक स्कूल फींडिग कार्यक्रम शुरू किया गया। प्रारम्भ में यह योजना देश के 2408 विकास खण्ड में प्राथमिक स्कूल में अध्ययनरत छात्रों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने के लिए लागू की गयी, परन्तु 1997-98 के अन्त तक देश के समस्त विकास खण्ड में लागू किया गया। वर्ष 2001 में इस योजना को पका हुआ भोजन में परिवर्तित कर दिया गया। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक बच्चा जो सरकारी प्राथमिक विद्यालय में पढ़ता है, उसको कैलोरी की 450 और 8-12 ग्राम प्रोटीन प्रति बच्चा प्रति स्कूल दिवस के रूप में दिया जाता है। उच्च प्राथमिक कक्षा के लिए केलोरी की मात्रा 700 और 12-20 ग्राम प्रोटीन प्रति बच्चा

प्रति स्कूल दिवस की दर से भारतीय खाद्य निगम के निकटतम गोदाम से निःशुल्क खाद्यान्न (गेहूँ/चावल) की आपूर्ति की जाती है।

मध्यान्ह भोजन योजना (मिड डे मील) का उद्देश्य

इस योजना का प्रमुख उद्देश्य अधिकांश बच्चों की दो मुख्य समस्याओं- शिक्षा और भूख का निम्नलिखित प्रकार से समाधान करना है।

1. विद्यालय में बिना किसी भेदभाव के एक साथ भोजन करने से भातृत्व का भाव उत्पन्न करना तथा जातिगत भेद को खत्म करना।
2. अध्ययनरत छात्रों की नियमित उपस्थिति में वृद्धि करना तथा पौष्टिक भोजन के द्वारा स्वास्थ्य लाभ देना।
3. विद्यालय में "स्कूल ड्राप आऊट" की प्रवृत्ति को रोकना तथा छात्रों की प्रवेश संख्या में वृद्धि करना।

मिड-डे मिल योजना साप्ताहिक आहार तालिका, (उत्तर प्रदेश)

दिन	नवीन मीनू	व्यंजन का प्रकार	100 बच्चों हेतु वांछित सामग्री	100 बच्चों हेतु वांछित सामग्री (उ०प्रा०वि०स्तर)
सोमवार	रोटी-सब्जी जिसमें सोयाबीन अथवा दाल की बड़ी/दलिया	100 ग्रा० गेहूँ की रोटी एवं दाल की बड़ी (दाल की बड़ी में मौसमी सब्जियों का स्वाद के अनुसार मिश्रण) अथवा मौसम सब्जी एवं सोयाबीन	आटा 10 किलो सोयाबीन अथवा दाल की बड़ी तथा सब्जी 6 किलो, तेल/घी 50 ग्राम	आटा 15 किलो सोयाबीन अथवा दाल की बड़ी तेल/घी 750 ग्राम।
मंगलवार	चावल-सब्जी युक्त दाल	100 ग्राम चावल एवं सब्जी (मौसमी) मिश्रित दाल, अरहर की दाल	दाल 2 किलो चावल 10 किलो सब्जी 5 किलो।	दाल 3 किलो, चावल 15 किलो, सब्जी 7.5 किलो।
	अथवा चावल सांभर	सांभर मसाला एवं मौसमी सब्जी।	दाल 2 किलो चावल 10 किलो, सब्जी 5 किलो तेल/घी 500 ग्राम	दाल 3 किलो चावल 15 किलो, सब्जी 7.5 किलो, तेल/घी- 7.50 ग्राम।
बुधवार	कढी चावल	100 ग्राम चावल, बेसन मट्ठा/ दही मिश्रित कढ़ी	चावल 10 किलो, 10 लीटर दूध से बना दही, बेसन 2.5 किलो।	चावल 15 किलो, 15 लीटर दूध से बना दही, बेसन 3.75 ग्राम
	अथवा खीर	100 ग्राम चावल, मानकानुसार दूध चीनी मेवे का मिश्रण।	चावल 10 किलो, दूध 10 ली०, चीनी 3 किलो।	चावल 15 किलो, 15 लीटर दूध, चीनी 4.5 किलो।
गुरूवार	रोटी-सब्जी युक्त दाल/दलिया	100 ग्रा० गेहूँ की रोटी एवं दाल (दाल में मौसमी सब्जियों का स्वाद के अनुसार मिश्रण अथवा मौसमी सब्जी एवं सोयाबीन।	आटा-10 किलो, सब्जी मिश्रित दाल-6 किलो, तेल/घी-500 ग्राम।	आटा-10 किलो, सब्जी मिश्रित दाल- 9 किलो, तेल/घी-750 ग्राम।

शुक्रवार	तहरी	100 ग्राम चावल एवं सब्जी (आलू, सोयाबीन समय-समय पर उपलब्ध सब्जियाँ)	चावल-10 किलो, सब्जी सोयाबीन की बड़ी युक्त 6 किलो तेल/घी-500 ग्राम।	चावल 15 किलो, सब्जी सोयाबीन की बड़ी युक्त 9 किलों तेल/घी- 750 ग्राम।
शनिवार	सब्जी-चावल सोयाबीन	100 ग्राम चावल, सोयाबीन तथा मसाले एवं ताजी सब्जियाँ। 100 ग्राम चावल मानकानुसार दूध चीनी मेवे का मिश्रण	चावल-10 किलो, सब्जी-सोयाबीन-6 किलो। चावल-10 किलो, दूध-10 लीटर, चीनी-3 किलो।	चावल-15 किलो, सब्जी-सोयाबीन-9 किलो। चावल-15 किलो दूध- 15 लीटर, चीनी-4.5 किलो।

मिड-डे मील की आवश्यकता

भारत कृषि प्रधान एवं विशाल देश है, यहाँ विभिन्नताओं की बहुतायत है, यहाँ गरीब-अमीर और मध्यम वर्ग के लोग रहते हैं। जहाँ अमीर वर्ग अपने बच्चों के बेहतर जीवन एवं उज्जवल भविष्य के लिए अच्छे विद्यालयों में प्रवेश करा लेते है, मध्यम वर्ग इसी प्रयास के लिए जूझता रहता है, वही गरीब या निम्न वर्ग के लिए सरकारी विद्यालय ही प्रथम और अन्तिम विकल्प होते हैं, क्योंकि इनकी आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं होती कि ये मंहगे स्कूल में प्रवेश करा सके।

विभिन्न माध्यमों से प्राप्त सूचनाओं एवं आकड़ों के आधार पर केन्द्र सरकार ने इन्हीं निर्धन वर्ग के बालकों को शिक्षा एवं पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने के लिए मध्यान्ह भोजन योजना (मिड डे मील लागू करने का निर्णय लिया। मध्यान्ह भोजन योजना लागू किए जाने की आवश्यकता को निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है।

1. विद्यालय में बच्चों की भागीदारी बढ़ाना।
2. निम्न वर्ग के परिवार में भोजन में सहयोग।
3. कुपोषण से बचाव।

मध्यान्ह भोजन योजना (मिड डे मील) कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाली समस्याएँ एवं निराकरण

किसी भी योजना व कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार मध्यान्ह भोजन योजना में भी प्राप्त आकड़ों के अनुसार कई प्रकार की समस्याएँ व चुनौतियाँ है।

1. इस योजना में पाई गई सबसे बड़ी समस्या यह है कि शिक्षक का अधिकांश समय भोजन व्यवस्था में ही बीत जाता है तथा विद्यालय की बुनियादी व्यवस्था ठीक नहीं रहती है।

2. भोजन तैयार करने वाले रसोइये का भुगतान बहुत कम तथा विलम्ब से होता है, जिससे उनमें संतुष्टि की भावना नहीं रहती तथा उत्पादकता प्रभावित हो सकती है।
3. अधिक मात्रा में भोजन तैयार करने के कारण भोजन में कीड़े होने व गुणवत्ता में कमी हो सकती है।
4. भोजन की गुणवत्ता में कमी होने के कारण भोजन की बर्बादी होती है।
5. मध्यान्ह भोजन योजना के प्रावधानों के कारण फर्जी नामांकन बढ़ रहें हैं, जिससे वित्तीय समस्या उत्पन्न हो गई है।

निराकरण

यह योजना भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण योजना है, जो समस्त राजकीय विद्यालयों में संचालित है। मध्यान्ह भोजन योजना (मिड–डे–मील) में योजना की गुणवत्ता, स्वच्छता, मौसम जनित बीमारियों के प्रभावी रोकथाम, स्वच्छ जल के प्रति सजगता एवं संवेदनशीलता के साथ निम्न सुझावों को अमल में लाया जा सकता है।

1. विद्यार्थियों को परोसे जाने वाले भोजन की गुणवत्ता और स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाए।
2. जिला स्तर, ब्लॉक स्तर और पंचायत स्तर पर गठित समितियों की प्रतिमाह बैठक होना चाहिए एवं समस्याओं का निराकरण तीव्र गति से होना चाहिए।
3. प्रत्येक तीन दिवस पर भोजन से सम्बन्धित खाद्य सामग्री, फल, सब्जियाँ तथा पानी की टंकियों की विशेष जाँच होना चाहिए।
4. खाद्यान्न भण्डार गृह में पर्याप्त वेन्टीलेशन होना चाहिए तथा किसी भी स्थिति में पेस्टीसाईड या चूहे मारने की दवा या कोई भी रासायनिक पदार्थ नहीं होना चाहिए।
5. मध्यान्ह भोजन योजना के कारण या अन्य प्रकार की अंवाछनीय स्थिति से बचने के लिए विद्यालय में एम्बुलेन्स, चिकित्सालय, अग्निशमन, पुलिस अधीक्षक आदि की जानकारी अंकित होने चाहिए।

मध्यान्ह भोजन योजना (मिड–डे–मील) में नवीनीकरण

मध्यान्ह भोजन योजना (मिड–डे–मील) ने देशभर में राज्य/केन्द्रशासित प्रदेशों में 25.70 लाख रसोइयाँ सहायकों को काम दिया है तथा स्कूल में भोजन उपलब्ध कराने की सबसे बड़ी योजना है, जिसमें रोजाना सरकारी सहायता प्राप्त 11.58 लाख से भी अधिक सकूलों के 10.8 करोड़ बच्चे शामिल हैं।

बारहवीं योजना के दौरान मध्यान्ह भोजन योजना में निम्नलिखित सुधार किए गए है।

1. मौजूदा घटकों या स्कूलों के लिए सहायता के तौर तरीको का संशोधन।

2. राज्यों के लिए माल-वहन सहायता का संशोधन। पहले इसकी राशि 75 रूपए/क्विंटल थी, मौजूदा सीमा को बढ़ाकर 150 रू०/क्विंटल कर दी गई है।

3. रसोइया सहायक का वेतन 2015-16 तथा 2016-17 के दौरान 1500 रू०/माह से बढ़ाकर 2000 रू० प्रति माह कर दिया गया है।

4. प्रत्येक पाँच वर्ष पर किचन के बर्तनों को बदलने तथा नये स्कूलों के लिए किचन के बर्तन को खरीदने के लिए 15000/- रू० एक मुश्त राशि प्रदान किया जाता है।

भारत में मध्यान्ह भोजन योजना की प्रभावकारिता

वर्ष 1995 में शिक्षा मंत्रालय के तहत शुरू की गई "मध्यान्ह भोजन योजना" एक केन्द्र प्रायोजित योजना है। भारत दुनिया का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है और भारत की आबादी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा गरीब के रूप में वर्गीकृत किया गया है। सन् 2019 में किए गए मानव विकास सर्वेक्षण में पाया गया कि दुनिया के लगभग 24 प्रतिशत गरीब भारत में रहते हैं। भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए स्कूल भोजन कार्यक्रम की सफलता अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जो गरीब छात्रों के शैक्षिक विकास के साथ-साथ उनके पोषण सम्बन्धी स्वास्थ्य सुधार में वृद्धि करती है।

निष्कर्ष

मध्यान्ह भोजन योजना देश के कई राज्यों में काफी हद तक सफल साबित हुई है, परन्तु आए दिन किसी न किसी राज्य से इस योजना के अन्तर्गत पकाए जाने वाले भोजन परोसने और खा लेने पर काफी बुरी खबरे सुनने को मिलती है। केन्द्र और राज्य सरकार को इस योजना को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए आपस में बैठ कर बात करनी चाहिए। जिससे इसमें व्याप्त असफलता को दूर करके "सर्व शिक्षा अभियान" की तरह इसे सफल बनाया जा सके।

संदर्भ

1. कौल लोकेश (2009) "शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली" तृतीय पुनर्मुद्रण, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा० लि०।
2. कपिल, एच० के (1985) "अनुसंधान विधियाँ," आगरा, भार्गव प्रकाशन।
3. मध्यान्ह भोजन योजना (2004) मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
4. पुश्पद नेहा (2008-09) "मध्यान्ह भोजन का विद्यार्थियों के स्वास्थ्य एवं शैक्षणिक उपलब्धि स्तर पर पड़ने वाला प्रभाव। "लघु शोध प्रबंध जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (मध्य प्रदेश)।
5. शर्मा, आर०ए० (1992) "शिक्षा तकनीकी" मेरठ लायन बुक डिपो।

6. मध्यान्ह भोजन योजना (1995) मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
7. कपिल, एच० के० (1998) "सांख्यिकी के मूल" आगरा विनोद पुस्तक मंदिर।
8. शर्मा, अन्जना (2014) "मध्यान्ह भोजन योजना का विद्यार्थी के शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव, एक अध्ययन।" शोध प्रबंध जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म०प्र०)।

प्रभा खेतान के उपन्यासों में अभिव्यंजित नारी जीवन

पुष्प लता पाण्डेय
कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता, हिन्दी विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय)
जमनीपुर-कोटवाँ-दुबावल, प्रयागराज

पुरुष और स्त्री समाज के दो अंग हैं। दोनों को सामंजस्य से परिवार एवं समाज परिचालित होता है। नारी की महत्ता के सम्बंध में नासिरा शर्मा ने लिखा है कि– "औरत अधिक ईमानदार, निष्ठावान, कर्मठ, धैर्यवान और बलिदान करने वाली एक ऐसी जीव है जिसका मुकाबला दुनिया का दूसरा प्राणी नहीं कर सकता है।"[1] परन्तु यथार्थ यह है कि पुरुष वर्चस्व के कारण समाज में नारी का स्थान गौण हो रहा। प्रभा खेतान के उपन्यासों में नारी जीवन की विवशता, उसके जीवन की विसंगतियाँ, उसका अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष उसकी स्वच्छंद वृत्ति इत्यादि आयाम परिलक्षित होते हैं।

'आओ पेपे घर चलें', की मरील का दृष्टिकोण है कि स्त्री को लौह-कवच पहनना होता है। वह प्रभा को समझाती है- "यह पहनने के बाद भी रोओगी और सुनों, जब बहुत दिल दुखे ना, तब अपने इस दोस्त की एक सलाह हमेशा याद रखना। कोई भी दर्द इतना बड़ा नहीं होता कि और अपने आंसुओं का खजाना खाली कर दे। भविष्य में रो सको, इसलिए आँसुओं को दबाए रखना।"[2] मरील के शब्दों में नारी की व्यथा-कथा ही है। वह संसार के इस यथार्थ को व्यक्त करती है कि- "दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओ जहाँ औरत के आँसू नहीं गिरे।' विवेच्य उपन्यास में वैश्विक स्तर पर नारी की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। "भोग-विलास में डूबी अमरीकी औरत भीतर से कितनी अकेली असहाय और पीड़ित है इसका चित्रण उपन्यास में गहरी संवेदनशीलता से किया गया है। इससे गुजरते हुए लगता है कि विश्व संदर्भ में नारी की स्थिति भारत की नारी से भिन्न नहीं है। इस प्रकार वैश्विक धरातल पर पारिवारिक विघटन, उच्चवर्गीय जीवन के अंतर्विरोध, बाहर और भीतर के जीवन का तनाव, नकली जिंदगी, पति-पत्नी की टकराहट, रोते-बिलखते बच्चे, डॉलर कमाने की भूख से उत्पन्न संवेदनशून्यता की पीड़ा व दर्द का अनुभव प्रभाजी ने बड़ी ही खूबसूरती से किया है।"[3]

भारतीय नारी की यह स्वभावगत विशेषता है कि वह उदारमना होती है। सुख शांति और संतोष से जीना चाहती है। "तालाबंदी' की सुमित्रा के भाईयों ने सोने-चांदी के व्यवसाय में पर्याप्त धन कमाया था परन्तु समित्रा को उससे भी अधिक प्रसन्नता यह थी कि वह अपने परिवार में सुखी है। अपने भाग्य पर वह खुस थी, "देवता जैसे पति। सभी कुछ तो भगवान ने दिया था, इसलिए शिकायत क्यों करें? और किसलिए धन में घमंड लायें? भाग्य तो तभी ҇लता है जब आदमी दूसरों को भी सहारा देता है। अतः परिवार में देने-लेने में सुमित्रा ने मुट्ठी नहीं बंद की।"[4] भारतीय नारी की नियति यही है कि वह अपनी महत्वाकांक्षा के लिए

जी–जान से परिश्रम करती तब उसे प्रेरित–प्रोत्साहित करने के बजाय उसकी निंदा की जाती है। प्रिया की यही त्रासदी है। पति नरेन्द्र उस पर तीक्ष्ण बाण चलाता रहता है। "दरअसल तुम्हें इतनी खुली छूट देने की गलती मेरी ही थी। मुझे पहले ही चिड़िया के पंख काट डालने चाहिए थे। पर मैं तुम्हारी बातों में आ गया। तुम्हारे इस भोले चेहरे के पीछे एक मक्कार औरत का चेहरा है।"[5] नारी का यौन शोषण समाज में ही नहीं अपितु अपने परिवार में भी होता है। छिन्नमस्ता की प्रिया का यौन शोषण उसका सगा भाई करता है। जब वह केवल दस–बारह वर्ष की थी। जब यह बात वह अपनी दाई माँ से कहती है तब दाई माँ उसे समझाती है। जिसमें नारी जीवन की भयावहता अंतर्निहित है। "अरी मोर बिटिया, नाही! तोहार क्वारापन खतम हो गईल....... कच्ची कली....... नाहीं बिटिया, नाहीं, ई बात किसी से कभी जिन कहियों।"[6]

प्रभा जी ने अपने मारवाड़ी समाज में व्याप्त धन के प्रति अत्यधिक लोभ एवं दहेज प्रथा का चित्रण किया है। सल्लो जीजी का विवाह जिस परिवार में हुआ था उनका जूट, कॉटन, लोहा, चाय का व्यवसाय था। यद्यपि जीजाजी काले और बदसूरत थे फिर भी मामाजी ने सल्लो का विवाह उनसे करा दिया। बाबू जी इसके विरुद्ध थे वे अपनी सुंदर गोरी पुत्री का विवाह किसी सुस्वरूप से करना चाहते थे। उनका मत था इस खानदान का व्यवसाय सट्टे पर आधारित है। अतः भविष्य अंधकारमय हो सकता है। उन्हीं के शब्दों में– "उन सटोरियों की कितनी गुन–गाथा गाओगे, जयकुमार? कल सट्टे में उसके जूट मिल, कॉटन मिल सब बिक जाएंगें और उसने कैसे पैसा कमाया, क्या मैं नहीं जानता? और मैं अपनी दूध परी–सी बेटी उस काले कव्वे से ब्याह दूँ? क्या कमी है मेरे घर में? थोड़ा धन ही तो कम मिलेगा? आखिर, हमारा खानदान?"[7] परन्तु सल्लो जीजी का विवाह वहीं हुआ और पिता ने आभूषणों को अतिरिक्त एक लाख रूपये दहेज में दिए जिसकी आज कीमत करोड़ों रूपये है।

प्रस्तुत उपन्यास में जूड़ी प्रिया से नारी–व्यथा को शब्दबद्ध करने का निवेदन करती है– "प्रिया! तुम अपनी डायरी लिखती रहो। औरत आज भी मूक है। उसके आँसुओं को दुनिया देखती है। उसके हिस्टीरिया के दौरे, उसके चीखने–चिल्लाने पर लोग कानों पर हाथ रख लेते हैं...... उसकी शिकायत भरी निगाहों को देखकर भी पुरुष अनदेखा कर जाता है। मगर शब्दों का अपना इतिहास होता है...... और यदि ये छप जाए तब क्या उनकी यों उपेक्षा करना संभव होगा?"[8]

प्रभा खेतान के उपन्यासों में चित्रित नारी जीवन को दृष्टि में रखकर डॉ० उषा कीर्ति राणावत लिखती हैं– "इस प्रकार प्रभाजी ने अपने उपन्यासों में स्त्री के तमाम रूपों का चित्रण किया है। कहीं किसी भूमिका में स्त्री की कमजोरियों का वर्णन है तो कहीं उसे कसूरवार ठहराया है। विवशता, पीड़ा, मानसिक दुःख और असुरक्षित जीवन होते हुए उनकी सभी स्त्रियाँ व्यवस्था के मोहरे बनकर कभी समझौते करती हैं तो कभी विद्रोह और कभी मानवी बनकर सहज आत्मीय समर्पण से दूसरों को अपनों से ज्यादा स्नेह की छाया देकर एक नवीन संसार को साकार करती हैं।"[9] नारी की विडम्बना यह है कि उसका अस्तित्व, उसकी पहचान तभी होती है जब वह किसी से ब्याहता हो, अन्यथा सब उसकी ओर हिकारत भरी दृष्टि से देखते हैं। विवाह के कई महीनों पश्चात् जब प्रिया अपने बेटे संजू को लेकर ससुराल गई तब उसकी मुलाकात अपनी उस सास से हुई जो ससुर जी की रखैल थी। प्रिया ने "छोटी माँ' कहकर उनके पैर छुएँ। उसने प्रिया को दोनों बाहों में

भर लिया और अपने हाथों के सोने के कंगन पहना दिए। वे अपनी पुत्री नीना का आग्रह होते हुए भी प्रिया के विवाह में नहीं जा सकी थी क्योंकि समाज इस प्रकार की स्त्री को कैसे बर्दाश्त करता। प्रिया सोचती है कि– "छोटी माँ से पूँछू कि आपको अपनी इस जिंदगी से क्या शिकायत नहीं होती और नीना का भविष्य? हालाँकि आप पापा का नाम अपने नाम के पीछे लगाती हैं, अपने गले में मंगलसूत्र पहन रखा है और माँग में सिंदूर भर रखा है, लेकिन फिर क्यों, किसलिए मेरे ब्याह पर नहीं आई? और तब मुझे शादी के वक्त की अम्मा की दबी हुई शेषपूर्ण आवाज सुनाई दे रही थी। बेटा विजय! एक बात तो शाहजी से कह दो, रंडियों और रखैलों को लेकर बारात में आयेंगे तो बात कैसी छिपेगी ? सब मुँह छिपा–छिपाकर हँसेंगे। हमारी भी कोई इज्जत है।"[10] परिस्थितियों से व्यक्ति या तो टूट जाता है या फिर अपनी संपूर्ण शक्ति से उन परिस्थितियों से संघर्ष करता है, जो परिस्थितियों से विचलित नहीं होते वे सही जिंदगी जीते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की नीना इसी प्रकार का चरित्र है– "नीना के लिए आग हो या पानी, वह सब कुछ को जिन्दगी का धर्म मानती है, उसके जीवन की अपनी लय है। ऐसा नहीं कि अकेलापन उसे नहीं चुभता पर वह हर तूान का हँसकर स्वागत करती है और निर्भय होकर हँसती है।"[11] जूड़ी प्रिया को समझाती है कि यह भी एक हमदर्द औरत ही दूसरी औरत का दर्द समझती है। केवल एक प्रिया ही नहीं जो दुःख पा रही है। हर औरत के अपने–अपने दर्द के तहखाने हैं। प्रिया जूड़ी को समझाती है कि उसने नरेन्द्र के साथ समझौता करने का बहुत प्रयास किया परन्तु– "मुझे समझ में आने लगा कि नहीं, नरेन्द्र के परिवेश का यह ढाँचा नहीं बदलेगा। जरूरत तो इस बात की थी कि मैं इस ढाँचे के अनुसार ढ़ल जाती पर ढ़ल नहीं पा रही थी। इसे मैं किसकी गलती कहूँ? किस पर दोषारोपण करूँ? हमेशा मैं स्वयं को ही अपराधी मानती।"[12]

जूडी और प्रिया में जब–जब वार्तालाप होता है तब–तब उनमें नारी की व्यथा व्यक्त होती है। जूड़ी का तर्क है कि– "जिंदगी जीने के लिए अपनी लड़ाई लड़नी पड़ती है। यदि औरत व्यवस्था के बाहर कदम बढ़ाती है तो उसे ज्यादा बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। मैं जानती हूँ कि पश्चिम की हम स्त्रियों पर तुम लोग हँसते हो, तुम्हें लगता होगा कि हम स्वच्छंद हैं, घरुोडू हैं, हर किसी के साथ पलँग पर साझा करने को तैयार रहती हैं।"[13] प्रिया का यह मत है कि सदैव स्त्री से ही आहुति की अपेक्षा क्यों की जाती है? और जब आहुति देने वाला अपनी कीमत माँगना चाहता है तब उसकी उपेक्षा की जाती है। उसे अपने जीवन में प्रेम केवल दाई माँ से मिला था। बाकी, 'तो केवल हर जगह केवल होड़, प्रतियोगिता, प्रथम पंक्ति में बने रहने की जी–तोड़ कोशिश क्यों जूड़ी, पुरुष हमेशा जीतना ही क्यों चाहता है?' प्रिया के मन में यही प्रश्न बार–बार उभरता है कि "स्त्री–पुरुष का सम्बंध क्या मालिक और गुलाम का है? भोक्ता और भोज्य का है? व्यक्ति और वस्तु का है? कब तक यह द्वन्द्व चलेगा?'

नारी की वर्तमान दशा और दिशा को देखकर लेखिका चिंतित होती है। उसकी यही चिंता चिंतन बनकर अपने साहित्य में उभरती है। नारी का जीवन अश्रुमयी घटनाओं का इतिहास होता है। उसे न चाहकर भी रोने के लिए विवश होना पड़ता है या विवश कर दिया जाता है। इसी सत्य को लेखिका व्यक्त करती है– "औरत कहाँ नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूप साफ करते हुए या फिर सारे भोग–ऐश्वर्य के बावजूद मेरी सासूजी की तरह पलंग पर रात–रात भर अकेले करवटें बदलते

हुए। हाड़-मांस की बनी ये औरत....... अपने-अपने तरीके से जिंदगी जीने की कोशिश में छटपटाती ये औरतें! हजारों सालों से इनके ये आँसू बहते आ रहे हैं।"[14]

'अपने-अपने चेहरे' की मिसेज गोयनका को रमा का विरोधी होना चाहिए परन्तु वह रमा की प्रशंसा करती रहती है। वह रमा के प्रति संवेदनशील हैं। कारण रमा का उनके परिवार के प्रति निश्चछल स्नेह है। उसी ने रीतू को संस्कारित किया है। मिसेज गोयनका के शब्दों में- "मैंने जन्म दिया पर शिक्षा तो रमा की मिली ना? कुछ भी कहो मन्नो, उसने मेरे लिए किया बहुत है। मुझे तो उस पर दया आती है। तुम्हीं बताओ, उसको क्या मिला? दुःख ही पाती है ना, उसकी शादी तो देखो, इनसे हो नहीं सकती। समाज तो, अब तुम्हीं बताओ, ऐसे नाजायज सम्बंधों को भला कैसे स्वीकारेगा?"[15] वास्तविकता भी यही है कि समाज इस प्रकार के सम्बंधों को अवैध मानकर कभी भी स्वीकार नहीं करता। मन्नो भी रमा के प्रति भावुक हो जाती है- "हाँ भाभी जी, आप बात तो ठीक ही कह रही हैं। जो स्थान पत्नी का होता है, वह भलो प्रेमिका को थोड़े ही मिल जाएगा? बेचारी रमा? सच भाभी जी किसी का करम टूटता है, तभी न वह ऐसे-वैसे रास्ते पर चलता है। कितना भी वह राजन भैया को प्यार करे, कितना भी त्याग करे, समाज की नजर में तो ऐसे रिश्ते........?"[16]

सामान्यतः यह दृष्टिगत होता है कि परिवार की स्त्रियों में पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या आदि भाव होते हैं। स्मिता सोचती है कि- "अजीब है यह घर भी। किसी को किसी से प्यार नहीं.......। कोई सरोकार नहीं, भाभी आजकल आफिस क्यों जाने लगीं, और घर से दूर हो गयीं, जब भाभी जी जाती हैं तो मैं क्यों नहीं जाऊँ? मैं ही क्या फालतू हूँ जो सबका हुकुम बजाती रहूँ। इस साल में मेरी भी दशा मेरी सास की तरह हो जायेगी। ओ.......ना........। इन लोगों के कहे-कहे चलूँगी तो मैं बस 'टोमाटो पल्प' होकर रह जाऊँगी।"[17] लेखिका ने स्मिता के माध्यम से नारी के सोच में आए बदलाव की ओर संकेत किया है। आज की नारी केवल भावनात्मक स्तर पर नहीं जीना चाहती क्योंकि वह अपने अधिकारों के प्रति सजग है।

प्रभा खेतान ने रमा के माध्यम से एक ऐसी युवती का चित्रण किया है जो महत्वाकांक्षी है। जिसके विचार सुलझे हुए हैं। जो शून्य में से अपना विश्व निर्माण करने की क्षमता रखती है। रमा सर्वप्रथम गोयनका के यहाँ रीतू को पढ़ाने आती थी। उसे पहली बार देखते ही प्रथम परिचय में दोनों एक-दूसरे की ओर आकर्षित हुए। उन्होंने उससे केवल इतना ही कहा- "रीतू को आप अपनी जैसी स्मार्ट, शालीन, सौम्य बनाइएँ।' उनको आश्चर्य यह हुआ कि मारवाड़ी समाज में भी ऐसी लड़की हो सकती है? पूछने पर रमा ने इतना ही कहा कि- "औरत बिना स्वावलंबी हुए स्वतंत्र नहीं हो सकती।' एक वर्ष के पश्चात् रमा मि0 गोयनका की सेक्रेटरी बनी और उन्हें व्यवसाय में सलाह भी देने लगी। उसने स्वयं सप्लाई के काम के साथ लोहे का एक कारखाना खड़ा कर दिया। मिसेज गोयनका भी रमा की महत्वाकांक्षा, उसके दृढ़ निश्चय, व्यवसाय के प्रति प्रतिबद्धता से प्रभावित हुई। उसे केवल यही चिंता थी कि पति दिन-प्रतिदिन रमा से प्रभावित होते जा रहे हैं। उनके सम्बंधों की चर्चा परिवार एवं समाज में भी होने लगी है। मिसेज गोयनका मन ही मन सोचती हैं कि उसकी जगह कोई दूसरी पत्नी होती तो पति के होश ठिकाने लगा देती। पर यह बच्चों के कारण मौन धारण कर लेती है। उसने इस सम्बंध के विरोध में बवाल अवश्य मचाया, कम्पोज की गोलियाँ भी खायी, पति के जीवन को हराम कर

दिया परन्तु अंततः उनके सम्बंधों को स्वीकार कर लिया। उधर माँ दोस्ती निभाती रही और उसे एक ही प्रश्न सालता रहा कि क्या स्त्री–पुरुष में दोस्ती नहीं हो सकती?

प्रभा खेतान ने आलोच्य उपन्यास में स्त्री–पुरुष के अधिकारों का निरूपण किया है। समाज में सभी बुद्धिजीवी स्त्री–पुरुष की समानता का पक्ष लेते हैं। परन्तु यथास्थिति क्या है। जिस प्रकार रीतू को यह सीख दी जाती है कि वह कुणाल की प्रेमिका को स्वीकार कर ले। परन्तु यदि रीतू किसी से विवाहेत्तर सम्बंध रखती तो क्या समाज उसको स्वीकार करता? और यदि कुणाल स्वीकार कर लेता तो उसे 'क्लीब' की संज्ञा दी जाती। "अजीब है ये विशेषण भी। अपने लिए इसका एक उपयोग, दूसरे के लिए दूसरा। तराजू के दो पलड़ों का अलग–अलग वजन, फिर न्याय–अन्याय का द्वन्द्व हम क्यों उठाते हैं? न्याय है ही कहाँ? स्त्री–पुरुष में समानता है कहाँ? एक सत्ता की कुर्सी पर बैठा हुआ अपने पूरे सामर्थ्य के साथ, दूसरा आँचल पसारे न्याय की भीख मांगती हुई, उसके चरणों में झुकी हुई।"[18] लेखिका ने अत्यंत वैचारिकता के साथ नारी जीवन की नियति एवं त्रासदी को उकेरा है।

यथार्थततः एक नारी को दूसरी नारी की व्यथा समझनी चाहिए। रमा का यही अभिमत है परन्तु वह प्रेमा से चाहकर भी कुछ बोल नहीं सकी, प्रेमा आखिर तुम लोग टूटती हुई औरत को और क्यों तोड़ देती हो। मानवीय संवेदना की वह कौन–सी कड़ी है। जो तुम लोगों के मन से छिटक कर दूर जा गिरती है? तुम भी औरत हो और वह भी, एक गुलाम दूसरे गुलाम की भाषा क्यों नहीं समझता, वह अचानक क्यों मालिक की भाषा में दूसरे गुलाम से बात करने लगता है।"[19]

आलोच्य उपन्यास में प्रथा खेतान के विचारों की वाहक रमा है। उसके विचारों में साम्प्रतिक नारी का अपने अहं के प्रति सजग होना, समाहित है। समसामयिक युग की नारी विवाह, पति, बच्चों के प्रति प्रतिबद्ध रहकर भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए भरसक प्रयत्न करती है। यथार्थ में उसकी भी अपनी अस्मिता है। वह अपमान, अत्याचार, अन्याय का विरोध करती है। उसकी भी अपनी कुछ अहमियत है। इसीलिए रमा रीतू को पत्र में लिखती है– "रीतू जीवन सार्थक बन सके इसका प्रयास करो। विवाह, पति बच्चे से परे भी औरत है, उसका अस्तित्व है। उसका सामाजिक अवदान हो सकता है। इस पर सोचो। पति सर्वस्व नहीं, अपने स्वरूप को पहचानो।"[20]

मिसेज गोयनका एक ओर पति के प्रति सहानुभूति रखती है। तो दूसरी ओर रीतू के भविष्य के प्रति चिंतित है। वस्तुतः वह गृहस्थी धर्म का निर्वाह करने वाली एक उदार एवं उदात्त नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं– "क्या सच में सम्बंध टूट गया? क्या ऐसे सम्बंध टूटा करते हैं? और, ये भी बचारे क्या करें? बेटी का दुःख किस बाप से देखा जाता है और, शाहजी ने फोन भी नहीं किया। अजीब हैं रीतू के ससुराल वाले। क्या मैंने उन्हें मुक्त में बेटी को सौंपा था? लेकिन रीतू कैसे रहेगी, यहाँ पर? अकेली पहाड़–सी जिंदगी कैसे कटेगी?"[21] वह रीतू को समझाना चाहती थी कि बिना सात फेरे के कोई किसी का हो ही नहीं सकता। उसके पति भले ही रमा रमा करते रहें, फिर भी वही उनकी पत्नी है।

भारतीय नारी की त्रासद स्थिति यह है कि वह अनेक स्तरों पर टूटती है, बिखरती है। उसका अपना घर नहीं होता। विवाह के पूर्व पिता का घर तत्पश्चात् पति का घर और यदि वह मायके आती है तो घर भाईयों का बन जाता है। जहाँ उसका हमेशा के लिए आकर रहना अपने सगे भी बर्दाश्त नहीं करते। नारी जीवन की इस भयावह स्थिति को लेखिका ने व्यक्त किया है- "मगर औरत के आत्म-विश्वास की चिंता है किसी को? क्या कभी यह भी सोचता है कि एक ही साथ कई-कई स्तरों में वह कितना-कितना टूटती है और रीतू का यह टूटना किसलिए? अपना घर बेचाने के लिए? चारों ओर से बस एक ही सलाहना रीतू, तुम लड़ती रहो। आखिरी दम तक लड़ती रहो लेकिन घर मत छोड़ो। घर? औरत का कब कौन-सा घर हुआ है? वह रीतू के पति का घर है, यह पिता का, फिर भाइयों का।"[22] मिसेज गोयनका का बार-बार यही आग्रह करना कि रमा रीतू को समझाये कि वह ससुराल लौट जाए पति के पैर पकड़कर उनसे क्षमा-याचना करे। रमा आधुनिक विचारों की है। वह नारी स्वतंत्रता में विश्वास करती है। उसे नारी पर हुए अत्याचारों के प्रति आक्रोश है। अतः वह मिसेज गोयनका से यही निवेदन करती है कि जो कुणाल से मार खाकर आयी हो, यहाँ आने के बाद सास-ससुर ने ेोन पर पूंछताछ तक नहीं की ऐसी स्थिति में उसे कैसे समझाया जाए कि वह लौट जाए। भारतीय नारी परम्पराओं से इतनी संपृक्त है कि यदि पति दो-चार चपत भी लगा दे तो उसे यह व्यवहार असामान्य नहीं लगता। मिसेज गोयनका को दकियानूसी विचार सोचनीय हैं- "रमा तुम, समझती क्यों नहीं कि जवान बेटी छाती पर बैठी अच्छी नहीं लगेगी और क्या हुआ, यदि पुरुष ने जरा-सी चपत लगा ही दी..........।"[23] रमा के विचारों में लेखिका का यह दृष्टिकोण समाहित है कि समस्त व्यवस्था पुरुष द्वारा निर्मित है। परम्पराएँ रीति-रिवाज, नियम पुरुष द्वारा निर्मित हैं। अतः स्त्री केवल शतरंज के मोहरों के समान है। जिसे चलाने वाले पुरुष खिलाड़ी हैं। रमा का तर्क यह भी है कि समाज में सभी नियम पुरुष द्व ारा बनाए होने के कारण उसने बहुविवाह प्रथा निर्माण की। यद्यपि आज एक पत्नी व्रत की प्रथा है। नियम है लेकिन यह व्रत टूट रहा है। भले ही उसे मानवीय कमजोरी कहें।

नारी की नियति यही है कि उसे अपने जीवन में सभी को झेलना पड़ता है, सहन करना पड़ता है, और तब उसे प्रेम की व्यर्थता का अनुभव होता है। रमा के शब्दों में- "मैं बोल्ड हूँ या मेरी अपनी कोई मजबूरी है। यह मैं नहीं जानती। किन्तु इतना भर जानती हूँ कि स्त्री की जिंदगी केवल पुरुष की तलाश बनकर नहीं रह सकती, वह प्यार तो एक बार करती है। बस एक बार। एक ही पुरुष से। कभी शादी से पहले, कभी शादी के बाद। इसके बाद तो वह केवल अपने-आपको झेलना सीखती है।"[24]

लेखिका ने आलोच्य उपन्यास में रमा के माध्यम से समाज की नारी विषयक स्थिति की ओर संकेत किया है- "समाज वस्तुओं को मापता-तौलता है। समाज की नजर में औरत वस्तु है....... भोग्या है। उसकी नजर में मैं क्या हूँ? खुद अपनी नजर में मैं क्या हूँ? किसी की वस्तु या फिर बहता हुआ दरिया, जो किसी के पहलू में ठहर नहीं सके। मुट्ठी में बंद न हो सके।"[25]

यह एक सामाजिक तथ्य है कि समाज अकेली स्त्री को हेय दृष्टि से देखता है क्योंकि वह स्त्री को केवल नाते-रिश्तों में देखता है। उसकी दृष्टि में वह किसी की माँ, बहन, पत्नी, पुत्री ही होनी चाहिए। लेखिका

ने इसी तथ्य को उभारा है– "समाज, औरत को केवल सम्बंधों के माध्यम से जीवित देखने का आदी है। जब समाज किसी औरत के विरोध में खड़ा होता है, तब उसके पास कोई मानवीय पैमाना नहीं होता।"[26]

'पीली आंधी' की पद्मावती एक आदर्श पत्नी बनी– "उस किशोरी ने एक बार अपने अधेड़ निःसंतान पति की ओर देखा, वृद्धा सास को देखा, देवर–देवरानी का स्वभाव समझा, घर की बेतरतीब व्यवस्था को देखा और मन ही मन सोचा, जैसे पति की सेवा करना मेरा धरम है, वैसे ही सास की आज्ञा मानना मेरा फरज है।"[27] वह सम्पूर्ण परिवार के प्रति प्रतिबद्ध होकर नारी कर्तव्य का निर्वाह करने लगी– "वह कब चौके में जाकर चूंटिया घी से ठुलका चुपड़कर देवर और पति को देने लगी, किसी को पता नहीं चला। कब बच्चों को बड़ी माँ दूध में बादाम–पिश्ता मलाई देने लगी, किसी को समझ में नहीं आया। कब वह राधाबाई के सर बादाम रोगन का तेल लगाने लगी, खुद राधा बाई को ही गुदाज हथेलियों की तेल–मालिश बहुत अच्छी लगती। जरूरत से ज्यादा सुहाती। रात को जब वह उनके गोड़े में आक के पत्तों का सेंक करती तो आशीष दिए बिना उनसे रहा नहीं जाता।"[28]

परिवार में लड़की वयस्क होते ही उसके विवाह की चिंता सताने लगती है। क्योंकि यदि योग्य समय पर विवाह नहीं हुआ तो कई समस्याएँ उपस्थित हो जाती हैं। आलोच्य उपन्यास में म्हालीराम की पत्नी यही चाहती है कि पणिया का विवाह शीघ्र हो जाए। उसकी चिंता यह है कि– "मेरी तो रात–दिन काया जलती है। स्याणी समझणी, जोध–जवान सोलह बरस की बेटी घर में कुंआरी बैठी है, और ताऊ–बेटे को कैसे तो भूख–तिरस लगती है और कैसे नींद आती है? गाँव मुझको रात–दिन मोसा मारता है। अपने तो मनुसुखदास जी ही स्याणे निकले। देखो, कैसे अपनी बेटी को माधो बाबू के घर में पहुँचा दिया। बेटा पणिया, तेरे ताऊजी को अब थोड़ा घणा विचार करना होगा।"[29]

सम्प्रति सोमा जैसी युवतियाँ सुशिक्षित होने के कारण यह स्वीकार नहीं करतीं कि उनकी पसंद को बिना जाने किसी लड़के से उसका विवाह रच दिया जाए। वह खूंटे की गाय बनकर नहीं रहना चाहतीं। इसलिए सोमा माता–पिता से स्पष्ट शब्दों में कहती है उसे लड़का पसंद नहीं है। क्योंकि वह "मेनली नहीं लगता' फिर भी सोना गौतम से विवाह करने के लिए विवश हो जाती है। परन्तु ससुराल में आने के पश्चात् वह देखती है कि अनुशासन बहुत कड़ा है। सभी को एक निश्चित समय पर नाश्ता और भोजन करने एक साथ बैठना पड़ता है। सोमा को यह अनुशासन बंदीगृह के समान लगता है। आपकी पसंद हो या न हो जो कुछ बना है उसे खाना ही पड़ता है। और फिर स्त्री के लिए तो यह आवश्यक है कि वह किसी प्रकार का विरोध न करे। सोमा को ताईजी यह समझाती हैं– "चुपचाप जो बना है खा लो। समझी, छोटी बीणनी। यहाँ यह सब अलग–अलग कानून नहीं चलेगा और कल से ठीक आठ बजे नहा–धोकर, पूजा करके नीचे डाइनिंग रूप में आ जाना। अपने यहाँ पहले बच्चे कलेवा करते हैं। फिर घर के मोहियार लोग और सबसे बाद में बहुएं।"[30]

प्रभा खेतान ने अपने जीवन में भारतीय एवं पाश्चात्य स्त्रियों की कारूणिक स्थिति के साथ उनके संघर्षशील व्यक्तित्व को देखा था, समझा था और परखा था। यही अनुभवजन्य ज्ञान उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है।

संदर्भ

1. औरत के लिए औरत, नासिरा शर्मा, पृ॰ 6
2. आओ पेपे, घर चलें, प्रभा खेतान, पृ॰ 25
3. प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, डॉ॰ उषा कीर्ति राणावत, पृ॰ 100
4. तालाबंदी, प्रभा खेतान, पृ॰ 28
5. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ॰ 11
6. उपरोक्त, पृ॰ 18
7. उपरोक्त, पृ॰ 200
8. उपरोक्त, पृ॰ 23
9. प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, डॉ॰ उषा कीर्ति राणावत, पृ॰ 134
10. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, पृ॰ 143
11. उपरोक्त, पृ॰ 185
12. उपरोक्त, पृ॰ 187
13. उपरोक्त, पृ॰ 187–188
14. उपरोक्त, पृ॰ 200
15. अपने–अपने चेहरे, प्रभा खेतान, पृ॰ 10
16. उपरोक्त, पृ॰ 10
17. उपरोक्त, पृ॰ 57
18. उपरोक्त, पृ॰ 93
19. उपरोक्त, पृ॰ 94
20. उपरोक्त, पृ॰ 94
21. उपरोक्त, पृ॰ 101
22. उपरोक्त, पृ॰ 102
23. उपरोक्त, पृ॰ 103
24. उपरोक्त, पृ॰ 181
25. उपरोक्त, पृ॰ 191
26. उपरोक्त, पृ॰ 195
27. पीली आंधी, प्रभा खेतान, पृ॰ 97–98
28. उपरोक्त, पृ॰ 98
29. उपरोक्त, पृ॰ 106
30. उपरोक्त, पृ॰ 179

वेदान्तदर्शनस्थं "पञ्चरत्नम्"

डॉ० राहुल चौधरी
स०अ०, बेसिक शिक्षा परिषद्
प्रयागराज

श्रीमदच्छङ्करभगवत्पादविरचितानां ग्रन्थानां बाहुल्यं वैविध्यच्चावलोक्यं तेषु कियन्त आद्यशङ्करकृता अथ च कियन्तः शङ्करोपाधिधारिणान्येन कृता इति संशेरते प्रायेणैथ्तह्यविदः। ते तावदन्तरङ्गप्रमाणाभ्यां विचारचन्तु नाम विष्येऽस्मिन् परन्तु सत्यमिदं यत्परमार्थतोऽद्वैतवादी ह्याचार्यो व्यवहारभूमौ नानादैववादमभ्युपगम्य तत्तद् देवोपासनासाधनीभूतानि स्तोत्रादीनि नानाग्रन्थरत्नानि लिखितवान्। लोकर्स्ग्रहार्थं स्वयं सगुणोपासनामङ्गीकरोति भगवान् शङ्करः। गगनोपमे तदीये हृदये साम्प्रछायिकक्षुद्रताया अवकाशोऽपि नासीदतो विष्णु-गणेश-शक्तिशिवादीनां तत्प्रणीतानि नानास्तोत्राणि समुपभ्यन्ते। संक्षेपतास्त्रिभागः कर्तं शक्यते तद्ग्रन्थानाम्-भाष्यग्रन्थाः, स्तोत्रग्रन्थाः प्रकरणग्रन्थाश्च।

यद्यपि शङ्कराचार्यप्रणीतान्यन्यान्यपि गणेश-ललिता-मीनाक्षी-लक्ष्मीनृसिंहा- द्वैतपञ्चरत्नान्युपलभ्यन्ते, तथापि प्रकृतः पञ्चरत्ननामा प्रकरणग्रन्थोऽस्ति प्रथितो, यत्र पञ्चभिः पद्यैरद्वैतिनामाचारोपदेशः कृतः। अत एवं ग्रन्थोऽयमुपदेशपञ्चरत्नम्, उपदेशपञ्चकमित्यपि कथ्यते। अयं पञ्चपद्यात्मको ग्रन्थः 'वेदाःनित्यमधीयतां' इत्यादिना समारभ्यते। पर्यवसानञ्च भवत्यस्य "परं ब्रह्मात्मना स्थीयताम्' इत्यन्तेन वाक्यान्तभागेन।

तदवलोकयन्तु-

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्यताम्।
पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयता-
मात्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम्।।1।।
सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भद्रिर्दृढा धीयतां
शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरां कर्माशु सन्त्यज्यताम्।
सद्विद्वानुपसर्प्यतामनुदितनं तत्पादुके सेव्यतां
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम्।।2।।
वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरः वक्षः समाश्रीयतां
दुस्तर्कान् सुविचार्यतां श्रुतिमतस्तर्केऽनुसन्धीयताम्।
ब्रह्मास्मीति विभाव्यतामहरहो गर्वः परित्यज्यतां
देहेदमतिरुज्झतां बुधजनैर्बाधः समुत्सृज्यताम्।।3।।
क्षुदव्याधिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां

स्वाद्वन्नेन तु यत्यतां विधिवशात् प्राप्तेन सन्तुष्यताम्।
शीतोष्णादि विषङ्गतां न च वृथा वाक्यं समुच्चार्यता-
मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैष्ठुर्यमुत्सृज्यताम्।।4।।
एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेत: समाधीयतां
पूर्णात्मासु समीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम्।
प्राक्कर्म प्रविलप्स्यतां चितिबलान्नाप्युत्तरै: श्लिष्यतां
प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परं ब्रह्मात्मना स्थीयतताम्।।5।।

सूत्ररूपात्मक: पञ्चश्लोकीय: सक्षेपत: सर्ववेदार्थर्स्ग्रहरूपोऽयं ग्रन्थ: उपदेशपञ्चरत्नाम्ना वेदान्तिषु प्रसिद्धोऽस्ति्।

भारतवर्षे भद्रिदर्शनयो: आमूलचूलं चिन्तनम्, यत्सामान्यलोकस्य व्यवहारस्य विषयोऽभवत्, अस्य मुख्यत: द्वै स्रोतसी आस्ताम्- एकस्तु श्रीमद्भगवतमहापुराणम्, तस्य वैष्णवभक्त्या: विविधा: धाराश्च, या दक्षिणत: उत्तरे आगचछति स्म। द्वितीयं स्रोत: आसीत्, अद्वैतब्रह्मचिन्तनस्य, यस्य महान् व्याख्याता आचार्यशङ्करस्य ब्रह्मसूत्रे कृतस्य शारीरकभाष्यस्य दर्शनजगति हिमालयात् कन्याकुमारी पर्यन्तं विपुला ख्यातिरभवत्। आचार्य: शङ्करानन्तरमेकादशतमशताब्दीत: सप्तदाथधशतमशताब्दीं यावत् विविधा: धार्मिकाचार्या: स्वसिद्धान्तस्य प्रतिपादनाय स्वस्वदृष्टिकोणेन अस्मिन् ग्रन्थे भाष्यान्यलिखन्। तेषु प्रसिद्ध: आचार्या: सन्ति–श्रीरामानुजाचार्य:, श्रीवल्लभाचार्य:, श्रीनिम्बार्काचाग्र:, श्रीविज्ञानभिक्षु:, आचार्यरामानन्दश्च। अस्मिन् क्रमे शङ्कराचार्यस्योपनिषद् भाष्यम्, प्रकरणग्रन्थाश्च व्याख्याया: विषया अभवन्।

सूत्ररूपात्मक: पञ्चश्लोकीय: स७पत: सर्ववेदार्थसऽग्रहरूपो ग्रन्थ: उपदेशपञ्चरत्नाम्ना वेदान्तिषु प्रसिद्धिं गत:। यत्र पञ्चभि: पद्यैराचारोपदेश: कृतोऽस्ति। अत्र श्रेष्ठैराचार्यै: व्याख्यानमकारि। न्यू केटलॉगम् केटलॉगोरम् ग्रन्थो ज्ञायते यत् किरणावल्यादिटीकाभि: सह पृथक् पृथक् पञ्चरत्नं प्रकाशितमप्यस्तीति।।

भगवत्पादाद्यशङ्कराचार्यविरचितस्य सर्ववेदार्थर्स्ग्रहरूपस्य ग्रन्थस्य "उपदेशपञ्चरत्नम्' इति नाम्ना प्रसिद्धस्य एका टीका पञ्चरत्नर्पकाश: इति श्रूयते स्म। अनुसन्धनाक्रमे राष्ट्रियसंस्कृतिसंस्थानस्य प्रयागस्थस्य गङ्गानाथझापरिसरस्य र्स्ग्राहलये "पञ्चरत्नप्रकाश' इति नाम्ना प्रकाशटीकोपेत: पञ्चरनतनग्रन्थ: समुपलब्ध:।

सन्दर्भा:

1. भ.गी., 9/32
2. भ.गी., 18/46
3. भक्तिरसमातृसिन्धु:, 1/1/11,
4. ईशा., 8
5. विष्णुपु०, 1/22/60
6. महाभारतम्, अश्व, पर्व०, 35/34

रोहतास जिला (बिहार) में सिंचाई सुविधायें एवं उनका विकास

अभिषेक कुमार
शोधार्थी/असिस्टेन्ट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, पी०जी० कालेज, मलिकपुरा, गाजीपुर

सारांश

पादप वृद्धि के लिये जल का सामयिक तथा उचित मात्रा में संभरण परम आवश्यक होता है। पौधों को अंकुरण, वृद्धि तथा फसल पकने के दौरान अनेक समयान्तराल में जल की आवश्कता पड़ती है। यदि समय पर फसलों हेतु जल की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध नहीं हो तो उत्तम जुताई, उत्कृष्ट बीज, उर्वरकों का उपयोग तथा इससे सम्बन्धित अनेक उपाय भी अधिकतम उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते। अतः अच्छी फसलों के उत्पादन हेतु सिंचाई सुविधाओं का विकास अतिआवश्यक है। इस दृष्टि से सिंचाई फसलों के विकास हेतु प्राथमिक आवश्यकता है जो कृषि उत्पादन के निर्धारण हेतु एक महत्वपूर्ण कारक है।

किसी क्षेत्र के कृषि के विकास में वहाँ की सिंचाई सुविधाओं का विशेष महत्व होता है। वर्तमान की कृषि मुख्य रूप में सिंचाई सुविधाओं पर आधारित है। प्राचीन काल में जब मानव तकनीकी रूप से दक्ष नहीं था तब वह कृषि हेतु पूरी तरह से प्रकृति पर ही आश्रित था परन्तु वर्तमान में मानव के द्वारा फसलों की सिंचाई हेतु बहुत सारे साधनों का आविष्कार कर लिया गया है जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुयी है।

शब्द संक्षेप– सिंचाई, उत्पादकता, संसाधन, अवस्थापनात्मक तत्व, जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक जागरूकता, आर्थिक विकास, उच्च उत्पादकता, न्यून उत्पादकता

प्रस्तावना

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहाँ की जनसंख्या एक अरब चालीस करोड़ के आंकड़े को पार कर चुकी है वहाँ इसके लिये खाद्यान्नों का उत्पादन एक बहुत बड़ी चुनौती है। इस समस्या को ध्यान में रखते हुये भारत सरकार के द्वारा खाद्यान्न फसलों के उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है जिसके लिये कृषि से सम्बन्धित अवस्थापनात्मक तत्वों का विकास किया जा रहा है जिससे कि उत्पादकता में वृद्धि की जा सके। सिंचाई सुविधाओं का विकास भी इन्हीं में से एक है। इसके बिना फसलों की अच्छी पैदावार की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

भारत में हरित क्रान्ति के पश्चात फसलों की उत्पादकता में काफी सुधार हुआ है जिसमें सिंचाई सुविधाओं के विकास का विशेष योगदान है। हरित क्रान्ति के सूत्रपात के पश्चात नहरों, नलकूपों एवं सिंचाई के अन्य साधनों का व्यापक विकास विकास हुआ है। सिंचाई सुविधाओं के विकास के कारण खाद्यान्न फसलों के उत्पादन के साथ साथ भारतीय किसान वाणिज्यिक कृषि की ओर भी अग्रसर हुआ है जिसका लाभ इनके सामान्य जीवन पर स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। इस प्रकार फसलों की उत्पादकता में सुधार हेतु सिंचाई सुविधाओं का विकास अति आवश्यक एवं अपरिहार्य है। पूर्व में भारतीय कृषि पूरी तरह से मानसून पर आधारित थी जिसमें वर्षा की अनिश्चितता सदैव बनी रहती थी परन्तु सिंचाई सुविधाओं के विस्तार के उपरान्त किसानों की वर्षा पर आश्रितता कम हुयी है एवं उत्पादकता में वृद्धि हुयी है।[1]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रोहतास जिले में सिंचाई सुविधाओं का अध्ययन करना है जिसके माध्यम से इसका आकलन कर इनका विकास सुनिश्चित करना है साथ इनके विकास में आने वाली बाधाओं का भी समाधान करना है जिससे की फसलों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सके एवं यहाँ निवास करने वाली जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराया जा सके।

विधि तन्त्र

प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक विधितन्त्रों का प्रयोग करते हुये सिंचाई सुविधाओं के आंकलन हेतु द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है जिसके आधार पर अध्ययन क्षेत्र में इसके विकास हेतु नियोजन प्रस्तुत किया गया है।

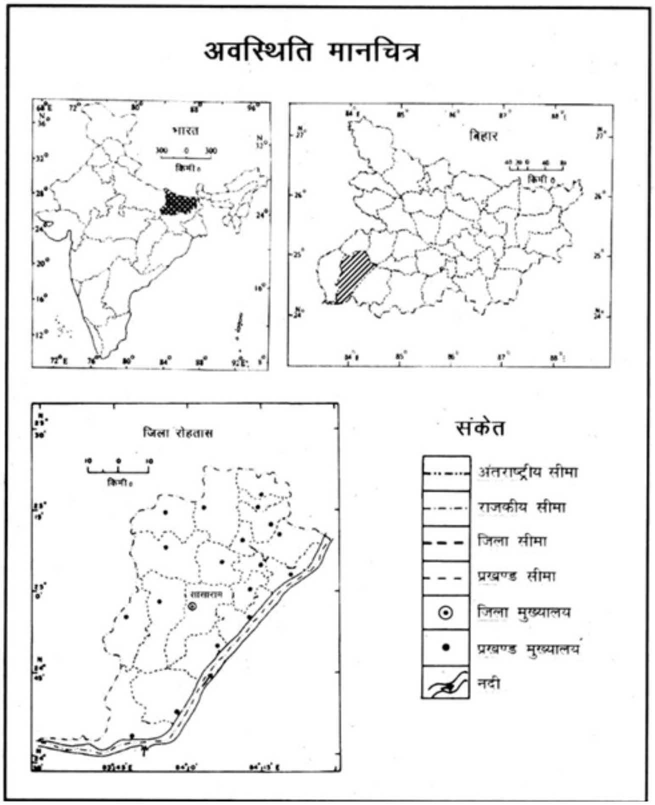

विश्लेषण एवं व्याख्या

किसी क्षेत्र में सिंचाई के साधनों का विकास उस क्षेत्र के ग्रामीण विकास को गति प्रदान करता है। वर्तमान में अध्यन क्षेत्र में भी सिंचाई के साधनों का विस्तार तीव्र गति से हो रहा है जिस कारण ग्रामीण क्षेत्रों का विकास भी सुनिश्चित हो रहा है एवं किसानों के जीवन स्तर में सुधार हो रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में कृषि के विकास हेतु नहरों, नलकूपों एवं अन्य सिंचाई के साधनों के विकास पर बल दिया गया है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि सुविधाओं का विकास हुआ है।

अध्ययन क्षेत्र में प्राचीन काल से ही सिंचाई आधारित कृषि का प्रचलन है किन्तु आजादी के बाद ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के सूत्रपात के पश्चात इन सुविधाओं के विस्तार में और अधिक तीव्रता आयी है एवं इसका लाभ ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या को प्राप्त हो रहा है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों का विकास सुनिश्चित हुआ है।[2]

अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई के निम्नलिखित साधनों का प्रयोग किया जाता है–

1. नहरों द्वारा
2. नलकूपों द्वारा
3. तालाबों द्वारा
4. कुओं द्वारा
5. अन्य साधनों जैसे वर्षान्त में नदी नालों के जल को बांध कर

उपरोक्त साधनों से वर्ष 1971–72, 2000–2001 एवं 2021–22 के मध्य सिंचित क्षेत्रों का विवरण सारण ी संख्या 1.1 में दिया गया है।

सारणी संख्या–1.1

रोहतास जिला – विभिन्न वर्षों में सिंचित क्षेत्रफल, हेक्टेयर में

क्रम संख्या	सिंचाई के साधन	सिंचित क्षेत्र		
		1971–72	2000–2001	2021–2022
1	नहर	149018.81	161686.00	171514.23
2	बोरिंग	18299.58	21704.00	25678.18
3	कुआं	1653.10	485.00	252.38
4	तालाब	4269.81	–	–
5	अन्य	13976.80	4585.00	4212.00

स्रोत–सिंचाई विभाग, रोहतास

1. नहरों द्वारा सिंचाई–

जिले में सर्वाधिक सिंचाई नहरों द्वारा की जाती है जो सारणी संख्या 4.6 से स्पष्ट है। अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु आज से लगभग 150 वर्ष पूर्व एक अंग्रेज फौजी अभियन्ता सी० एच० डिकेन्स के रिर्पोट के आलोक में 1861 में सोन नहर परियोजना बनी जिससे क्षेत्र के ग्रामीण विकास में तीव्रता आयी। डेहरी में 12469 फपीट लम्बा एवं 120 फीट चौड़ा तथा साधारण जल स्तर से 8 फीट ऊँचा बांध बनाया गया। यह बांध अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई का सबसे बड़ा माध्यम है।[3]

सारणी संख्या-1.2

रोहतास जिला - नहरों द्वारा सिंचित भूमि (हेक्टेयर में)

क्रम संख्या	प्रखण्ड	सिंचित भूमि
1	कोचस	3872
2	दिनारा	23292
3	दावथ	10127
4	सूर्यपुरा	1800
5	विक्रमगंज	11471
6	काराकाट	14645
7	नासरीगंज	7928
8	राजपुर	19915
9	संझौली	6770
10	नोखा	21250
11	करहगर	36432
12	चेनारी	7993
13	नौहट्टा	–
14	शिवसागर	15579
15	1539	10073
16	अकोढ़ीगोला	4665
17	डेहरी	7549
18	तिलौथू	04
19	रोहतास	–

स्रोत- जल संसाधन विभाग, डेहरी

सारणी संख्या 4.7 से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में नहरों का जाल बिछा हुआ है जिससे एक बहुत बड़े भाग की सिंचाई की जाती है। आंकड़ों से स्पष्ट है कि करहगर प्रखण्ड में 36432 हे० भूभाग पर सिंचाई की जाती है जो सर्वाधिक है। दक्षिणी भाग की तुलना मे उत्तरी भाग में नहरों का विस्तार अधिक है जिससे यहाँ सिंचित क्षेत्रफल भी अधिक है।

2. नलकूपों द्वारा सिंचाई

रोहतास जिले में नहर के बाद नलकूप सिंचाई के प्रमुख साधन हैं। आजादी के पूर्व यहाँ नलकूपों द्वारा सिंचाई नहीं होती थी परन्तु बाद में हरित क्रान्ति के पश्चात नलकूप सिंचाई के प्रमुख साधन बन गये। वर्ष 1971 में नलकूपों से जहाँ 18299.58 हे० भूमि की सिंचाई होती थी वहीं 2001 में बढ़ कर 21704 हे० एवं 2021 में बढ़ कर 25678 हे० हो गया। कृषक अब क्यारियों से पानी ले जाने के बजाय पाईप का प्रयोग अधिक करने लगा है जिससे पानी सीधे खेतों तक पहुँच जाता है एवं पानी की बचत भी होती है। नलकूप द्वारा सिंचाई का विकास मैदानी भागों में अधिक हुआ है क्योंकि यहाँ बोरिंग करना आसान होता है। दक्षिण ी पठारी भाग में जल भण्डार अपर्याप्त है साथ ही चट्टानों की उपस्थिति के कारण बोरिंग करना कठिन है।

3. तालाब

सिंचाई के अन्य साधनों की अनुपलब्धता के कारण पहले तालाब सिंचाई के प्रमुख श्रोत थे परन्तु वर्तमान यांत्रिक युग में तालाब से सिंचाई पर निर्भरता काफी कम हो गयी है। मैदानी भागों में मुलायम मिट्टी के कारण तालाब बनाना आसान है परन्तु दक्षिणी पठारी भाग में यह कार्य असम्भव है। सरकार के द्वारा मनरेगा के अन्तर्गत प्रत्येक गांवों में तालाब का निर्माण कराया जा रहा है जिससे सिंचाई के साथ ही वाटर रिचार्ज भी होगा।[4]

4. कुंआं

कुआं अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई का परम्परागत साधन रहा है। वर्ष 1971–72 में 1653.10 हे० भूमि पर कुओं से सिंचाई होती थी वहीं 2001 में 485 हे० भूमि पर एवं 2021 में 252.38 हे० भूमि पर ही कुओं से सिंचाई होती है। इस प्रकार की सिंचाई पद्यति ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्यत: छोटे किसानों द्वारा अपनायी जाती थी।

5. अन्य साधन

रोहतास जिले में सिंचाई के छोटे छोटे साधन भी महत्वपूर्ण हैं जिसमें पाईन, आहर, सोता और जलमग्न गढ्ढे आते हैं। इनमें से पम्पिंग सेट, लाठा, कुड़ी, आदि के माध्यम से पानी खींच कर खेतों में पहुँचाया जाता है। इन्हें भू–उदवाही सिंचाई भी कहा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक सिंचाई नहरों द्वारा ही की जाती है परन्तु दक्षिणी पठारी भूभाग में इसका विस्तार अधिक नहीं हो पाया है जिससे की इस क्षेत्र की उत्पादकता प्रभावित हो रही है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि अध्ययन क्षेत्र में कृषि के सर्वागीण विकास हेतु सिंचाई के अन्य

साधनों का विस्तार चतुर्दिक रूप से किया जाय जिससे की कृषि उत्पादकता में वृद्धि की जा सके एवं यहाँ निवास करने वाली जनसंख्या के जीवन स्तर को उपर उठाया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ

1. सिंह, रामभवन, 1992, रोहतास जिले में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
2. शंकर, अविनाश, 2020, रोहतास जिले की कृषि में सिंचाई के साधनों का उपयोग, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ क्रियेटिव रिसर्च थाट्स, वाल्यूम–8, 10 अक्टूबर 2020,
3. हुसेन, माजिद, 2000, कृषि भूगोल, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
4. कुमार, पुरूषोत्तम सुमन, 2019, बिहार के रोहतास जिला में भूमि उपयोग तथा कृषि प्रारूप : एक भौगोलिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, पटना विश्वविद्यालय, पटना

भारत की पंचायती राज व्यवस्था के विकास में महिला नेतृत्व

***विशाल**
शोधार्थी, प्रौढ़ शिक्षा विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालयएसागर
****डॉ० चिट्टीबाबू पुच्चा,**
सहायक प्राध्यापक, प्रौढ़ शिक्षा विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालयएसागर
*****डॉ० वीरेंद्र सिंह मटसेनिया,**
सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी निरंतर बढ़ती जा रही है। आज देश में 2.75 लाख ग्राम पंचायतों में लगभग 31.5 लाख से अधिक निर्वाचित प्रतिनिधियों में से 46 प्रतिशत महिलाएँ है।[1] यह आंकड़ा स्पष्ट करता है कि किस तरह से महिलाएँ पंचायती नेतृत्व में आगे आकर भाग ले रही है। पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी महिलाओं के खुद के स्वाभिमान के साथ समाज के लिए भी सकारात्मक संकेत है बल्कि इससे भारत के गांवों में फैली सामाजिक असमानता भी दूर होगी। लेकिन जिन पंचायतो में आज भी महिला जनप्रतिनिधि की जगह उनके पति या परिवार के कोई अन्य सदस्य निर्णायक भूमिका में रहते हैं वहां पर भ्रष्टाचार, काम में अनियमितता सफ़ देखने को मिलती है। एसी पंचायतों में बदलाव की भी आवश्यकता है।

महत्वपूर्ण शब्द– नेतृत्व, पंचायती राज, जनप्रतिनिधि

प्रस्तावना

इस बात से सभी अवगत है कि किसी भी देश का विकास तभी संभव है जब वहां की महिलाएँ विकसित हों। महात्मा गांधी ने कहा था कि “अगर घर के किसी कोने में गड़ा खजाना अचानक मिल जाए तो कितनी खुशी होगी। महिला शक्ति सुस्त पड़ी है, अगर भारत की महिलाएँ जाग जाएं तो वे इसी प्रकार विश्व को चकाचौंध कर देंगी।” इस क्रम में डॉ० भीमराव अंबेडकर ने कहा था कि “समाज में स्त्री का बड़ा महत्व है, जिस घर–परिवार में स्त्री शिक्षित–प्रशिक्षित हो, उनके बच्चे सदा ही उन्नति के पथ पर अग्रसर रहते हैं।”

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला नेतृत्व एवं सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं को पुरुषों के बराबर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समाज एवं हमारी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की

** First Author, **Corresponding Author, ***Co-Author*

स्वतंत्रता से है। महिलाओं में इस प्रकार की क्षमता का विकास करना जिससे वे अपने जीवन का निर्वाहन अपने आनुसार कर सकने में सक्षम हो एवं महिलाओं के अंदर आत्मविश्वास और स्वाभिमान जागृत हो सके। पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से लाखों महिलाओं का जो लोकतांत्रिक प्रशिक्षण हो रहा है वह कहीं न कहीं हमारी भारतीय राजनीति के चरित्र को प्रभावित कर रहा है। पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी बढ़ती जा रही है। आज देश में 2.75 लाख पंचायतों में लगभग 31.5 लाख जनप्रतिनिधि चुन कर आ रहे हैं। इनमें से 14 लाख (46 प्रतिशत) से भी अधिक प्रतिनिधि महिलाएं चुन कर आई हैं।[2] इससे यह सफ़ होता है कि किस तरह से महिलाएं राजनीतिक कार्यों में आगे आ रही हैं। महिलाओं की बढ़ती भागीदारी न केवल महिलाओं के स्वयं के स्वाभिमान के लिए सकारात्मक संकेत है बल्कि इससे ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक असमानता भी दूर होगी। महिलाओं का बढ़ता प्रतिनिधित्व उन्हें घर और बाहर की दुनिया में स्वतंत्र होकर जीने में सहयोग प्रदान कर रहा है और समाज में ैली सामाजिक कुरीतियों से आज की महिलाएं लड़ने में सशक्त हो रही है।

पंचायती राज व्यवस्था

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण से महिलाएं राजनैतिक रूप से भी मजबूत हुई हैं और उनकी निर्णय लेने की क्षमता का भी विकास हुआ है। लगातार पंचायती राज संस्था में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, जो कि अब 42 प्रतिशत से अधिक हो गई है। वर्तमान में देश में महिलाओं को पंचायत में 50 प्रतिशत आरक्षण देने वाला राज्य बिहार है।[3] इसके बाद और भी राज्य सरकारों ने पंचायतों में महिलाओं का आरक्षण 33 प्रतिशत से बढाकर 50 प्रतिशत कर दिया है। वर्तमान में 15 प्रमुख और बड़े राज्यों में यह विधेयक पास किए गए हैं। महिला साक्षरता 65.46 प्रतिशत हो गई है और उनमें जागरूकता भी बढ़ी है।[4] कैबिनेट ने 110 वें संविधान संशोधन को मंजूरी दे दी है, जिसके तहत महिलाओं के लिए पंचायती राज संस्था में आरक्षण 50 प्रतिशत कर दिया जाएगा।[5] इस संवैधानिक संशोधन के साथ ही निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या में और अधिक वृद्धि होगी। संविधान संशोधन का मसौदा पंचायतों को नौवीं अनुसूची में रखने के लिए तैयार किया गया। निष्कर्ष के रूप में 73 वें संविधान संशोधन के द्वारा सदस्यों और अध्यक्षों के एक-तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित करके उनको स्थानीय शासन में सक्रिय भागीदारी प्राप्त हुई है। इस प्रावधान के कारण महिलाओं की क्षमता उजागर हुई है, जो भविष्य में भारत की राजनीति को एक सकारात्मक मोड़ दे सकती है।

पंचायती राज में महिला नेतृत्व

पंचायती राज में महिला सहभागिता का क्षेत्रीय नेतृत्व उस क्षेत्र में स्त्रियों की दशा का दर्पण है। उस क्षेत्र का सामाजिक-पारिवारिक परिवेश तथा परिस्थितियों से महिला नेतृत्व की स्थिति स्पष्ट होती है। महिलाओं में साक्षरता की दर बढ़ रही है। गांवों में भी बालिका शिक्षा के आंकड़ो में बढ़ोतरी हो रही है। घूंघट उनकी

परंपरा है पर अब इससे भी महिलाएं उभर रही हैं। अब महिलाएं भ्रूण हत्या को रोकने में सजग हैं। बाल मृत्यु दर भी कम हो रही है। ग्रामीण नेतृत्व की श्रेणी में 30–45 वर्ष की महिलाएं ज्यादातर निवाचित होकर काम कर रही हैं।[6] अब वे अपनी शैक्षणिक स्थिति को बढ़ाने की दिशा में सोच रही है। महिलाओं में राजनीतिक जागृति और प्रशासनिक क्षमताओं का विकास होने लगा है। पंचायती राज के माध्यम से महिलाओं की नेतृत्व की क्षमताएं सामने आई हैं। विभिन्न सामाजिक योजनाओं की प्रगति से गांवों के आर्थिक–सामाजिक जीवन में काफी बदलाव हुआ है। अब गांव, नए भारत के नए बाजार के रूप में उभर रहे हैं। पंचायतों के जरिए विभिन्न सामाजिक योजनाएं अब आसानी से ग्रामीणों तक पहुँच पा रही हैं। अब सरकार की कोशिश है कि इन संस्थाओं को और अधिक अधिकार दिए जाएं ताकि यह न केवल वित्तीय रूप से मजबूत हो बल्कि बेहतर कामकाज के लिए प्रोत्साहित भी हो ताकि देश के आर्थिक विकास में गांव ज्यादा से ज्यादा योगदान कर सकें।

वर्तमान पंचायती राज प्रणाली की कुछ कमियां भी हैं जिन्हें दूर करना बेहद जरूरी है। इन संस्थाओं की सफलता पंचायत प्रतिनिधि एवं विकास अधिकारियों की जागृति ईमानदारी, कुशलता, मंशा और सरकारी अनुदान पर निर्भर है। वर्तमान में पंचायती राज गांवों को प्रशासनिक एवं क्रियान्वयन इकाई बनाने पर जोर दे रहा है, जबकि गाँव मूल रूप से एक सांस्कृतिक इकाई है। ऐसे में गांवों ने शहरों की बुराईयां तो अपना ली है, लेकिन अपनी अच्छाइयों की रक्षा करने में अब वह असमर्थ सिद्ध हो रहे है। विकास की दौड़ में हमें अपने मूल्यों और न ही अपनी सांस्कृतिक विरासत को छोड़ना चाहिए। पंचायतों के माध्यम से इस कार्य को अंजाम देने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए। भारत सरकार की आदर्श ग्राम योजना इसको बेहतरीन अंजाम देने में सक्षम हो सकती है। अपितु ग्रामीण विकेंद्रीकरण और पंचायती राज संस्थाओं द्वारा भारतीय ग्रामीण संस्थागत परिदृश्य में एक बड़ा परिवर्तन आ रहा है। इस बात से सभी रूबरू है की ग्रामीण एवं राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं को चुनावों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाता है। इस प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के बेहतर अवसर स्थानीय स्वशासन में या विकेंद्रीकरण के संस्थानों में मिल सकते हैं। भारत में पंचायती राज में महिलाओं के लिए आरक्षण के कारण विश्व में स्थानीय स्वशासन के स्तर पर सबसे अधिक महिलाएं भारत में ही निर्वाचित होती हैं। यह भारत के लोकतंत्र की खूबसूरती है। विभिन्न सफल महिला नेतृत्वकर्ताओं पर हुए अध्ययन से यह सामने आया है कि महिलाओं के नेतृत्व में आगे आने से विकास कार्यों को अधिक निष्ठा एवं ईमानदारी से आगे ले जाने, आपसी मेलजोल से कार्य करने, जैसे सामाजिक सुधारों को प्राथमिकता देने में सफलता मिलती है।[7] साधारण परिवार की भी ग्रामीण महिलाओं का पंचायत से जुड़ाव बढ़ता है। इस तरह पंचायतों में महिला नेतृत्व की बढ़ती सफलता महिलाओं के सशक्तीकरण की दृष्टि से ही नहीं अपितु विकास कार्यों एवं समाज सुधार में प्रगति की दृष्टि से भी एक सराहनीय उपलब्धि है।

महिला सहभागिता का प्रभाव

महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव 1992 के बाद देखने को मिला, जब 72वें और 73वें संविधान संशोधन के जरिए पंचायतों और नगर निकायों में महिलाओं के लिए एक–तिहाई सीटें आरक्षित कर दी गई।[8] इस कानून से ग्रामीण महिलाओं को पहली बार महसूस हुआ कि सत्ता में वे भी भागीदार हो सकती

हैं। बिहार भारत का एक ऐसा राज्य बन गया है जहां पंचायती राज तथा शिक्षक नियुक्ति नियमावली, 2006 में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देकर महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसके साथ ही निरक्षरता दर सबसे अधिक, सघन घनी आबादी और कुल प्रजनन दर अधिकतम वाले गंभीर 'समस्याग्रस्त बिहार जैसे राज्य से भी अधिक महिलाएं चुनाव जीतती हैं, जोकि एक अनुपम उदाहरण है। इनमें से ज्यादातर महिलाओं ने पहली बार सार्वजनिक क्षेत्र में कदम रखा था। चूल्हे चौके तक ही सीमित दुनिया में रहने वाली इन महिलाओं के लिए नई भूमिका में खुद को साबित करना आसान नहीं था। फिर साक्षर न होने का अभिशाप, लेकिन जब अधिकार मिले और सिर पर जिम्मेदारियों का बोझ पड़ा तो उनको धीरे-धीरे काम करने का ढंग भी आ गया। पंचायतों में महिला आरक्षण ने जहां एक ओर महिलाओं की तकदीर बदलने का काम किया है, तो वहीं दूसरी ओर इसने पंचायतों की तस्वीर भी पूरी तरह से बदल कर रख दी है और राजनैतिक रूप से हाशिये पर पड़ी महिलाओं को समाज की मुख्यधारा में लाने का काम किया है।

पारिवारिक सामंजस्य की आवश्यकता

महिलाओं की राजनैतिक क्रियाशीलता हेतु पारिवारिक सदस्यों का सामंजस्य भी अति आवश्यक है। पति-पत्नी ही नहीं अपितु परिवार के अन्य सभी सदस्यों को एक-दूसरे की प्रतिभा, योग्यता, दक्षता और कौशल को पहचानते हुए आपसी सौहार्द की भावना से उनकी निहित शक्तियों के प्रकटीकरण एवं उपयोग के अवसर प्रदान करते हुए प्रत्येक स्तर पर उदार प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाकर यथासंभव उन्नति के पथ पर अग्रसर कराने का प्रयास करना चाहिए। अधिकारों के साथ-साथ उत्तरदायित्वों को भी वहन करना होगा। किसी होड़, प्रतिद्वंद्विता या नारेबाजी से नहीं, वैचारिक शक्ति का संबल लेकर सुनियोजित ढंग से सामाजिक परिवर्तन के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना होगा। फलतः महिला सशक्तिकरण के बहुआयाम महिलाओं के संपूर्ण व्यक्तित्त्व व सर्वांगीण विकास में एक मील का पत्थर साबित होगा, ऐसी अपेक्षाएं हैं।

निष्कर्ष

विभिन्न अध्ययनों से यह तो स्पष्ट है की पितृसत्तात्मक समाज, परिवार की आलोचनाओं के बाद भी महिलाओं की पंचायतों में भागेदारी 73वें 74वें संवेधानिक संशोधन के बाद बड़ी है और जहां महिला मुख्य भूमिका में रही है वहां पर सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिलते है कुछ महिला पंचायत प्रधानो ने अपने कामो के आधार पर देश में भी और विदेश में भी सम्मान पाया है। महिला प्रधान अपनी पंचायतों में अपने कार्य को सही तरीके से और समय पर पूर्ण करने में भी सफल रही है। साथ ही किसी भी त्रुटी, कमी या आलोचना की परवाह किये बिना अगर महिला जनप्रतिनिधि द्वारा विकास की प्रक्रिया को जरी रखा जाता है तो सही मायने में ग्रामीण विकास सुनिश्चित हो पायेगा। लेकिन जिन पंचायतो में जहां आज भी महिला प्रधान की जगह उनके पति या परिवार के कोई अन्य सदस्य निर्णायक भूमिका में रहते हैं वहां पर भ्रष्टाचार, काम में अनियमितता साफ देखने को मिलती है और ऐसी पंचायतो को

चिन्हित कर चुनी हुई महिला जनप्रतिनिधियों को जागरूक कर उनके कर्तव्य का बोध कराने की आवश्यकता है। जिससे की ग्रामीण क्षेत्र की सामाजिक उन्नति भी हो सके और इसके अतिरिक्त महिलाओं के मनोबल में वृद्धि, महिला शिक्षा, महिला स्वास्थ्य, महिला प्रतिष्ठा आदि में भी वृद्धि हो सके।

संदर्भ

1. पाण्डेय, प्रेम नारायण (2000) 'ग्रामीण विकास एवं संरचनात्मक परिवर्तन', रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं नई दिल्ली।
2. राजकुमार (2005) 'नारी के बदलते आयाम' अर्जुन पब्लिलशग हाउस अन्सारी रोड दरियांगज नई दिल्ली।
3. आलोक, चेतनादित्य (08 मार्च 2016) 'महिला सशक्तिकरण हमारे समाज का सहज स्वरूप' अंक केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली।
4. महीपाल (2017) 'पंचायत में महिलाएं राष्ट्रीय पुस्तक न्यास' नई दिल्ली।
5. शुक्ल, संध्या (08 मार्च 2018) 'प्रगति पथ पर अग्रसर नारी अंक,' केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली।
6. दृष्टि द विजन (2020) 'ग्रामीण विकास में महिला जनप्रतिनिधि'
7. https://www.jansatta.com/chopal/strong-women-sarpanch/1880168/
8. https://feminisminindia.com/2022/11/15/sarpanch-pati-are-women-mere-faces-for-elections/
9. https://www.drishtiias.com/hindi/model-essays/women-representative-in-rural-development

Notes

1. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1917443
2. https://presidentofindia.nic.in/speeches-detail.htm?1050
3. https://indiaspendhindi.com/bihar/after-50-reservation-women-panchayat-heads-in-bihar-are-restricted-to-just-papers-808124
4. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4_%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82_%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%B7%E0%A4%B0%E0%A4%A4%E0%A4%BE
5. https://prsindia.org/billtrack/the-constitution-110th-amendment-bill-2009
6. https://theruralindia.in/top-10-women-sarpanch-in-india.html
7. https://www.jaagore.com/index.php/articles/power-of-49/5-women-sarpanch-leaders-showing-india-the-way-forward
8. Madhu .*, in Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education | Multidisciplinary Academic Research

ग्रामीण विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में साक्षरता का योगदान

प्रियंका राय
शोधार्थिनी, समाजशास्त्र विभाग

भारत गाँवों का देश है, जो सदियों से अनवरत चला आ रहा है। वैदिक अथवा प्राचीन काल से गाँव, कृषि एवं पशुपालन दो प्रमुख व्यवसायों पर आधारित है। ग्रामीण सभ्यता एवं संस्कृति का ही विस्तार सुसभ्य एवं आधारभूत संरचना माना जाता है। लगभग एक तिहाई आबादी गांवों में निवास करती है। गाँव का जीवन संसाधनों के अभाव में बड़ा दुर्गम हो जाता है क्योंकि लगभग आधे गाँव बड़े दुर्गम स्थानों पर बसे हुए हैं। जहां पूरी तरह संसाधनों का अभाव है। सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन इन गाँवों की विशेषता है। लम्बे समय तक ये गाँव अलग-थलग एवं सर्वथा उपेक्षित रहे हैं। जब प्राचीन काल में राजाओं का शासन था, तब उनके द्वारा अनेक प्रकार के व्यवसाय अथवा रोजगार के साधन मुहैया कराये जाते थे जिससे गाँव की प्रजा अपना जीवन यापन आसानी से व्यतीत करती थी। अतः गाँव आत्मनिर्भर हुआ करते थे। गाँव के लोग सादगी, विनम्रता, सहनशीलता, परोपकारिता, उदारता, सौहार्द, शिष्टाचार, भाईचारा, अपनापन एवं सामन्जस्य आदि गुणों के आधार पर पूरी जीवन शैली आधारित थी। प्राचीन ग्रन्थों के अनुशीलन से गाँव के लोगों की खुशहाली हेतु राजाओं द्वारा किये गये अनेक कार्यों की सम्यक जानकारी मिलती है। उस कालावधि में हमारा देश का भी खुशहाल था। विदेशियों से यह खुशहाली एवं सम्पन्नता नहीं देखी गयी और वे व्यापार आदि के बहाने आ करके बस गये और धीरे-धीरे अधिकार कर लिये। जिसका कारण था हमारी सहनशीलता एवं सज्जनता। जिससे विदेशी शासक बन बैठे। तदुपरान्त धीरे-धीरे विकास के नाम पर हमारा शोषण होने लगा और सारी व्यवस्था ध्वस्त हो गयी। परिणामस्वरूप अशिक्षा, बेरोजगारी एवं गरीबी हाथ लगी।

परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इससे मुक्ति पाने के लिए अनवरत हमारी सरकारें प्रयत्नशील है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी का ध्यान सर्वाधिक गाँवों के विकास पर रहा। लोगों को शिक्षित एवं जागरूक कर गाँवों की सुदृढ़ता एवं आत्मनिर्भरता पर जोर दिया। प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर अब तक गाँवों के विकास पर अधिक ध्यान रहा। सभी विद्वानों का मानना है कि यदि गाँव विकसित होगा तभी हमारा राष्ट्र विकसित होगा। निःसंदेह स्वाधीनता के बाद किये गये आर्थिक विकास का परिणाम सकारात्मक रहा। कृषि उपज के साथ-साथ अनेक तरह की हमने आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। बड़े-बड़े उद्योग, कल-कारखानों का विकास एवं विस्तार हुआ। बिजली, पानी, सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात, दूरसंचार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता हासिल की है।

** First Author, **Corresponding Author, ***Co-Author*

विकास एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जो बहुआयामी अवधारणा है। जिसमें अधिक वृद्धि एवं प्रगति होती है। संक्षेप में विकास का आशय देश के शैक्षणिक, आर्थिक, जैविक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन सुधारने से है। ऐसी स्थिति में देश में व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, दहेज एवं महिला शोषण और जातिवाद को नजरअंदाज कर विकास का डंका बजाना दिन के उजाले में रोशनी के लिए दीपक जलाना ही कहा जायेगा। यह तथ्य निर्विवाद और सर्वमान्य सत्य है कि नियोजित अर्थव्यवस्था में देश को विकसित करने और समस्याओं से राष्ट्र को मुक्ति दिलाने के लिए किये गये प्रयासों से अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी। गंभीरतापूर्वक विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विकास की गति को कमजोर करने में समझदारी, अज्ञानता एवं जागरूकता का अभाव सबसे बड़ा कारण है। अत: इन समस्याओं का पूर्णत: निदान तो शिक्षा के ही माध्यम से सम्भव है। शिक्षा, विकास का आवश्यक एवं सहयोगी साधन नहीं है बल्कि अपरिहार्य अंग है। जिस प्रकार मानव की तीन मूलभूत आवश्यकताएं मानी गयी हैं रोटी, कपड़ा और मकान उसी तरह शिक्षा का महत्व वर्तमान में बढ़ता जा रहा है। बिना शिक्षा के अब ये तीनों मूलभूत आवश्यकताएं अच्छे ढंग से नहीं प्राप्त हो सकती।

महान दार्शनिक अरस्तू ने शिक्षा की महत्ता को स्वीकारते हुए कहा कि "किसी भी देश का भविष्य उसके युवकों की शिक्षा पर निर्भर करता है।"

जान स्टुअर्ट मिल के मतानुसार, "प्रकृति की पूर्णता तक पहुंचने के प्रयोजन से जो कुछ भी हम करते हैं अथवा समाज के अन्य लोग करते हैं, वह शिक्षा से सम्बद्ध होता है।"

आगस्ट काम्ट के अनुसार, "प्रत्येक व्यक्ति में जीवन की समग्रता का यथेष्ट विकास करना ही शिक्षा का उद्देश्य है।"

शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार, "शिक्षा तो सदैव एक महत्वपूर्ण विषय रहा है, परन्तु फिर भी इसका महत्व मानव इतिहास में कभी इतना नहीं रहा, जितना कि यह आधुनिक समय में है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर आश्रित संसार में शिक्षा ही ऐसा तत्व है, जो लोगों की समृद्धि, कल्याण तथा सुरक्षा के स्तर का निर्धारण करता है।" इसी तरह महात्मा गांधी ने भी कहा कि, "शिक्षा, बुद्धि के विकास तथा समाज के पुनर्गठन का आधारभूत साधन है।"

महान चिंतकों के विचारों का अध्ययन एवं विश्लेषण करने के पश्चात यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि परिवर्तन विकास का जनक है और शिक्षा परितर्वन की जननी है। शिक्षा को विकास से उसी प्रकार अलग नहीं किया जा सकता, जिस तरह से पंख को पंक्षी से तथा मानव को समाज से। शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से किसी भी संदेश को जन सामान्य तक पहुंचाया जा सकता है। शिक्षा के माध्यम से ही सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन लाये जा सकते हैं।

भारत के गांव कृषि पर आधारित है और अब कृषि पूरी तरह नये-नये आविष्कारों के कारण तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी पर आधारित हो गयी है। तभी अच्छे किस्म के बीज, खाद एवं रासायनिक दवाइयों का प्रयोग कर अच्छे उत्पादन कर सकते हैं। परन्तु किसानों की प्रमुख समस्या है-अशिक्षा। इसके आगे सब अधूरा रह

जाता है। अत: ग्रामीण संरचना में परिवर्तन लाकर ही ग्रामीण अथवा राष्ट्रीय विकास को आगे बढ़ाया जा सकता हैं परन्तु इसके लिए शिक्षा की ही महत्वपूर्ण भूमिका होगी तभी श्रमिकों एवं उद्यमियों के अन्दर चेतना पैदा हो सकती है। जिससे ग्रामीणों की प्रमुख समस्या निर्धनता, निरक्षरता और बेरोजगारी से निजात मिल सकती है। आजादी के बाद से फिलहाल शिक्षा एवं जागरूकता पर विशेष योजनाओं के माध्यम से अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जैसे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान, ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम, बाल पोषाहार कार्यक्रम, स्कूलों में दाखिला वृद्धि योजना तथा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार आदि। प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तक बजट में काफी बढ़ोत्तरी की गयी है।

सामाजिक परिवर्तन हेतु साक्षरता से शिक्षा और शिक्षा से विकास की गति में वृद्धि सम्भव है क्योंकि शिक्षा एवं साक्षरता के माध्यम से ही ग्रामीण अथवा सामाजिक समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है। जैसे सामाजिक कुप्राथाओं, अंधविश्वासों, बेरोजगारी, गरीबी, भ्रष्टाचार, जनसंख्या अनियन्त्रण आदि पर सफलता मिल सकती है। इसीलिए साक्षरता पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस अभियान में गति लाने में युनेस्कों की ओर से 1965 में प्रतिवर्ष 8 सितम्बर को 'अंतर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस' मनाने का निर्णय लिया गया। भारत में भी 5 मई 1986 से साक्षरता के लिए व्यापक राष्ट्रीय अभियान चलाया गया। इस अभियान में 15 से 35 आयु वर्ष के 8 करोड़ लोगों को 1995 तक शिक्षित बनाने का लक्ष्य रखा गया और 5 मई 1988 को राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का गठन किया गया। दिसम्बर 2002 को संविधान में 86वां संशोधन करके अनुच्छेद 21 जोड़ करके शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया। इसके साथ ही भारत विश्व के उन 135 देशों में शामिल हो गया जिसने अपने संविधान में शिक्षा को अनिवार्य बना दिया है। सरकारी एवं सामाजिक प्रयासों की वजह से देश में साक्षरता दर में लगातार वृद्धि हो रही है। साक्षरता अभियान का लगभग दो दशक पूरा होते समय 1951 का 18.33 प्रतिशत साक्षरता दर बढ़कर 2011 में 74 प्रतिशत हो गया। यह ताजा तथ्य को भी दर्शाता है कि देश की लगभग तीन–चौथाई आबादी साक्षर हो गयी है।

वर्तमान समय में साक्षरता को मानव जीवन के सर्वांगीण व्यापक आधार से जोड़ा जा रहा है। साक्षरता के प्रमुख उद्देश्यों में सामाजिक जागरूकता, राष्ट्रीय एकता एवं विखण्डता, पर्यावरण संरक्षण, परिवार नियोजन तथा व्यावसायिक कौशल का समावेश किया गया है। अत: स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि साक्षरता के बिना न तो ग्रामीण विकास को गति दी जा सकती है न तो सामाजिक परिवर्तन ही सम्भव है।

शिक्षित समाज ही, जग में प्रकाश फैलाएगा।
शिक्षा का मार्ग ही समाज को सभ्य बनाएगा।।

संदर्भ

1. भारत 2011, पृष्ठ 263
2. गुप्त विश्वनाथ, 'ग्रामीण विकास में साक्षरता का महत्व'
3. कुरूक्षेत्र, मई 1990

4. योजना एवं विज्ञान प्रगति
5. जैन हुकुमचन्द्र, 'ग्रामीण विकास का आधारः प्रौढ़ शिक्षा एवं ग्रामोद्योग'
6. डॉ० त्रिपाठी सत्येन्द्र, 'विकास का समाजशास्त्र'

हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार में काशी की साहित्यिक संस्थाओं व नाट्य परिषदों की भूमिका

डॉ० मीनाक्षी मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी
आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी

हिन्दी भाषा व साहित्य के संवर्धन व विकास में काशी का अग्रणी स्थान रहा है। काशी न केवल नगर है बल्कि भारत की सांस्कृतिक अस्मिता की राजधानी है। भारतीय संस्कृति, साहित्य - साधना , परम्परा व विद्धता का पल्लवन व पोषण करने का गौरव भी इसी नगरी को प्राप्त है। हिन्दी साहित्य के एक से बढ़कर एक उद्भट विद्वानों को जन्म देने वाली यही नगरी है - कबीर, रैदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, श्याम सुंदर दास, प्रेमचन्द, अन्नपूर्णानंद, शांतिप्रिय द्विवेदी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामचन्द्र वर्मा, शिवप्रसाद मिश्र 'रूद्र' काशिकेय, आदि तो दूसरी ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व और साहित्य का निर्माण काशी ने ही किया। निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी की श्रीवृद्धि करने में या जो स्थान आज उसे प्राप्त है उसका श्रेय काशी नगर को है।

हिन्दी भाषा की उन्नति, प्रगति व संवर्धन के लिए काशी में अनेक साहित्यिक संस्थाओं व नाट्य परिषदों का गठन किया गया। जिनमे- काशी नागरी प्रचारिणी सभा, लाला भगवानदीन साहित्य महाविद्यालय, दीन-सुकवि मण्डल, भोजपुरी संसद, शनिवार गोष्ठी और रंगमंच के विकास के लिए नाट्य परिषदों की स्थापना की गयी है। मुख्य नाट्य संस्थाओ में-रत्नाकर रसिक मण्डल, शिवराम नाट्य परिषद, विक्रम परिषद, अभिनय कला मंदिर, नटराज, शारदा कला परिषद, श्री नाट्यम, आदि।

हिन्दी सेवी संस्थाओ में अग्रगण्य है - काशी नागरी प्रचारिणी सभा। इस संस्था ने हिन्दी भाषा एवं नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इस सम्बन्ध में डॉ. श्याम वर्मा ने लिखा है कि - "क्वींस कॉलेज की पाँचवी कक्षा के विद्यार्थियों की एक वाद-विवाद समिति थी जिसका अधिवेशन हर शनिवार को हुआ करता था। 9 जुलाई सन् 1883 ई० को इसी समिति के एक अधिवेशन में आर्य समाज के एक उपदेशक शंकरलाल जी आये और उन्होंने एक व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उत्साहित होकर विद्यार्थियों ने 16 जुलाई को फिर सभा की। इसी सभा में यह निश्चय हुआ कि नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की जाये।"[1] इस निश्चय के अनुसार जिस संस्थापकत्रयी ने सभा की स्थापना की, उसमे बाबू श्यामसुन्दर दास, रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह मुख्य थें। इनके प्रयत्नों से 16 जुलाई 1893 ई० में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। हिन्दी भाषा की उन्नति और विकास के लिए जितना प्रयत्न नागरी प्रचारिणी सभा ने किया उतना किसी अन्य संस्था ने नहीं किया। सभा के संस्थापकों के अतिरिक्त

इसके संचालन में ठाकुर गदाधर सिंह, डॉ छन्नूलाल, डॉ केशवदेव शास्त्री की भी महत्वपूर्ण भूमिका है यहाँ तक कि ठाकुर गदाधर सिंह ने सन् 1894 ई० में अपना 'आर्य भाषा पुस्तकालय' सभा को सौप दिया। उन्होंने सभा की स्थापना से नौ वर्ष पूर्व सन् 1884 ई० में इस पुस्तकालय की स्थापना की थी।[2] आज यह एक वृहद् पुस्तकालय के रूप में जाना जाता है। नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना का उद्देश्य नागरी अक्षरों का प्रचार, हिन्दी साहित्य की समृद्धि और प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की खोज कर उनका प्रकाशन कराना रहा है। हस्तलिखित ग्रंथो की खोज के लिए सभा ने अभियान चलाया जिसमें बंगाल की 'ऐशियाटिक सोसाइटी' का भी सहयोग रहा है। हिन्दी के लेखन और प्रकाशन दोनों का कार्य वृहद् रूप में किया गया जिनमे मुख्य रूप से हिन्दी शब्द सागर, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली, कचहरी हिन्दी कोश, हिन्दी व्याकरण, राजकीय शब्दकोश, विभिन्न पुस्तकमाला, अभिनन्दन ग्रन्थ, प्राचीन अनुप्लब्द्ध पुस्तके – पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो, बीसलदेव रासो एवं हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास कई खण्डो में यहाँ से प्रकाशित हुआ तथा अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों का संपादन इसी सभा के द्वारा हुआ जिनमें कुछ का नाम गौर तलब है – हकायके हिन्दी, नाथसिद्धो की बानियाँ, रास और रासान्वयी काव्य, सन्देश रासक, भारतेन्दु ग्रंथावली, छिताईवार्ता, आदि।

इसी संस्था के द्वारा प्रकाशित पहली पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी' (1896) हिन्दी आन्दोलन की पीठिका के रूप में स्थापित हुई। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी और पाश्चात्य परम्परा के अध्ययनों द्वारा आरंभ होने वाली ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक परीक्षण वाली यह पहली हिन्दी पत्रिका थी। अन्वेषण एवं अनुसंधानपरक आलोचना का विकास इसी से होता है।[3] नागरी प्रचारिणी (शोध पत्रिका) के रूप में अधतन इसका प्रकाशन हो रहा है। इस प्रकार हम देख सकते है हिन्दी साहित्य के विकास व संवर्ध्दन में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का विशेष योगदान रहा है। हिन्दी सेवी साहित्यिक संस्थाओ में नागरी प्रचारिणी सभा के बाद 'हिन्दी साहित्य सम्मलेन' प्रयाग का नाम आता है। सन् 1910 ई. में सभा की प्रबंध समिति द्वारा देश भर के साहित्यकारों का एक सम्मलेन बुलाने का प्रस्ताव रखा गया। महामना मदन मोहन मालवीय जी की अध्यक्षता में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का प्रथम अधिवेशन वैशाख कृष्ण 7 संवत् 1967 तदनुसार 1 मई 1910 ई को काशी में सम्पन्न हुआ। तब से अब तक राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार, भाषा एवं साहित्य के संवर्ध्दन एवं उन्नयन के क्षेत्र में अनवरत विकास हुआ है। इस संस्था को पल्लवित, पुष्पित एवं विकसित करने में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी देशरत्न बाबू राजेन्द्र प्रसाद, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन प्रभृति राष्ट्रनायकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।"[4] इस सम्मलेन द्वारा विभिन्न परीक्षाओ का आयोजन किया जाता है, जिससे देश एवं विदेशो में हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को बढ़ावा मिला है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन (हिन्दी विश्वविद्यालय) द्वारा प्रथमा, मध्यमा (विशारद) उत्तमा (साहित्यरत्न) उपवैद्य, वैद्य विशारद, आयुर्वेदरत्न, शिक्षा विशारद, पत्रकारिता तथा विधि विशारद, आदि परिक्षाए संचालित की जाती है।[5] निश्चय ही हिन्दी भाषा के विकास में इस संस्था की महनीय भूमिका है।

काशी की हिन्दी साहित्यिक संस्थाओ में लाला भगवान दीन साहित्य महाविद्यालय का भी विशेष महत्व है स्वयं लाला भगवान दीन साहित्य शास्त्र के अद्वितीय विद्वान थे साथ ही उच्चकोटि के शिक्षक भी। श्री रामनाथ सुमन जी ने लिखा है – 'काव्यमर्मज्ञ आचार्य एवं शिक्षक वह एक नम्बर के थे। जीवन में बहुत

आचार्यो से मिला हूँ ---- पर पढ़ाने के रस में अपने को खोकर पढ़ाने की जो तल्लीनता उनमें देखी, वह मुझे कहीं और दिखाई न पड़ी। वह पढ़ाते क्या थे, काव्य के मर्म में प्रवेश करते थे और वहाँ से सम्पूर्ण रस लेकर विद्यार्थी में उड़ेल देते थे। काव्य के सम्पूर्ण अंग-उपांगो का ऐसा विश्लेषण करते थे कि एक-एक भाव चित्र की भांति स्पष्ट हो जाता था। केशव और बिहारी उनके परम प्रिय कवियों में थे'।[6] भगवानदीन जी ने लक्ष्मी नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन किया। यह पत्रिका साहित्य का मानदण्ड ऊँचा रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भगवानदीन जी ने साहित्य सेवा के साथ ही साहित्य जगत को एक से एक उद्भट विद्वान प्रदान किये जो उनकी शिष्य परम्परा के शिरोमणि थे। या कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के उज्ज्वल व दैदीप्यमान नक्षत्र थे जिनमे मुख्य रूप से - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, मोहन वल्लभ पंत, रसराज नागर शिवप्रसाद मिश्र 'रूद्र' काशिकेय, कांतानाथ पाण्डेय राजहंस चोंच, कृष्णदेव प्रसाद गौण 'बेढब बनारसी', वेणीराम त्रिपाठी, आदि। इस प्रकार देख सकते है कि इस महाविद्यालय ने विद्यार्थियों को न केवल साहित्य की शिक्षा दी बल्कि हिन्दी साहित्य के उच्च पद पर स्थापित भी किया। हिन्दी साहित्य के विकास में लाला भगवानदीन महाविद्यालय का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इसी क्रम में सन् 1930 में लाला भगवानदीन की स्मृति में दीन-सुकवि-मण्डल की स्थापना हुई। इसके अध्यक्ष पंडित जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर जी थे। यह सुकवि मण्डल उस समय की प्रसिद्द कवि संगोष्ठी हुआ करती थी जिसमे काशी के गण्यमान्य साहित्यकार सम्मिलित होते थे। जिसमें नित्य नई रचनाओं का अस्वादन होता था। जयशंकर प्रसाद जैसे कवि इस मण्डल की प्रत्येक गोष्ठी में सम्मिलित होकर अपनी कविता का रसास्वादन कराने में सुख का अनुभव करते थे।

काशी की साहित्यिक गोष्ठियों में 'शनिवार गोष्ठी' की भी महत्वपूर्ण भूमिका है इसकी स्थापना सन् 1957-58 के लगभग श्री माधव प्रसाद मिश्र 'एम भारतीय' ने किया था। यह आयोजन मुख्यत: शनिवार के दिन हुआ करता था। इसलिए इसका नाम शनिवार गोष्ठी रखा गया। इसके अंतर्गत हास्य गोष्ठियों का आयोजन एवं 'उलूक' तथा 'पहली अप्रैल' वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन सन् 1964 से माधव जी ने प्रारंभ किया आगे इस परम्परा को जीवित रखने का बीड़ा उठाया श्री धर्मशील चतुर्वेदी जी ने द्य इस पत्रिका में अधिकांश साहित्यकार लिखा करते थे जिनमे भैया जी बनारसी, विवेकी राय, करुणापति त्रिपाठी, कान्ता नाथ पाण्डेय 'राजहंस चोंच' बेधड़क बनारसी, युगेश्वर, चकाचक, रुद्र काशिकेय, धर्मशील चतुर्वेदी, आदि। 'उलूक' पत्रिका में प्रकाशित रुद्र काशिकेय की हास्य व्यंग्य रचना के कुछ अंश अवलोकनीय है -

हथेली पै रखसिर तोहै दान देबै
दुआरी पैतोहरे गुरु जान देबैद्य
जो काम न अइलऽ तूं हमरे तऽ हमहूँ
मिली जब्ब भी मौका तबै तान देबै।[7]

साहित्यिक संस्थाओ में भोजपुरी संसद का भी विशेष महत्त्व रहा है। इसकी स्थापना ईश्वरचंद सिन्हा द्वारा किया गया। यहाँ से तेगअली की महत्वपूर्ण पुस्तक 'तेगअली और काशिका' प्रकाशित हुई। यह पहली पुस्तक है जो बनारसी बोली (काशिका) में लिखी गयी।

हिन्दी भाषा के विकास एवं समृद्धि के लिए साहित्यिक संस्थाओ के साथ अनेक नाट्य संस्थाओ की भी स्थापना की गयी जिसने हिन्दी रंगमंच के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन नाट्य संस्थाओ में रत्नाकर–रसिक–मण्डल अग्रणी है इसकी स्थापना सन् 1933 में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, पं. सावल जी नागर, कृष्ण देव प्रसाद गौड़ 'बेढ़ब बनारसी' कृष्णशंकर शुक्ल, शिवप्रसाद मिश्र 'रूद्र', बलदेव प्रसाद मिश्र, लक्ष्मीकांत झा, रामानंद मिश्र, आदि के सहयोग से हुआ था। इस संस्था द्वारा जयशंकर प्रसाद जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटक का सर्वप्रथम मंचन हुआ प्रसाद के नाटक को अनभिनेय कहकर समीक्षक लोग उसे त्रुटिपूर्ण बताते थे। इसलिए रत्नाकर–रसिक–मण्डल ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक के अभिनय का बीड़ा उठाया और इसका सफलतापूर्वक मंचन 14 दिसंबर 1933, गुरुवार और 15 दिसंबर 1933, शुक्रवार को 'न्यू सिनेमा हाल' (रामेश्वर थियेटर हाल) में अभिनीत हुआ। रामेश्वर थियेटर काशी के बुलानाला मुहल्ले में स्थित था। इसमें काशी के अधिकांश सिद्धहस्त अभिनेताओं, एवं नाट्य मंडलियो ने हिस्सा लिया। इनका पात्र–नियोजन निम्नानुसार था जिनमे कुछ नाम अवलोकनीय है–

चन्द्रगुप्तः	मंगलीप्रसाद अवस्थी	–	नागरी नाटक मंडली
चाणक्यः	केशवराम टंडन	–	भारतेन्दु नाटक मंडली
आंभीकः	शिवप्रसाद मिश्र रूद्र	–	रत्नाकर–रसिक–मण्डल
सिकन्दरः	गणेशदत्त आचार्य	–	हिन्दी नाट्य समिति

इस नाटक के अभिनय के लिए स्वयं प्रसाद जी ने संक्षिप्त नाट्य प्रति तैयार की थी। अभिनय की तैयारियों के समय वे स्वयं प्रेक्षक के रूप में उपस्थित रहते थे इस प्रकार देख सकते है कि नाटको के कुशल मंचन व विकास में इस संस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

काशी में महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने अखिल भारतीय विक्रम परिषद् की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य हिन्दी नाटकों का प्रस्तुतीकरण था। इस परिषद द्वारा विक्रमादित्य, उत्तर कालिदास, दंतमुद्रा, शबरी, पूर्व कालिदास, वाल्मीकि, आदि अनेक नाटकों का मंचन किया गया।

इसी क्रम में देखे तो सन 1950 में 'अभिनय कला मंदिर' की स्थापना श्री कुंवर जी अग्रवाल द्वारा की गयी द्य इस संस्था की यह विशेषता रही कि इसने एकांकियो को ही प्रस्तुत किया। जिसमें मुख्य रूप से 'लक्ष्मी का स्वागत', 'वतन के लिए', 'औरंगजेब की आखिरी रात', 'बीमार', 'वतन के लिए', 'पृथ्वीराज की आँखे', 'सड़क पर दो कलाकार', 'अभिनेता', 'दो बहरे प्रोफेसर', 'पानी आया', आदि एकांकी इस संस्था द्वारा मंचित हुए।[8]

हिन्दी नाटकों के विकास व मंचन के लिए सन 1954 में काशी में 'नटराज' संस्था की स्थापना श्री सर्वानंद, केशवराम टंडन, कृष्णदेव प्रसाद गौड के प्रयत्न से हुआ इस संस्था द्वारा अनेक महत्वपूर्ण नाटक मंचित हुए जिनमें 'कोणार्क' और 'कौमुदी महोत्सव' नाटक का विशेष महत्व रहा है इन संस्थाओ के अलावा 'शिवराम नाट्य परिषद' 'शारदा कला परिषद' 'श्री नाट्यम' जैसी नाट्य संस्थाओं

ने नटराज नगर (काशी) की नाट्य परम्परा को विकसित करने संवर्द्धित करने, व अभिनीत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

अतः उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि काशी की साहित्यिक संस्थाओं व नाट्य परिषदों नें हिंदी साहित्य के उत्थान व प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है इनमे से अनेक संस्थाएं व नाट्य परिषदों में आज भी पुस्तकों पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है तथा नाटक अभिमंचित हो रहे हैं जिससे हिंदी साहित्य का निरंतर उन्नयन व प्रसार हो रहा है।

संदर्भ

1. आधुनिक गद्य शैली का विकास - डॉ. श्याम वर्मा, पृ. 164।
2. हिन्दी साहित्य कोश - प्रधान सम्पादक श्री धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 115।
3. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (त्रैमासिक), जून 2007, अंक 1, पृ. 109।
4. सम्मेलन - दैननंदिनी, सन 1995, पृ. 6।
5. वही से , पृ. 13।
6. त्रिपथगा, लाला जी और पाठक जी - रामनाथ सुमन, सन 1956, पृ. 131।
7. सन्मार्ग साप्ताहिक, विशेषांक, सितम्बर 1970, पृ. 3।
8. हिन्दी रंगमंच का इतिहास - डॉ. चंदूलाल दुबे, पृ. 218।

दिनकर साहित्य एक संक्षिप्त परिचय

*__*डॉ० रानी रूपमती*__*
पी०एच०डी०, (हिन्दी विभाग)
मगध विश्वविद्यालय बोधगया।
*__**प्रोफेसर मनोज कुमार*__*

राष्ट्रकवि के रूप में प्रतिष्ठित रामधारी दिनकर का जन्म 1908 ई. में मुंगेर जिला अंतर्गत बेगूसराय के सिमरिया गांव, बिहार राज्य में हुआ। मोकामा उच्च विद्यालय से माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद उन्होंने पटना कॉलेज से इतिहास में स्नातक किया। उन्होंने सीतामढ़ी में सब रजिस्टार पद पर कार्य किया एवं राज्यसभा संसद सदस्य चुने गए। भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति पद को भी उन्होंने सुशोभित किया। भारत सरकार के हिंदी सलाहकार के रूप में वे अपनी अहम भूमिका निभाई। रचना और संवेदना के धनी रामधारी सिंह दिनकर ने अपने कार्य क्षेत्र में अन्य कई पदों को भी अपनी योग्यता से अलंकृत किया। वे लंगत सिंह कॉलेज मुजफ्फरपुर के हिंदी विभागाध्यक्ष भी बनाए गए।

दिनकर छायावादोत्तर युग के प्रमुख कवि हैं। 'हिंदी साहित्य कोश' भाग 2 के अनुसार –"आरंभ में 'दिनकर' ने छायावादी रंग में कुछ कविताएं लिखी, पर जैसे-जैसे वे अपने स्वर से स्वयं परिचित होते गए अपनी काव्य अनुभूति पर ही अपनी कविता को आधारित करने का आत्म-विश्वास उनमें बढ़ता गया।"[1] द्विवेदीयुग और छायावादी काव्य पद्धतियों के संधि स्थल पर अवतरित होने वाले दिनकर का मानना है कि –"पंथ के सपने हमारे हाथ में आकर उतने वायवीय नहीं रहे, जितने कि वे छायावादकाल में थे, किंतु द्विवेदी-युगीन अभिव्यक्ति की शुभ्रता हम लोगों के पास आते-जाते कुछ रंगीन अवश्य हो गयी। अभिव्यक्ति की स्वच्छंदता की नयी विरासत हमें आप-से-आप प्राप्त हो गयी।"[2]

महान व्यक्तित्व के धनी दिनकर ने हिंदी साहित्य को अनेक काव्य कृतियों से अलंकृत किया है। उन्होंने प्रबंध, मुक्तक, गीत, प्रगीत, काव्यनाटक इत्यादि अनेक काव्यशैलियों में सफलतापूर्वक उत्कृष्ट रचनाएं प्रस्तुत की है। जैसे- रेणुका, रसवंती, द्वंदगीत, सामधेनी, बापू, धूप, कुरुक्षेत्र रश्मिरथी, नीलकुसुम, नए सुभाषित, सीपी और शंख, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा, कोयल और कवित्व, आत्मा की आंखें, इतिहास के आंसू, नीम के पत्ते, हारे को हरिनाम, दिल्ली, प्रणभंग, चक्रवाल धूपछाँह आदि। उनके प्रथम तीन काव्य संग्रह रेणुका, हुंकार और रसवंती आरंभिक काल की रचनाएं हैं जिससे दिनकर का आत्ममंथन का साक्षात्कार होता है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार रेणुका में अतीत के गौरव के प्रति कवि का सहज आदर और आकर्षण परिलक्षित होता है पर साथ ही वर्तमान परिवेश की नीरसता से त्रस्त मन की वेदना का परिचय भी मिलता है। हुंकार में कवि अतीत के गौरव-गान की अपेक्षा वर्तमान दैन्य के प्रति आक्रोश प्रदर्शन की ओर अधिक उन्मुख जान पड़ता

है। 'रसवंती' में कवि की सौंदर्यान्वेषी वृत्ति काव्यमयी हो जाती है पर यह अंधेरे में ध्येय सौंदर्य का अन्वेषण नहीं, उजाले में ज्ञेय सौंदर्य का आराधन है।"[3] सामधेनी में सामाजिक चेतना, स्वदेश प्रेम और विश्व वेदना का अनुभव प्राप्त होता है।

इन मुक्तक काव्य संग्रहों के अतिरिक्त जब हम दिनकर की प्रबंध काव्यों पर दृष्टिपात करते हैं तो हम पाते हैं कि दिनकर की कविता एक नए भाव शिखर पर पदार्पण करती है। दिनकर की प्रबंध रचनाओं में कथानक - शिल्प, चरित्र- नियोजन, संवाद - निरूपण, काव्याभिव्यक्ति की मार्मिकता के साथ समकालीन बोध की प्रासंगिकता सदैव विद्वान रही है। रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार कुरुक्षेत्र में ना तो दर्शन है और न किसी ज्ञानी के प्रौढ़ मस्तिष्क का चमत्कार। यह तो अंततः, एक साधारण मनुष्य का शंकाकुल हृदय ही है, जो मस्तिष्क के स्तर पर चढ़कर बोल रहा है।"[4] रश्मिरथी खंडकाव्य में कर्ण के चरित्र के सभी पक्षों का सजीव चित्रण किया गया है। डॉ. नवीन कुमार के अनुसार कथानक की दृष्टि से रश्मिरथी खंडकाव्य ही सिद्ध होता है। घटनाएं अत्यल्प है। मुख्य घटनाओं में कर्ण को अंगदेश का दुर्योधन द्वारा राजा बनाना, परशुराम से युद्ध करना सीखना तथा अभिशापित होना, इंद्र को कवच-कुंडल दान देना, कुंती के प्रस्ताव को अस्वीकार करना तथा अर्जुन के अतिरिक्त सभी पांडवों को पकड़ने के बाद भी छोड़ देने का संकल्प लेना आदि ही प्रमुख है।"[5] उर्वशी में रामधारी सिंह दिनकर ने महाराज पुरुरवा और उर्वशी की प्रेमकथा वर्णित की है। मुक्तिबोध के अनुसार "वह एक ऐसा काव्य है, जिसमें प्राचीन जीवन के मनोहर वातावरण की कवि-प्रणीत कल्पना को बृहद् रूप देने का प्रयत्न किया गया है।"[6] उर्वशी में काव्य सौंदर्य की गरिमा के साथ दार्शनिक पक्ष अत्यंत सूक्ष्म एवं काव्यमय है। इसमें कवि ने काव्यमयी शैली के द्वारा दर्शन की गूढ़ रहस्य को सरस बना दिया है।

दिनकर की रचनाओं में भाव के साथ बुद्धि तत्व का समावेश भी है। यही कारण है कि उनकी साहित्यिक यात्रा परिष्कृत होती रही। आलोचना और निबंध के क्षेत्र में भी दिनकर को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। अर्धनारीश्वर, रेती के फूल, काव्य की भूमिका, वेणुवन, पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त तथा शुद्ध कविता की खोज आदि इनके आलोचनात्मक एवं निबंध हैं। अर्धनारीश्वर में रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं -"दया, माया सहिष्णुता और भीरुता ये स्त्रियोचित गुण कहे जाते हैं। किंतु क्या इन्हें अंगीकार करने से पुरुष के पौरुष में कोई दोष आने वाला है? दया, माया और सहिष्णुता ही नहीं, भीरुता का भी एक अच्छा पक्ष है जो मनुष्य को अनावश्यक विनाश से बचाता है। उसी प्रकार अध्यवसाय, साहस और शूरता का वरण करने से भी नारीत्व की मर्यादा नहीं घटती।"[7]

दिनकर की गद्य-कृतियों में सबसे प्रमुख है उनका विराट ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय'। इस ग्रंथ पर रामधारी सिंह दिनकर को साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारतीय इतिहास और संस्कृति के विभिन्न आयामों से दिनकर परिचित थे। उनके इसी परिचय का प्रतिफल है संस्कृति के चार अध्याय तथा हमारी सांस्कृतिक एकता। 'संस्कृति के चार अध्याय' में दिनकर ने मुख्य रूप से शोध और अनुसंधान के आधार पर मानव सभ्यता के इतिहास को चार भागों में बाँटकर अध्ययन किया है। रणेन्द्र के अनुसार "दिनकर जी अपनी इस पुस्तक में आर्य बनाम आर्येतर समुदाय, ब्राह्मण धर्म बनाम बौद्ध- जैन धर्म,

हिंदू धर्म बनाम इस्लाम तथा हिंदू बनाम ईसाईयत या यूरोप की टकराहटो को चार क्रांतियां मानते हैं और इन धार्मिक राजनीतिक टकराहटों के चार सोपानों को 'संस्कृति के चार अध्याय' नाम दे दिया गया है। स्पष्ट है कि वे सचेतन या अचेतन रूप में धर्म को संस्कृति का पर्याय मान रहे हैं जो कि निस्संदेह संकुचित दृष्टिकोण है, जो संस्कृति की बहुआयामिता को एक आयाम में ढ़ालने की चलने वाली बौद्धिक प्रक्रिया का चाहे-अनचाहे हिस्सा बन जाता है।"[8]

दिनकर के गद्य का एक बड़ा हिस्सा उनके भाषणों के रूप में भी प्राप्त होता है। डॉ. श्यामसुंदर घोष के अनुसार- "दिनकर के उपलब्ध भाषणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनके भाषणों में काफी कुछ विषयगत विविधता है। उनके अधिकांश भाषण साहित्य, शिक्षा, संस्कृति, इतिहास और भाषा विषयक हैं। इस प्रकार विषय के आधार पर भी उनके भाषणों की चार-पाँच कोटिया हो जाती है। व्यावसायिक लेकिन बहुत से भाषणों में विषयों का अंतरावलम्बन भी देखा जा सकता है।"[9]

इन ग्रंथों के अतिरिक्त रामधारी सिंह दिनकर के स्फुट एवं समीक्षात्मक विविध निबंध संग्रह है। दिनकर की रचनाओं में मुख्य रूप से दो शैलियों का समावेश है - प्रबंध शैली और मुक्तक शैली। रस और भाव की दृष्टि से दिनकर की रचनाएं अत्यंत समृद्ध है। 'द्वंदगीत' गीत में शांत रस और 'रसवंती' में श्रृंगार रस के सुंदर उदाहरण मिलते हैं। प्रतीकों के सहारे अपने भाव को व्यक्त करने में रामधारी सिंह दिनकर सफल हुए हैं। दिनकर की भाषा साहित्यिक खड़ी बोली है, जिसमें फारसी से प्रभावित साहित्यिक खड़ी बोली और विशुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली का समावेश है।

निष्कर्ष कहा जा सकता है कि रामधारी सिंह दिनकर प्रेम, राष्ट्रीयता, संस्कृति, अध्यात्म, दर्शन और क्रांति के कवि एवं रचनाकार है। वे अतीत से वर्तमान तथा भविष्य की प्रेरणा ग्रहण करते हैं। दिनकर में इतिहास और सांस्कृतिक परंपरा की गहरी चेतना है और समाज, राजनीति, दर्शन का वैश्विक परिप्रेक्ष्य-बोध है जो उनके साहित्य में अनेक स्तरों पर व्यक्त होता है। काव्य चिंतन, संस्कृति चिंतन, समाज चिंतन, भाषा चिंतन आदि की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में हुई है। उनकी रचनाओं में विषय वस्तु, शैली, विधा और गद्यरूप की दृष्टि से पर्याप्त वैविध्य देखने को मिलता है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य कोश, भाग 2, संपादक धीरेंद्र वर्मा, (प्रधान) प्रकाशन-ज्ञानमंडल, वाराणसी, संस्करण - संवत्- 2020, पृष्ठ संख्या - 515
2. वही, पृष्ठ संख्या - 515
3. पृष्ठ संख्या - 515
4. कुरुक्षेत्र, रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल प्रकाशन, संस्करण - 2008, पृष्ठ संख्या - 4
5. दिनकर का प्रबंध - शिल्प, डॉ. नवीन कुमार, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण - 2017, पृष्ठ संख्या 37

6. उर्वशी दर्शन और काव्य, गजानन माधव मुक्तिबोध, परिषद साक्ष्य, दिसंबर - 2008, पृष्ठ संख्या-68
7. अर्धनारीश्वर, रामधारी सिंह दिनकर
8. संस्कृति के चार अध्याय : एक विश्लेषण, रणेन्द्र, परिषद साक्ष्य, दिसंबर - 2008, पृष्ठ संख्या - 212
9. दिनकर के गद्य का एक और रूप - उनके भाषण, डॉ. श्यामसुंदर घोष परिषद साक्ष्य, दिसंबर 2008, पृष्ठ संख्या- 187

खोजी पत्रकारिता

डॉ. ऋतु वार्ष्णेय गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

खोजपूर्ण सूचनाओं का विकास 19वीं शताब्दी में हुआ है। इसका उद्देश्य शीघ्र सही सूचना देना था। युद्ध काल से ही खोजी पत्रकारिता निरंतर नए आयाम ग्रहण करती गई है। भारत में जीप खरित घोटाला, देह व्यापार कांड, चारा कांड, हर्शद मेहता कांड, हवाला कांड आदि निरंतर जनमानस को प्रभावित करते रहे हैं।

खोजी पत्रकारिता का उद्देश्य मात्र जानकारी भर देना नहीं बल्कि ऐसी जानकारी देना हो गया है जो गोपनीयता की परतें उभारकर लाई गई हो। गहरी छानबीन के लिए समय और साधकों की और साथ ही साथ साधनों की भी आवश्यकता पड़ती है। खोजी पत्रकार उन महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को प्राप्त करने के प्रयास में रहता है जिन्हें लोग गोपनीय रखना चाहते हैं। इस प्रकार गोपनीयता की दीवार भेदना ही खोजी पत्रकार का मूल कार्य होता है।

पत्रकारिता सनसनी पैदा करने का माध्यम नहीं है। पत्रकार या संवाददाता सनसनी के पीछे नहीं भागते हैं उनका प्रयास तथ्यों की गहराई में जाना होता है तथा तथ्यों के आधार पर अपनी कहानी तैयार करना होता है।

अमेरिकन खोजी पत्रकार बॉव ग्रीन के अनुसार खोजी पत्रकार में दो गुणों का होना जरूरी है –

(1) एक ऐसी महत्त्वपूर्ण सूचना वह प्रकाशित करे कि जिन्हें कोई छिपाना चाहता है।

(2) वह जो समाचार लाया है वह उसकी अपनी खोज हो और वह किसी अन्य रिपोर्टर को न मिला हो।

ब्रूस लॉकलिन की दृष्टि से खोजी पत्रकारिता वह है जो गलत कार्यों का भंडा-ोड़ कर सके चाहे वे कार्य सार्वजनिक हो या व्यक्तिगत।

खोजी पत्रकार इस प्रकार समाज से अन्याय को दूर करने की एक बड़ी सेवा कर सकता है। राजनीतिक अत्याचार, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों का पर्दाश करना वैसे भी पत्रकारों का कर्तव्य बन जाता है।

वास्तव में जब पत्रकार अपने खोजे गए तथ्यों के आधार पर अपना रपट लेखन करता है तो उसकी रपट में एक बम का धमाका होता है जिसे जनधन की हानि नहीं होती बल्कि कुछ नकाब ऊगाड़े जाते हैं। उसमें अपनी कर्तव्य परायणता की गहरी ईमानदारी उसे सबसे बड़ा सामर्थ्य प्रदान करती है।

खोजी पत्रकारिता का उद्देश्य

खोजी पत्रकार अपनी खोजी समाचारों से देश और समाज का भला करता है क्योंकि वह ऐसे अभाव के तत्त्वों का उद्घाटन करता है जिनके उजागर हो जाने से समाज की सेवा की जाती है। आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में व्याप्त अनियमितताओं, अत्याचारों और अन्याय को जब पत्रकार उजागर करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है तो वह लोकतंत्र का दिशा-निर्देशक हो जाता है।

प्रवीण-दीक्षित कहते हैं कि जो पत्रकार सार्वजनिक हित और देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों, उद्योगपतियों, कालाबाजारियों, धर्मात्मा बनकर दुराचार करने वाले कथित मुल्ला, पंडों और महंतों, आर्थिक-सामाजिक और सार्वजनिक सेवा के नाम पर निहित स्वार्थों को पूरा करते हुए भाई-भतीजावाद को प्रोत्साहन देने वाले मंत्रियों, लाइसेंस कोटा, परमिट आदि के नाम पर काली कमाई करने वाले तथाकथित व्यापारियों तथा बेईमान अफ़सरों के काले कारनामों का साहसपूर्वक रहस्योद्घाटन करते हैं उनके इस कार्य से बढ़कर किसी स्वतंत्र देश में भला कौन-सी देश सेवा हो सकती है।

खोज रपट की विश्वसनीयता

खोजी पत्रकार या रिपोर्टर का काम केवल खोजपूर्ण सामग्री का संकलन करना ही नहीं है लेकिन ऐसे संकलित सूत्रों से प्राप्त समाचार की विश्वसनीयता की परीक्षा करना भी खोजी पत्रकार का महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसका मुख्य कारण यह है कि जो सूचना दी गई है उसकी सत्यता की परीक्षा करना पत्रकार का पहला काम है। कई बार पत्रकारों को ऐसे स्रोतों से समाचार मिलते हैं जो व्यक्तिगत द्वेष, ईर्ष्या या झगड़ों के कारण भंडा-फोड़ करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में समाचारों की सत्यता का पता लगाना अनिवार्य हो जाता है। राजनीतिक क्षेत्र में दलों की प्रतिद्वंद्विता सर्वविदित है ही। अत: किसी भी खोजी पत्रकार के लिए आवश्यक है कि बिना जाँचे कोई भी समाचार देने पर उसकी प्रतिष्ठा खतरे में हो सकती है। अत: एक स्रोत से प्राप्त समाचार की पुष्टि करने के लिए अन्य स्रोतों के साथ मिलान करके अपनी दृष्टि में निष्पक्षता का निर्धारण करना चाहिए।

खोजी पत्रकारिता के अंतर्गत खोजी पत्रकार हमेशा चौकन्ना और शिकारी की भांति अपने आँख, कान, नाक खुला रखकर समाचार सूँघने और खोज लेने की प्रक्रिया को अपनाता है जिस प्रकार शिकार के समक्ष पशु आ जाए इसी प्रकार खोजी पत्रकार समाचार सूँघकर समाचार प्रस्तुत कर देता है साथ ही साथ खोजी पत्रकारिता आराम की प्रतीक्षा नहीं करती। वे त्वरित गति से जाँचना-परखना शुरु कर देते हैं।

खोजी पत्रकार की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं -

(1) **समाचारों को सूँघने की क्षमता** - खोजी पत्रकार की प्रथम विशेषता है उसमें समाचारों को सूँघने की क्षमता। निश्चित रूप से खोजी पत्रकार को शिकारी की तरह समाचार की गंध मिलते ही उसे सूँघने से आगे

हर प्रकार से उसकी तह तक जा पहुँचने की क्षमता प्राप्त कर लेना ही आवश्यक है कि जरा सी भनक लगते ही कथा के समस्त सूत्रों का पता लगा लेता है।

(2) **जासूसी मस्तिष्क संपन्न** – खोजी पत्रकार के पास जासूसी–मस्तिष्क होता है इसलिए वह गोपनीय समाचारों को निरंतर खोजने में व्यस्त रहता है तथा गोपनीय से गोपनीय सूचनाओं का रपट लेखन एक जासूस की भांति करता है।

(3) **समाचार के अंदर प्रवेश करना** – खोजी पत्रकारिता की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता समाचार के अंदर प्रविष्ट करना है और इस प्रकार वह समाचार सूंघने के पश्चात् बिना किसी वाद–विवाद के उसकी तह तक पहुँचने के विवध प्रकार से प्रयास करता है और वांछित समाचार कथा को खोजकर पाठकों के सामने लाता है।

वरिष्ठ पत्रकार प्रेमनाथ चतुर्वेदी का कहना है कि संवाददाता स्वभावतः समाचार खोजने वाला होता है। ठीक उसी प्रकार हीरे के खदानो की सारी माटी छानकर हीरा पाने की ललक उस श्रमशील संवाददाता में होती है।

(4) **कानून ज्ञाता** – खोजी पत्रकार को कानूनी दांव–पेंचों पर विचार करना होता है क्योंकि वास्तविकता से परे कुछ भी होने पर उसे मानहानी और संवाददाताओं के संचार में उस पर अविश्वसनीयता की उंगली उठना वह सहन नहीं कर सकता। इसलिए रपट लेखन से पूर्व खोजी पत्रकार कानूनी रूप से सारे तथ्यों को जानने से अधिक बहुत ही ईमानदारी से उसका लेखन करता है ताकि किसी भी तरह कोई भी पक्षपातपूर्ण समाचार उसके पत्र में न छपे।

(5) **धैर्यशीलता** – जिस पत्रकार में धैर्यशीलता होती है वही पत्रकार सही समाचार लिख सकता है। खोजी पत्रकार शीघ्रता में कोई निर्णय नहीं लेता। कई बार एक अच्छी कहानी के लिए उसे महीनों लग जाते हैं पर वह धैर्य नहीं खोता।

(6) **विवेकशीलता** – खोजी पत्रकार में विवेकशीलता भी उसकी विशेषता होती है। खोजी पत्रकार समाचार की प्रक्रिया से गुजरते हुए सावधानी से कार्य करना विवेकशीलता को प्रदर्शित करता है।

(7) **उत्तम कोटि का रहस्योद्घाटन** – खोजी पत्रकार सामान्य पत्रकार नहीं होते हैं। वे प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद सावधानी से छिपाए गए और सतर्कता के तालों के पीछे से ऐसे तथ्यों का उद्घाटन करता है जिसे सभी छिपाने का प्रयास करते हैं। अतः यह कहा जाना अधिक उपयुक्त है कि वह उत्तम कोटि का रहस्योद्घाटक होता है।

इस प्रकार खोजी पत्रकार जनसाधारण की समझ में आ सकने वाली सरल एवं अधिकांश रूप में स्थानी शब्दावली ग्रहण करता है क्योंकि ऐसी शब्दावली ही रपट का अर्थ भली प्रकार संप्रेषित कर सकती है। समाचारपत्र मात्र डिग्रीधारी शिक्षितों के लिए ही नहीं होता बल्कि वह सर्वसाधारण वर्ग के पाठकों के लिए भी होता है जिसे शब्दों के अर्थ और पर्याय तथा अलंकृत भाषा की आवश्यकता नहीं होती है।

सन्दर्भ

1. पर्यटन प्रबंधन और मीडिया, मंजू पांडे।
2. पत्रकारिता में, करनजीत सिंह।
3. पटकथा लेखन, अवनींद्र झा।
4. पटकथा लेखन : फीचर फिल्म, उमेश राठौड़।
5. पटकथा लेखन एक परिचय, मनोहर श्याम जोशी।

संशय की एक रात में मिथक और सांस्कृतिक मूल्य

***कृतिका पाण्डेय, **डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय**

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नरेश मेहता जी कवि, कथाकार, गीतकार, नाटककार, चिंतक, विचारक आदि रूपों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। ये नयी कविता के प्रयोगधर्मी अन्वेषक हैं। सांस्कृतिक गौरव एवं मिथकीय संदर्भों के बीच सम्बन्धों को दर्शाती उनकी रचनाएँ अपनी सृजनधर्मिता के वैशिष्ट से ओत-प्रोत है। ये मानवीय उत्कर्ष के कवि हैं। नरेश मेहता का काव्य संसार आधुनिकता बोध पर आधारित व्यक्ति मानव की पहचान है।

मिथक आधुनिकभावोबोध जीवन दर्शन और मूल्यों की स्थापना करते हैं। नरेश मेहता जी ने अपने काव्य मिथकों में पुरा-पात्रों, पुरा-अर्थों एवं प्रकृति सौन्दर्य की आकर्षक स्थितियों के माध्यम से आधुनिक जीवन की विषमताओं, विवशताओं, यंत्रणाओं, जीवन की कड़वाहट, प्रतिशोध, हिंसा, संकीर्णता, घोर प्रतिद्वन्द्विता, संशय की स्थिति, वर्ग एवं वर्णभेद, समाज में शान्ति, मानवता दिशा, मूल्यों का अन्वेषण और दूषित सामाजिक मानसिकता को सर्वज्ञ प्रस्तुत किया है।

नयी कविता के कवि प्राचीन सांस्कृतिक अमूल्य निधि मिथकों एवं मानवता को साहित्य से नकारते जा रहे हैं जिससेभारतीय संस्कृति के सामने एक संकट खड़ा हो गया। यह सही है कि आज हमारा देश इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर रहा है। इस वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ संसार के सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों को नकार नहीं सकते हैं, उसके साथ कदम बढ़ाते हुए उनके उपलब्धियों को ग्रहण करते हुए पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हुए राष्ट्र संस्कृति को आगे बढ़ाने के लिए प्राचीन संस्कृति अमूल्य निधियों को नये मूल्यों के साथ ग्रहण करना एवं व्याख्ययित करना उतना ही अनिवार्य एवं आवश्यक है। हिन्दी साहित्य की इसी दुर्निवार्यता के निराकरण का बीड़ा नरेश मेहता ने उठाया है।

'संशय की एक रात' कविता के द्वारा आन्तरिक संघर्ष को मानवीय संदर्भ से जोड़कर राम की प्रासंगिकता आधुनिक पुरुष के रूप में करते हैं साथ ही अपने सम्पूर्ण काव्य संसार में आशा का अशेष सम्बल प्रदान करते हैं साथ ही मंगलकामना, प्रतीक्षा और सांस्कृतिक गरिमा को अपने साथ लिए चलते हैं जो आज के मानव के लिए प्रासंगिक है जो आन्तरिक साहस, प्रेरणा प्रदान करता है। आधुनिक जीवन के यथार्थ द्वारा जो समकालीन कविता में अपरिचय का बोध बढ़ता जा रहा है वही नरेश मेहता अपरिचय से परिचय की तलाश करते दिखाई देते हैं। संशय की एक रात में पात्रें का एकान्त सामाजिक प्रयोजन रखता है क्योंकि उनकी प्रार्थना है कि वही एकान्त मिले जिसमें वे सारे संसार की कथा लिख सकें जिसमें व्यथा है तो कहीं मानवीय दुख की एहसास है तो कहीं मानवीय स्वभाव में व्याप्त अहं, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या और विवशता के चित्र हैं और कवि के एकान्त में उनके परिवेश का कोलाहल भी अंकित है। इनकी कविता हमारे अन्दरभावों का तूफान, इन्द्रियबोध काभूकम्प

उत्पन्न करती है। उस आदिम सृष्टि के गर्भ में जो हमारा मूल निवास है साथ ही साथ आधुनिक चेतना और आधुनिक परिवेश से तादात्म्य का सम्बल लिये हुए हैं।

नरेश मेहता ने संशय की एक रात में विविध भावों का उद्घाटन किया है तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक मूल्यों को आधुनिक युगानुरूप अभिव्यक्ति देकर कविता विधा को नवीनता दी है। नरेश मेहता जी ने मिथकीय कथ्य वाले काव्य मिथकीय संरचना एवं संवेदना के वाहक हैं, जिसके अन्तर्गतभाव चेतना एवं विचार चेतना के विविध आयाम विशेष रूप में निरूपित हुए हैं। युगीन जटिल समस्याओं को प्रासंगिक युग में मानस के रूप में लिया जाता है।

नरेश मेहता ने अपने खण्ड–काव्यों की रचना मिथकीय आधार पर की है। मिथक किसी जाति की संस्कृति के गहरे स्रोत होते हैं। वे अतीत से वर्तमान तक और वर्तमान से भविष्य तक अपनी प्रवहमानता बनाए रहते हैं। जातीय संस्कारों के निर्माण में इन मिथकों के प्रयोग का गहरा योगदान होता है।

नरेश मेहता का पहला खण्ड काव्य 'संशय की एक रात' एक बहुचर्चित प्रबन्ध काव्य है। इस काव्य में श्रीराम को प्रश्नानुकूल और विभाजित व्यक्तित्व वाले 'प्रज्ञा पुरुष' के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

नरेश मेहता के 'राम' मनुष्य है और एक उदात्त चरित्र वाले महामानव। उनका मूल स्वरूप 'करुणा', 'प्रेम' और 'अहिंसा' का है।

युद्ध में प्रस्थान करते हुए उन्हें बारम्बार यह लगता है कि युद्ध बर्बर कुकृत्य है। इसमें बहुसंख्यक जनों काभयानक रक्तपात होता है। रक्तपात मनुष्यता का सबसे बड़ा अपमान है। ऐसी परिस्थिति में राम के मन में एक गहरा संशय उभरता है कि क्या युद्ध ही एक मात्र विकल्प है। क्या युद्ध से ऊपर उठकर केवल मानवीय गुणों को उभार कर ही हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकते? राम कहते हैं–

"इतिहास के हाथों
बाण बनने से अधिक अच्छा है
स्वयं हम
अंधेरे में यात्रा करते हुए
खो जायें।"[1]

इस रक्त सने पगों द्वारा वे सीता की वापसीभी नहीं चाहते– यही तो मानव की मानवता है–

"मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए,
साम्राज्य नहीं चाहिए,
मानव के रक्त पर पग धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए,
सीता भी नहीं।"[2]

हमारी भारतीय संस्कृति 'मानवतावादी', 'अहिंसावादी' और 'करुणावादी' है। उपर्युक्त पंक्तियों में इन उल्लिखित उदात्त मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा में राम असीम आस्था व्यक्त करते हैं। कवि का सांस्कृतिक राग-बोध फूट पड़ा है।

जब कवि पौराणिक या ऐतिहासिक कथाओं में कोई परिवर्तन करना चाहता है तो इस बात का बराबर ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं वह ऐसी कड़ी तो नहीं जोड़ रहा है जो उस कथा श्रृंखला में बैठे ही नहीं। दूसरे उस नयी कड़ी को जोड़कर वह पुराने कथा-प्रवाह को और युगीन संगति को कहीं तक उजागर कर पाता है। 'संशय की एक रात'- दोनों दृष्टियों से खरा उतरता है। राम की उदात्तता, उनका महामानवत्व, उनकी गहरी क्षमाशीलता और उनका शील- सभी ऐसे गुण हैं, जो युद्ध की विभीषिका में उनमें अरुचि उत्पन्न कराने वाले हैं। राम के चरित्र में अन्य राजकुमारों का वह हिंस्रभाव या उद्धत-स्वभाव कभी था ही नहीं। वे गंभीर प्रकृति और यशान्त मतवाले रहे हैं।

राम की द्विविधा यह है कि उनकी व्यक्तिगत समस्याएँ युद्ध जैसी ऐतिहासिक कारणों को जन्म क्यों दें। मानव-मूल्यों में उनकी पूर्ण आस्था है, असत् वे घोर नर संहार नहीं चाहते हैं। उनका शंकाकुल द्विधाग्रस्त मन कह उठता है-

"दो सत्य,
दो संकल्प,
दो-दो आस्थायें
व्यक्ति में ही
अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो रहा है।"[3]

राम की अभिव्यक्ति में जो दो सत्य, दो संकल्प और दो व्यक्ति होने की व्यंजना है, वह एक ओर तो राम को अतिशय 'विनम्र' व्यक्त करती है और दूसरी ओर इस व्यंजना में से राम का व्यक्तित्व उभरता है, वह विनम्रता के आधार पर उनके महान कर्त्ता होने का बोध कराता है।

द्वितीय सर्ग 'वर्षा भींगे अंधकार का आगमन' राम के अनुत्तरित संशयों को और भी उकसाता है। वस्तुत: वे 'मूल्यान्वेषी' हैं। वे कहते हैं- "मानव का मानव से साक्ष्य चाहता हूँ।" वे युद्ध एवं तलवार से मानवीय प्रश्नों का हल नहीं चाहते।

भारतीय संस्कृति का उद्घोष यह है कि 'सर्वेभवन्तु सुखिन:' तथा 'मा कश्चिद दु:ख भागभवेत।' यहाँ पर राम 'लोक-हित' एवं 'भवहित' की कामना करते हैं। भारतीय संस्कृति 'उदात्त मानव-मूल्यों' में असीम आस्था रहती है। राम 'मानवत्व' के प्रतीक हैं। वे सत्य और न्याय के लिए युद्ध चाहते हैं, क्योंकि उन्हें 'अपहृत स्वतंत्रता' को लाना है।

भारतीय संस्कृति 'आस्तिकतावादी' है। वह 'स्वर्ग', 'नरक', 'पुनर्जन्म', 'प्रेतात्मा' आदि में पूर्ण आस्था रहती है। इसी सांस्कृतिक बोध से प्रेरित होकर कवि नरेश मेहता 'संशय की एक रात' के

द्वितीय सर्ग में दशरथ की प्रेतात्मा की 'छाया' का प्रसंग अवतरित कर दिया है। यह भारतीय सांस्कृतिक बोध ही है, आधुनिक विज्ञानवादी इसे नकारते हैं। दशरथ की छाया कहती है–

"उस अजन्मे अमृत्य महाकाल को,
न जन्म से
न मृत्यु से
न सम्बन्धों से,
योजित या विभाजित किया जा सकता है,
उस महानियम के निकट
हम केवल कर्म के क्षण हैं।"[4]

भारतीय संस्कृति भोगवादी नहीं अपितु 'कर्मवादी' है। गीता में कहा गया है– 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' अर्थात् तुम्हारा मात्र कर्म में ही अधिकार है। यही सांस्कृतिक राग का स्वर दशरथ जी की 'छाया' अलापती है–"हम केवल कर्म के क्षण हैं।"

तृतीय सर्ग– 'मध्यरात्रि की यंत्रणा और निर्णय' शीर्षक से प्रारम्भ होता है। यह सर्ग अधिक विचारोत्तेजक है। इस सर्ग में आकर कवि 'जनतांत्रिक मूल्यों' पर टिक जाता है। वैचारिक और दार्शनिक पक्ष इस तीसरे सर्ग में एकदम उभरा है।

युद्ध की स्वीकारते हुएभी राम अपने संशय की, अपनी चिन्ता को पूरी मानवता के लिए जीवन्त रूप में छोड़ जाते हैं। अपनी पितात्मा की छाया को सम्बोधित करते हुए राम कहते हैं–

"लेकिन पितात्मा।
ये सब स्वीकारोक्तियाँ हैं
सत्य नहीं
इनकी वास्तविकता को
कभी चुनौती दी ही नहीं गई।
इन अन्धविश्वासों को
किसी संशय ने निगला ही नहीं।"[5]

गीता के कर्म सिद्धान्त की भाषा जब कृष्ण के मुख्य से उच्चरित होती है तो विचलित अर्जुन सहज ही कृष्ण के तर्कों को स्वीकार लेते हैं। परन्तु वे ही तर्क लक्ष्मण के मुख से, हनुमान, जटायु, जाम्बवान और पिता दशरथ की छाया के मुख से जब निकलते हैं, तो राम उनसे पराभूत नहीं होते। तर्क वही है। लक्ष्मण कहते हैं–

"कितने ही लघु हो
इससे क्या?
सार्थक है
स्वत्व है हमारा कर्म।"[6]

गीता जैसा महान संस्कृति-निर्माता ग्रन्थ जिस स्तर पर और जिस निश्चयात्मक दृढ़ता के साथ युद्ध की अनिवार्यता को प्रतिष्ठित करता है। भारतीय संस्कृति के नए पुरोधा नरेश मेहता ने यह कार्य अत्यन्त कलात्मक सफलता से निष्पन्न किया है।

डॉ॰ राम कमल राय ने 'संशय की एक रात' पर बल्कि यों कहिए कि उसके सांस्कृतिक एवं वैचारिक महत्व को अनुरेखित करते हुए लिखा है कि- "नरेश मेहता की सबसे बड़ी दूरदर्शिता और सांस्कृतिक चिन्तन की परिपक्वता इस नियोजन में है कि जहाँ महाभारत के सन्दर्भ में युद्ध को कर्म की पावनता एवं नि:संगता के साथ जोड़कर कृष्ण ने एक अनिवार्य कर्तव्य की पीठिका पर प्रतिष्ठित ही नहीं किया है वरन् उसे पूरी दार्शनिक सम्पुष्टि प्रदान की है, वहाँ उन्होंने युद्ध को एक हीनतर मानवीय विवशता के रूप में दूसरे और उतने ही मान्य महापुरुष राम द्वारा निरूपित कराया है।"[12]

हमारी भारतीय संस्कृति 'समष्टिवादी' है। वह समष्टि के हितार्थ व्यष्टि का बलिदान स्वीकारती है। यथा- 'त्यजेवेक कुलस्यार्थे' अर्थात् समूह के हितार्थ एक का त्याग श्रेयस्कर है। यह 'जनतांत्रिक-भावना' है। वर्तमान प्रजातांत्रिक देशों में भी इसका सर्वाधिक महत्व है। अन्तत: राम परिषद् की इच्छा के आगे अर्थात् वृहत को समर्पित हो जाते हैं।

विभीषण एक खण्डित व्यक्तित्व है। वे युद्ध को अधिकार अर्जन का अन्तिम मार्ग मानते हैं किन्तु विभीषण का 'राष्ट्र-प्रेम', 'देश-प्रेम' जाग उठता है। वह कहता है- किन्तु अपने राष्ट्र के प्रति क्या यही कर्त्तव्य है मेरा-

"उस पर हो रहे,
इस आक्रमण में साथ हूँ।"[7]

विभीषण के माध्यम से कवि ने 'जननी जन्म-भूमि स्वर्गादपि गरीयसी' का सांस्कृतिक स्वर झंकृत किया है। विभीषण को यह 'राष्ट्र-घात' व्यथित कर देता है। सचमुच 'जन्म-भूमि' गरीयसी ही है।

चतुर्थ सर्ग 'संदिग्ध मन का संकल्प और सवेरा' में परिषद् या समूह के निर्णयानुसार अन्तत: राम ने निर्णय ले लिया कि अपने व्यक्ति के लिए नहीं, 'सर्वहिताय' युद्ध करना होगा। भारतीय-संस्कृति तो सर्वदा से 'बहुजन हिताय' की उद्घोषिका रही है।

अन्तत: संशय की एक रात "यह निष्कर्षित करती है कि प्रतीकात्मक पौराणिक पात्रों का उभारा गया वैचारिक व्यक्तित्व, आधुनिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में परम्परा की जमीन में जमी आस्था की जड़ों में से रसतत्त्व खींचकर उसे नया जीवन प्रदान करने का प्रयास करता है। कवि ने ठीक ही कहा है कि- "युद्ध केवल फेन नहीं/निर्णय है/जिससे इतिहास बना करता है।"

इस पौराणिक आख्यान में नरेश मेहता ने नितान्त आधुनिक समस्याओं का समावेश कर 'काल की दूरी' हटा दी है। आधुनिक सन्दर्भों के समाहार से कवि ने कथानक को नवीन अर्थवत्ता प्रदान की है। "राम" महामानव के प्रतीक हैं। वे युद्ध प्रिय नहीं है परन्तु उपनिवेशवाद को किसीभी मूल्य पर स्वीकारते नहीं हैं। वे 'सत्य' और 'न्याय' के लिए युद्ध चाहते हैं। भारतीय संस्कृति आदिकाल से 'सत्य', 'न्याय', 'अहिंसा' एवं मानवतावाद की

पुजारी रही है। कविवर नरेश मेहता 'वैष्णव कवि' हैं और उनकी कविता ऋषि-मुनि सुता है। अस्तु, इनकी काव्य-काया की धमनियों में भारतीय संस्कृति का रस-रक्त प्रवहमान है। इसे नकारा नहीं जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. मेहता, नरेश : संशय की एक रात, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968
2. तदेव
3. तदेव
4. तदेव
5. तदेव, (तृतीय सर्ग)
6. तदेव, (तृतीय सर्ग)
7. तदेव, (तृतीय सर्ग)

सहायक ग्रन्थ

8. राय, डॉ० राम कमल : नरेश मेहता : कविता की ऊर्ध्वयात्रा, पूर्वोक्त
9. मेहता, नरेश : काव्य का वैष्णव, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972
10. मेहता, नरेश : संशय की एक रात शीर्षबंध से उद्धृत पंक्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968
11. शर्मा, प्रभाकर : नरेश मेहता : काव्य विमर्श और मूल्यांकन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1979

Vol. XX Issue No. II, May–August 2023, ISSN: 0970-1745 **Impact Factor 5.875**

हिन्द-यवन मुद्राएँः प्रयुक्त धातुएँ व तोलमान

डॉ० आरती गुप्ता
सहायक आचार्य, महर्षि सूचना प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
लखनऊ

बैक्ट्रिया और भारत की यवन मुद्राओं के अध्ययन का इतिहास पहली बार एक अंग्रेज़ एच. एच. विल्सन द्वारा 1838 ई. में न्यूमिज़्मैटिक जर्नल (लंदन) में लिखा गया।[1] हिन्द-यवनों की मौद्रिक प्रणाली अत्यन्त विशिष्ट थी। इन्होंने मुद्रा निर्माण के क्षेत्र में कई नवीन प्रयोग किए। हिन्द-यवनों द्वारा जारी मुद्राएँ राजनैतिक, प्रशासनिक एवं कलात्मक सभी दृष्टिकोण से उत्तम कोटि की हैं। इनकी सामान्य मुद्राओं के अतिरिक्त हमें इनकी स्मारक मुद्राएँ, संयुक्त मुद्राएँ एवं विजय पदक भी प्राप्त हुए हैं, जो आज विभिन्न संग्रहालयों में संरक्षित हैं। प्रस्तुत शोध पत्र के अन्तर्गत इन मुद्राओं के निर्माण हेतु प्रयोग की गई विभिन्न धातुएँ व तोलमान सम्बन्धी विशेषताओं पर चर्चा की गई है।

प्रयुक्त धातुएँ

मुद्रा निर्माण के लिए हिन्द-यवनों ने लगभग सभी धातुओं का प्रयोग किया। इनकी स्वर्ण, रजत व ताम्र मुद्राओं के अतिरिक्त निकेल व सीसे की भी मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं। बैक्ट्रिया के यवन शासकों में केवल डायोडोटस[2], प्रथम यूथीडेमस[3] और प्रथम यूक्रेटाइडीस[4] की स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त होती हैं। इन शासकों द्वारा जारी स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन बाख्त्री क्षेत्र तक ही सीमित था[5] जबकि भारत में मेनाण्डर की पत्नी अगाथोक्लिया ने स्वतन्त्र रूप से कुछ स्वर्ण मुद्राएँ जारी कीं। इन मुद्राओं के अग्रभाग पर शिरस्त्राणयुक्त एथीना तथा पृष्ठभाग पर श्रृँगयुक्त उलूक अंकित है।[6] सोने का मानक सिक्का 'स्टेटर' (STATER) कहलाता था जिसका भार 132 ग्रेन था।[7]

रजत मुद्राएँ सभी हिन्द-यवन राजाओं द्वारा जारी की गई। इनका मानक भार 66 ग्रेन था। इन्हें 'ड्रैक्म' (DRACHM) कहा गया है।[8] इस धातु में बनीं मुद्राएँ तीन मूल्यवर्ग में जारी की गई-टेट्राड्रैक्म (TETRADRACHM=4 DRACHM), ड्रैक्म तथा ओबोल (OBOL= 1/6)। इनमें से प्रथम दो मूल्य की मुद्राएँ बैक्ट्रिया के सभी यवन राजाओं द्वारा चलाई गई जबकि ओबोल केवल छः यवन राजाओं द्वारा जारी किए गए। इनमें प्रथम डिमेट्रियस[9], द्वितीय यूथीडेमस[10], पैण्टालियॉन[11], अगाथोक्लीस[12], प्रथम एण्टिमेकस[13] और प्रथम यूक्रेटाइडीस[14] सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त एक अद्वितीय एटिक मूल्य की मुद्राओं (अर्द्धद्रख्म/HEMIDRACHM) के विषय में पता चलता है जिनका भार 33 ग्रेन था। इन्हें जारी करने का श्रेय अगाथोक्लीस[15] और प्रथम एण्टिमेकस[16] को दिया जाता है। प्रथम अपोलोडोटस[17] ने कुछ एटिक अर्द्धद्रख्म

जारी किए। यह हिन्द-यवनों में एकमात्र ऐसा शासक था, जिसने इस मूल्य में द्विभाषी भारतीय प्रकार की मुद्राएँ चलाईं। इसके अतिरिक्त भारत के यवन राजाओं में अकेले एण्टिएलकाइडस द्वारा लम्बे समय तक एटिक मुद्राएँ जारी की गईं जो टेट्राड्रैक्म और ड्रैक्म मूल्य की हैं किन्तु बाद में लाइसियस, अर्खेबियस, प्रथम मेनाण्डर, फिलॉक्सेनस, हर्मेयॉस तथा थियोफाइलस के कुछ एटिक टेट्राड्रैक्म प्रकाश में आए जो एक विशाल मुद्रानिधि से मिले थे। यह निधि उत्तरी अफगानिस्तान में कुन्दूज़ के निकट प्राप्त हुई और यह अत्यन्त रोचक है कि इसी निधि से एमिण्टस के पाँच एटिक दोहरे दसद्रख्म/DOUBLE DECADRACHM (20 ड्रैक्म, प्रत्येक का भार लगभग 1300 ग्रेन) की प्राप्ति हुई। ये विशाल 20 ड्रैक्म मुद्राएँ प्रथम यूक्रेटाइडीस के 20 स्टेटर सिक्कों की तरह विजय पदक के रूप में जारी किए गए।[18]

हिन्द-यवनों द्वारा ताम्र मुद्राएँ भी जारी की गईं, जिन्हें 'कैल्कॉन' (CHALKON) कहा गया। इनका भार 67.2 ग्रेन था। ताम्र मुद्राओं के सम्बन्ध में कनिंघम ने बताया कि बैक्ट्रिया के इन यूनानी शासकों की ताम्र मुद्राएँ यवन भार-मान अथवा एटिक मानक पर आधारित थीं जबकि भारत में जो ताम्र मुद्राएँ जारी हुईं, वे भारतीय मानक के अनुरूप बनाई गईं। इस प्रकार एटिक मानक पर आधारित कैल्कॉन, जिनका भार 67.2 ग्रेन था, को बढ़ाकर 70 ग्रेन कर दिया गया जिससे कि वे यूनानी और भारतीय पद्धति के अनुरूप लाए जा सकें। इस प्रकार जो मुद्राएँ बनीं वे पूर्णतया भारतीय पण के आधे के बराबर थीं, किन्तु लम्बे समय तक उपयोग होने के कारण इस धातु का स्वत: ही क्षय होता रहता है। इसलिए ताम्र मुद्राएँ अपने मूल तोल में बहुत कम ही प्राप्त होती हैं। इस कारण निश्चित रूप से इनके परम्परागत भार के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है।[19]

हिन्द-यवनों द्वारा कुछ निकेल मिश्रित ताम्र मुद्राएँ जारी की गईं, जिनका भार 134.4 ग्रेन था। इन्हें ओबोलस (OBOLUS) कहा गया है।[20] द्वितीय यूथीडेमस[21], पैण्टालियॉन[22] और अगाथोक्लीस[23] ने इस धातु में अपनी कुछ मुद्राएँ चलाईं। निकेल के विषय में बताया जाता है कि यह धातु यूरोप में सत्रहवीं शताब्दी में प्रकाश में आई थी। इस दृष्टि से इन तीन शासकों की ये मुद्राएँ संसार के इतिहास में अद्यतम उदाहरण कही जा सकती हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि इन्हीं तीन शासकों द्वारा ओबोल भी जारी किए गए थे। यहाँ अत्यन्त रोचक बात यह है कि ताम्र निकेल मिश्रित दो आना सिक्कों के प्रचलन में आ जाने के बाद भारत के दो आना रजत सिक्कों का महत्व कम हो गया।[24] द्वितीय स्ट्रेटो ने मुद्रा निर्माण के लिए बिलन व सीसे का प्रयोग किया। ऐसा करने वाला वह एकमात्र हिन्द-यवन शासक था।[25]

तोलमान

बैक्ट्रिया के यवन शासकों ने अपनी मुद्राओं के लिए एथेन्स की मुद्राओं के तोलमान का अनुकरण किया। इसका प्रयोग सिकन्दर और उसके सेल्युकिड उत्तराधिकारियों ने सीरिया में किया था। जब यवन शासक बैक्ट्रिया से बाहर निकले तब भी कुछ समय तक इन्होंने इसी भार-मान का प्रयोग किया, फिर अफ़गानिस्तान वाले प्रदेश में अपनी मुद्राओं के लिए इन्होंने ईरानी भार-मान अपनाया तथा जब पाकिस्तान वाला क्षेत्र इनके

अधिकार में आया तब इन्होंने भारतीय भार-मान स्वीकार कर लिया। इस भार-मान के सिक्कों के सम्बन्ध में यह धारणा है कि वे केवल डाइड्रैक्म (DI-DRACHM /द्विद्रख्म) और हेमिड्रैक्म (HEMIDRACHM) मूल्य के हैं। कुछ विद्वानों ने डाइड्रैक्म का उल्लेख भारतीय भार-मान के टेट्राड्रैक्म (TETRADRACHM) के नाम से किया है।[26]

पी. एल. गुप्ता ने अपनी पुस्तक "भारत के पूर्व-कालिक सिक्के" में 'बाख्त्री यवन और भारतीय यवन' अध्याय के अन्तर्गत डाइड्रैक्म, हेमिड्रैक्म और टेट्राड्रक्म इन तीनों ही भार-मान के आधार पर प्रचलित मुद्राओं के भार-मान की तालिका दी है जो इस प्रकार है-

स्वर्ण

सिक्के	यूनानी भार	ईरानी भार	भारतीय भार
20 स्टेटर	169.6 ग्र. (2,617.32 ग्रेन)	-	-
4 स्टेटर	33.9 ग्र. (523.15 ग्रेन)	-	-
स्टेटर	8.48 ग्र. (130.86 ग्रेन)	-	8.48 ग्र. (130.86 ग्रेन)
1/2 स्टेटर	4.24 ग्र. (65.43 ग्रेन)	-	-
1/4 स्टेटर	2.12 ग्र. (32.71 ग्रेन)	-	-
1/8 स्टेटर	-	-	1.06 ग्र. (16.35 ग्रेन)
1 कैल्कॉन	4.24 ग्र. (65.43 ग्रेन)	2.12 ग्र. (32.71 ग्रेन)	2.52((38.88 ग्रेन)
2.15 (33.17 ग्रेन)			
लेप्टॉन	2.12 ग्र. (32.71 ग्रेन)	-	-
अर्द्ध लेप्टॉन	1.06 ग्र. (16.35 ग्रेन)	-	-

रजत

सिक्के	यूनानी भार	ईरानी भार	भारतीय भार
20 ड्रैक्म	84.50 ग्र. (1304.03 ग्रेन)	-	-
टेट्राड्रैक्म	16.96 ग्र. (261.73 ग्रेन)	-	-
डाइड्रैक्म	-	8.48 ग्र. (130.86 ग्रेन)	9.68((149.38 ग्रेन)
9.40 (145.06 ग्रेन)			
ड्रैक्म	4.24 ग्र. (65.43 ग्रेन)	2.12 ग्र. (32.71 ग्रेन)	2.42((37.34 ग्रेन)
2.35 (36.26 ग्रेन)			
हेमिड्रैक्म	2.12 ग्र. (32.71 ग्रेन)	-	1.21 ग्र. (18.67 ग्रेन)
ओबोल	0.71 ग्र. (10.95 ग्रेन)	-	-

ताम्र

सिक्के	यूनानी भार	ईरानी भार	भारतीय भार
10 कैल्कॉन	42.40 ग्र. (654.33 ग्रेन)	–	–
8 कैल्कॉन (ताम्र ओबोल)	–	16.66 ग्र. (257.10 ग्रेन)	20.26; (312.65 ग्रेन) 17.00 (262.35 ग्रेन)
6 कैल्कॉन	25.42 ग्र. (392.29 ग्रेन)	–	–
4 कैल्कॉन	–	8.48 ग्र. (130.86 ग्रेन)	10.08; (155.55 ग्रेन) 8.50 (131.17 ग्रेन)
3 कैल्कॉन	12.72 ग्र. (196.29 ग्रेन)	6.36 ग्र.(98.14 ग्रेन)	–
2 कैल्कॉन	8.48 (ग्रेन)	–	5.08; (78.39 ग्रेन) 4.25 (65.58 ग्रेन)

सन्दर्भ ग्रंथ

1. *सी.आई.जी,* पृ.3.
2. *बी.एम.सी,* फ. I.5, पृ.3.
3. पूर्ववत्, फ. I.10, पृ.4.
4. *सी.आई.जी,* फ.XVI.2, पृ.122.
5. पूर्ववत्, पृ.13.
6. ए. एन. लाहिरी, *क्वाइन्स ऑफ क्वीन अगाथोक्लिया एण्ड द ऐट्रीब्यूशन ऑफ द लेजेण्डलेस इण्डो-ग्रीक स्टेटर्स, जे.एन.एस. आई,* (XVI), पृ.189–196; दृष्टव्य–सी.आई.जी, फ.I.1, पृ.71.
7. *सी.आई.जी,* पृ.14.
8. पूर्ववत्, पृ.14.
9. *बी.एम.सी,* फ.II.11, पृ.6; सी.आई.जी, फ.XII.6, पृ.106–108.
10. *सी.आई.जी,* फ.XIX.3, पृ.133.
11. पूर्ववत्, फ.XXVII.9, पृ.165.
12. *पी.एम.सी,* सं.42, पृ.17; सी.आई.जी, पृ.77.
13. *आई.एम.सी,* फ.II.4, पृ.11.
14. *सी.आई.जी,* फ.XV.9, पृ.121.
15. पूर्ववत्, फ.XXXIV.1, पृ.77.
16. *बी.एम.सी,* फ.V.2, पृ.12; सी.आई.जी, फ.VI.5, पृ.88.
17. *पी.एम.सी,* फ. IV.231, 232, पृ.40.

18. *सी.आई.जी,* पृ.14–17.

19. पूर्ववत्, पृ.17.

20. पूर्ववत.

21. पूर्ववत, फ.XIX.4, पृ.134.

22. *बी.एम.सी,* सं.1, पृ.9.

23. पूर्ववत, फ. IV.6, पृ.11.

24. *सी.आई.जी,* पृ.13–17.

25. पूर्ववत्, पृ.13.

26. पी. एल. गुप्ता, *भारत के पूर्व-कालिक सिक्के,* वाराणसी, 2003, पृ.97

जगदीश चन्द्र का उपन्यास “धरती धन न अपना” में कृषक जीवन

डॉ. के. विजय भास्कर नायुडु
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
अय्य नाडार जानकी अम्माल महाविद्यालय (स्वायत्तशासी),
शिवकाशी, तमिलनाडु

हिंदी उपन्यास साहित्य का विकास गतिशील रहा है। पूर्व प्रेमचंद काल में भी उपन्यास लिखे गये है। हालांकि कुछ कमजोरियाँ उसमें पायी जाती हैं। प्रेमचंद युग में उपन्यास कला की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई। इस काल में उपन्यास विधा का क्रमबद्ध विकास दृष्टिगोचर होता है। 1960 ई. के बाद हिंदी उपन्यासों में अनेक नई प्रवृत्तियों का आविर्भाव हुआ द्य इन उपन्यासों को हम उनके आधार पर चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

1. व्यक्तिचेतना से अनुप्राणित उपन्यास
2. समाज चेतना से अनुप्राणित उपन्यास
3. राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास
4. सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यास

यह वर्गीकरण प्रमुख प्रवृत्तियों को केंद्र में रखकर किया गया है। निर्मल वर्मा, राजकमल चौदरी, श्रीकांत वर्मा, उषा प्रियंवदा आदि उपन्यासकारों ने व्यक्ति चेतना को महत्त्व दिया है। रामदरश मिश्र, जगदीशचंद्र, भीष्म साहनी, श्रीलाल शुक्ल आदि ने समाज चेतना को महत्त्व दिया है। राही मासूम राजा, बदी उज्जमा आदि ने राजनीतिक चेतना को तथा नरेद्र कोहली, वीरेन्द्र कुमार जैन आदि ने सांस्कृतिक चेतना को केद्र में रखा हैं। इस सन्दर्भ में मैं जगदीशचंद्र के “धरती धन न अपना” उपन्यास में चित्रित कृषकों के जीवन पर यह लेख प्रस्तुत करता हूँ।

जगदीशचंद्र के कुल सात उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं - यादों का पहाड़ (1966), धरती धन न अपना (1972), आधा पुल (1973), मुठ्ठी भर कंकट (1976), कभी न छोड़े खेत (1976), टुंडा लाट (1978), घास गोदाम (1985), जगदीशचंद्र ने प्राय: सामान्य जनों के दु:ख-दर्दो को सामने रखकर वर्तमान सन्दर्भों में अनेक संघर्ष और जिजीविषा को पूरी सहानुभूति के साथ चित्रित किया है।

जगदीशचंद्र का “धरती धन न अपना” बहुचर्चित व सफल उपन्यास माना जाता है। इसमें कृषक जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं जो इसके कथा मूलक से अछूता रह गया हो। प्रस्तुत उपन्यास में जगदीशचंद्र ने

पंजाब के साधनहीन पराश्रित, अनपढ़ और शताब्दियों से अनेक प्रकार के अभावों से जझनेवाले हरिजन किसानों के उत्पीड़न की कथा लिखी है।

उपन्यासकार ने स्वयं कहा है – "यह उपन्यास मेरी किशोरावस्था की कुछ अविस्मरणीय स्मृतियों और दामन में छिपी एक अदम्य वेदना की उपज है।" (जगदीश चंद्र – धरती धन न अपना, मेरी ओर से, सं.1996, पृ.7) इनका बचपन ननिहाल के गाँव रलहन (पंजाब) में बीता। अपने बचपन में ही उन्होंने हरिजनों तथा भूमिहीन कृषकों को नजदीकी से देखा था।

स्वतंत्रता के बाद कृषकों ने भी अपनी स्थितियों में परिवर्तन होने का स्वप्न देखा था। लेकिन आज भी कृषकों के जीवन में परिवर्तन नहीं हुआ है। उपन्यास का पात्र काली जब अपने गाँव लौटता है तो वह पेड़ों की ओट में छिपे मकानों को देखता है। कुत्तों के भौंकने की आवाज आने लगती है। थोड़ी देर के बाद सभी ओर खामोशी छा जाती है। काली भयभीत सा होता है। उसके दिल में छः साल के पश्चात गाँव लौटनी की खुशी स्वयं होते है, और उसके जी चाहता है कि वह उलटे पाँव ही कानपुर वापस चला जाय। इसी प्रकार गोदान उपन्यास के गोबर थी शहर जाकर जब वापस आता है तो उसे भी अपने घर के यह हीनावस्था खलती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आज भी किसानों के जीवन में परिवर्तन नहीं है। आज भी वह अभावों में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है और काली का भयभीत होना सभी हरिजनों का भयभीत होना है जो अपने जीवन में परिवर्तन की चाहत लिए हुए है।

"धरती धन न अपना" जगदीशचंद्र के सर्वाधिक प्रगतिशील उपन्यास के रूप में पहचाना गया है। इस उपन्यास का किसान जमींदारों की चंगुल से छूट नहीं पा रहा है। उनके अत्याचारों को वह सहता है। संतू का कोई कसूर न होते हुए भी चौधरी हरनामसिंह उसकी गर्दन मरोड़ते हैं और जूते मारते है। चौधरी का मानना था कि संतू ने ही जानवरों को खेत में हाँका था। आर्थिक अभाव के कारण ये हरिजन किसान अपना अपराध न होते हुए भी साहूकारों के अन्याय और अत्याचारों को सहते हैं। चौधरी का ध्यान जब किसी ने उखाड़ दिया तो चौधरी सभी भूमिहीन मजदूरों को चौगान में गाली – गलौज करता है, धमकियाँ देता है। गाँव के लोग अपना कसूर न होते हुए भी इत्मीनान से गालियाँ सुनते हैं और मार खाते हैं। भूमिहीन किसानों की यह अपराध भावना आर्थिक अभावों के कारण ही दिखाई देती हैं।

अपना घर बनाने की इच्छा भूमिहीन मजदूरों का एक सपना बनकर रह जाता है। वे अपने घर के बारे में कितना भी सोचें उनका वह स्वप्न अधूरा ही रह जाता है। वे औरों के घर तो बनाता है मगर वे अपना घर बना नहीं पाते। बाबे फत्तू का घर बनाने का स्वप्न भी पैसों की कमी के कारण अधूरा ही रह जाता है। वे कोशिश तो बहुत करते हैं। दिन-रात मेहनत करते हैं। दिन में रस्सियाँ बनाते हैं। शाम को घास खोदकर बेचते हैं फिर भी पक्का मकान बनाने का उनकी इच्छा पूरी नहीं होती। क्योंकि वे हमेशा पूँजीपतियों द्वारा शोषित होते रहे हैं।

"धरती धन न अपना" का किसान निम्न वर्गीय है। दलित है। जगदीशचंद्र ने बाल्यावस्था से ही इन्हीं हरिजन किसानों को दूसरों की जमीन में श्रम करते हुए देखा है। जगदीशचंद्र के मन में प्रायः यह बात बैठ गयी कि ये लोग जाति के स्तर पर, वर्ग के स्तर पर शोषित हो रहे हैं। इनके पास अर्थाभाव की वजह से

इनकी सामाजिक स्थिति में किसी तरह के परिवर्तन की गुंजाइश ही नहीं है। स्वयं लेखक ने अर्थशास्त्र विषय से जुड़े होने के कारण इन हरिजन भूमिहीन किसानों की सामाजिक दुरावस्था के पीछे के आर्थिक कारणों को ढूँढने का प्रयास किया है। इतना ही नहीं तो भारत के देहातों में वर्ण तथा जाति–पांति के स्तर पर होनेवाला भेदभाव देखकर जगदीशचंद्र का व्यक्तित्व विद्रोही होते गया। "धरती धन न अपना" के सृजन प्रेरणा संकेत जगदीशचंद्र को बाल्यावस्था से मिले थे। उनका मन प्राय: उद्विग्न रहता था। आर्थिक अभावों की चक्की में पीढ़ी–डर–पीढ़ी पिसते रहै। हरिजन किसान आज भी जिस भूमि पर रहते हैं, जिस जमीन को जोदते हैं और जिन छप्परों में वे रहते हैं, इनमें से कुछ भी उनका नहीं हैं। स्वतंत्र भारत में ये हरिजन किसान हर तरह से उपेक्षित है। इन्हीं के संघर्षों का चित्रण जगदीशचंद्र ने प्रस्तुत उपन्यास में बखूबी किया है।

जगदीशचंद्र ने दलितों, शोषितों, पीड़ितों पर होनेवाला अत्याचार स्वयं देखा था। इसलिए पूंजीवादी और अत्याचार करने वालों का विरोध किया है। शोषित और दलित किसानों का पक्ष लिया है। इससे स्पष्ट होता है कि जगदीशचंद्र मानवता के परिप्रेक्ष में समाज को देखते है। किसी भी अच्छे सृजनकर्ता के लिए मानवतावादी होना जरूरी है। अत: आधुनिक हिंदी साहित्य में किसान जीवन विषयक उपन्यासों की परंपरा में यदि प्रेमचंद आरंभ के बिन्दु पर दिखाई देते हैं तो फणीश्वरनाथ रेणू बीच के बिन्दु पर और जगदीशचंद्र आज के यथार्थ से इस परंपरा को समृद्ध करते हुए दिखाई देते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. "धरती धन न अपना", जगदीशचंद्र, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1995
2. आधुनिक हिंदी साहित, अज्ञेय, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1998

रामचंद्र शुक्ल और प्राच्यवाद

*ⁱ**सुश्री लया एन**

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग,

अय्य नाडार जानकी अम्माल महाविद्यालय (स्वायत्तशासी),

शिवकाशी, तमिलनाडु

***डॉ. सर्वेश्वर प्रताप सिंह**

(सहायक आचार्य, श्री महंथ रामाश्रय दास पीजी कॉलेज, भुड़कुड़ा, गाजीपुर)

"......प्राच्यवाद पूरब के ऊपर शासन करने, उसे संरचित करने और उसके ऊपर अधिकार जमाने की पश्चिमी शैली है।[1] "

.....ओरियंटलिजम : भूमिका

प्राच्यवाद यूरोपीय शासकों और बौद्धिकों द्वारा पूर्व के सन्दर्भ में निर्मित एक सार्वभौम दृष्टि है। इस दृष्टि ने पूर्व के विषय में कई मिथ्या अवधारणाओं को जन्म दिया है। इसका स्वरुप उसी तरह है जैसा हमारी फिल्मों ने आदिवासियों के सन्दर्भ में आमजन के मानस में रूढ़ि निर्मित किया है। प्राच्यवाद द्वारा पूर्व के विषय में इसी तरह की मिथ्या धारणाएँ यूरोपीय समाज में 'स्टीरियोटाइप' के रूप में फैलाई गयीं हैं। इस सन्दर्भ में टेरी ईगल्टन का एडवर्ड सईद के सन्दर्भ में एक रोचक संस्मरण है। टेरी ईगल्टन एडवर्ड सईद से अपनी पहली मुलाकात के विषय में बताते हैं – "वह 1978 का साल था। ओरिएंटलिज्म आई ही थी। मैंने अभी पढ़ना शुरू ही किया था। मैं और फ्रेड जेमसन येल से वापस अपने घर को वापस हो रहे थे कि रास्ते में कोलंबिया में एक सेमिनार के लिए हमें रुकना पड़ा, जो सईद द्वारा संचालित था। मेरा बड़ा बेटा हमारे साथ था और उसने सुन रखा था कि सईद अरब हैं। जब हम मिले तो उसे (बेटे को) बहुत निराशा हुई क्योंकि एडवर्ड सईद के साथ ऊँट नहीं था और न ही उनके सर पर वो अरबी कपड़े थे।"[2] दूसरी तरफ जिसके विषय में यह दृष्टि निर्मित की गई थी वे सहज ही यूरोपीय वर्चस्व के अधीन हो रहे थे। इसी बात को दृष्ट कर प्रेमचंद ने जनवरी 1931 में 'मानसिक पराधीनता' नाम से निबंध लिखा था। उन्होंने इस निबंध में लिखा है – "कल्चर (सभ्यता या परिष्कृति) एक व्यापक शब्द है। हमारे धार्मिक विचार, हमारी सामाजिक रूढ़ियाँ, हमारे राजनैतिक सिद्धांत, हमारी भाषा और साहित्य, हमारा रहन-सहन, हमारे आचार-व्यवहार, सब हमारे कल्चर के अंग हैं; पर आज हम कितनी बेदर्दी से इसी कल्चर की जड़ काट रहे हैं। पश्चिमवालों को शक्तिशाली देखकर हम इस भ्रम में पड़ गए हैं कि हममें सिर से पाँव तक दोष ही दोष हैं, और उनमें सिर से पाँव तक गुण ही गुण हैं।"[3]

वास्तव में औपनिवेशिक शासन को मात्र राजनीतिक साम्राज्यवाद के रूप में देखना सरलीकरण होगा। निर्मल वर्मा के शब्दों में कहें तो भारतीयों का "...अंग्रेजी राज के विरुद्ध संघर्ष महज राजनीतिक स्तर पर ही नहीं था, उस संघर्ष का एक गहरा महत्वपूर्ण सांस्कृतिक पहलू था, जहाँ भारतीय मनीषा की टक्कर सीधी उन

यूरोपीय मान्यताओं से होती थी, जिनका प्रतिनिधित्व अँग्रेज शासक करते थे।"[4] यथार्थ यह है कि ब्रिटिश शासन जितना राजनीतिक साम्राज्यवाद था उतना ही सांस्कृतिक साम्राज्यवाद भी था। यही कारण है, जिससे भारतीय नवजागरण का स्वरुप सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। बच्चन सिंह लिखते हैं –"इस नवजागरण का बहुत कुछ दायित्व दो संस्कृतियों की टकराहट में अपनी अस्मिता की पहचान में है। उपनिवेशवादी अँग्रेज यहाँ की संस्कृति को हेठी की दृष्टि से देखते थे।"[5]

आलोचना का कार्य है अपने समय और समाज को समझना, परंपरा का पुनर्पाठ और परिमार्जन, हाशिये की मुक्ति का पथ निर्मित करना तथा अपने समय और समाज के लिए विश्व–दृष्टि का निर्माण करना। आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु, प्रेमघन और भट्ट जी ने आलोचना के जिस पथ को सृजित किया था उस पथ को रूप देने का, अर्थवत्ता देने का और उसे दृष्टि देने का कार्य आचार्य शुक्ल ने किया। आचार्य शुक्ल ने आलोचना का भारतीय प्रतिदर्श तैयार किया। आपके द्वारा निर्मित आलोचना पश्चिमी ज्ञान और आलोचना के श्रेष्ठत्व के दंभ से भयभीत नहीं हुई। साम्राज्यवादी आलोचना के प्रभुत्वादी–दृष्टि के विरुद्ध आपकी आलोचना में स्वजाति के प्रति निष्ठा और स्वातंत्र्य का भाव है। आपने अपनी परंपरा, इतिहास और संस्कृति को दासता की छाया से बचाने का पूर्ण प्रयास किया और उस कार्य में सफल भी हुए। हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन हो या फिर आलोचनात्मक लेखन, आपने दोनों ही क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान–परंपरा और संस्कृति को पराधीनता के उस समय में भी प्रतिष्ठित किया। पराधीनता के उस समय में औपनिवेशिक प्राच्यविद मैक्समूलर और उसके अनुयायियों की परम्परा, जिसमें 'इलीट' भारतीय भी शामिल थे, भारत को असभ्य और बर्बर जाति की संस्कृति के रूप में निर्मित कर रहे थे। ऐसे समय में तत्कालीन हिंदी संस्कृतिकर्मी और शुक्ल जी इस समस्या की ओर गंभीरता से आकृष्ट हुए और भारतीय आलोचना का पथ निर्मित करने में सफलता प्राप्त किये। इस मार्ग को कुछ अंतर्विरोधों और सहमतियों–असहमितियों के साथ आगे चलकर हिंदी आलोचना में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और रामविलास शर्मा ने और चौड़ा किया। पर शुक्ल द्वारा चलायी इस परंपरा को ज्यादातर आलोचकों ने दरकिनार कर दिया। डॉ. नगेन्द्र ने आयातित मनोविश्लेश्नात्मक आलोचना के जिस मार्ग को खोला, बाद में हिंदी की नयी आलोचना ने उसी का पूँछ पकड़कर कर चल पड़ी और नित नए यूरोपियन और अमेरिकन 'थ्योरी' से हिंदी आलोचना को चमत्कृत करने लगे। हिंदी आलोचना का मार्ग अवरुद्ध हो चला। हिंदी आलोचना के इस पश्चात्यवादी बौद्धिक रीतिकाल पर विनोद शाही की यह टिपण्णी सार्थक और उचित है – "हमारा मौलिक आलोचना सिद्धांत कहाँ है? किस बुनियादी मसले के साथ वह जुड़ा है? आजादी से पहले आचार्य शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना में जो तेजस्विता नजर आती थी, वह उत्तर आलोचकों में गायब है, क्योंकि हम जिससे लड़ते हुए उस अंतर्तेज को पा रहे थे, उसके रुखसत होते ही हमारी लड़ाई अधर में लटक गयी और परमुखापेक्षिता ही आधुनिकता का, और यहाँ तक कि विकास का लक्षण मान ली गयी। अचानक क्या हुआ कि अतीत की महानता और श्रेष्ठता भी हमारे लिए प्रेरणास्त्रोत नहीं रही? गंगोत्री के सूख जाने पर हमारे आलोचकों ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'वहां पीछे इतनी दूर तक मत जाइये, कहीं वापस लौटना ही मुश्किल न हो जाये' (रामविलास शर्मा के ऋग्वेद की ओर पीछे लौटने पर यह नामवर सिंह की 'इतिहास की शवसाधना' शीर्षक वाली समीक्षा में एक सलाह की तरह है।)।"[6]

रामचंद्र शुक्ल ने न तो आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का विरोध किया और न ही अन्धानुकरण किया और न ही कहीं आत्म-मुग्धता से ग्रस्त हुए। शुक्ल की आलोचना यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित है। यही कारण है कि न तो उसमें देशी अतिवाद का सम्मोहन है और न ही विदेशी प्रभाव से उत्पन्न दासपन। आपकी आलोचना में सत्य का आग्रह है और भारतीय ज्ञान-परंपरा और पाश्चात्य-ज्ञान-परंपरा का निष्पक्ष सामंजस्य। आपकी आलोचना की कसौटी भारतीय परिस्थितियों के पर्यालोचन से निर्मित स्वविवेक है जिसके कारण आप जितनी सहृदयता से तुलसी और सूर की आलोचना करते हैं उतनी ही सहृदयता से महाकवि जायसी की। यही निष्पक्ष स्वविवेक आपकी आलोचना में सर्वत्र विद्यमान है जो निरंतर भारतीय आलोचना के भारतीय प्रतिदर्श को निर्मित करने का प्रयास करता रहा है। कबीर की आलोचना के विषय में शुक्ल जी की दृष्टि पर आपत्ति उठाई गयी है। पर उन लोगों को यह बात समझना चाहिए कि शुक्ल जी सांप्रदायिक प्रवृत्तियों के विरोधी रहे है और सामाजिक समरसता के हिमायती रहे हैं। उनकी आलोचना की सामाजिक दृष्टि कृष्ण काव्यधारा की प्रेमलक्षणा भक्ति की अतिशयता की आलोचना करती है तो निर्गुनियों की रहस्यात्मक प्रवृत्ति की भी। तुलसी के समन्वयवादी दृष्टि में उदात्त सौन्दर्य देखते हैं तो निर्गुण भक्तों के वासनारहित प्रेम की प्रशंसा भी करते हैं। वे कहते है -"...कबीर का 'ज्ञान पक्ष' तो रहस्य और गुह्य की भावना से विकृत मिलेगा पर सूफियों से जो प्रेमतत्व उन्होंने लिया वह सूफियों के यहाँ चाहे कामवासनाग्रस्त हुआ हो, पर 'निर्गुणपंथ' में अविकृत रहा। यह निस्संदेह प्रशंसा की बात है। वैष्णवों की कृष्णभक्ति शाखा ने केवल प्रेमलक्षणा भक्ति ली; फल यह हुआ कि उसने अश्लील विलासिता की प्रवृत्ति जगाई । रामभक्ति शाखा में भक्ति सर्वांगपूर्ण रही; इससे वह विकृत होने न पाई। तुलसी की भक्तिपद्धति में कर्म (धर्म) और ज्ञान का पूर्ण सामंजस्य और समन्वय रहा।"[7] शुक्ल जी न तो केवल प्रेम पर आधारित भक्ति के समर्थक थे और न कोरे ज्ञान आधारित भक्ति के। भक्ति वही जिसमें श्रद्धा, प्रेम और ज्ञान सभी घुलमिल जाएँ। नायक वही जो समाज में लोकमंगल और क्षात्र-सौन्दर्य की स्थापना के लिए व्यक्तिगत सुखों की परवाह न करे और संघर्ष के हवनकुंड में तपकर विभूति प्राप्त कर ले। परन्तु भूमंडलीकरण के नव-औपनिवेशिक दौर में व्यक्ति सुविधाभोगी बनता जा रहा है। नव-औपनिवेशिक शक्तियाँ अमेजन, फ्लिप्कार्ट जैसी वैश्विक कंपनियों के द्वारा 'घर पर ही' बाजार की सुविधा मुहैया करवा रही हैं। अमेरिका को पता है कि सुविधाभोगी समाज से संघर्ष की शक्ति शनैः-शनैः क्षीण हो जाएगी और जिस कंपनी के शासन से भारत और तीसरी दुनिया के देश सैकड़ों वर्ष संघर्ष करके मुक्ति पायें हैं वे फिर से एक बौद्धिक कंपनी की गुलामी को ओर अग्रसर हो जायेंगे। यह सुविधापरस्ती हिंदी साहित्य और आलोचना में भी दिखाई दे रही है। अमेरिकी बहुलतावादी विचारधारा पाठ के विखंडन की राजनीति खेल रही है और समाज को खण्डों में बाँट रही है। अमेरिकन विश्वविद्यालय विचारों के माल तैयार कर रहे हैं और सर्वत्र उनका उपयोग हो रहा है। जिस पश्चिमी रहस्यवाद और कल्पनालोक का विरोध शुक्ल जी करते रहे हैं और छायावाद की इस प्रवृत्ति को तोड़ने के लिए संघर्ष किये। वह रहस्यवाद अमेरिका इन्टरनेट-तकनीकी और फिल्मों के जरिये परोस रहा है। यह संकट आलोचना के लिए अत्यंत गंभीर है। ऐसे में शुक्ल की आलोचना का पुनर्पाठ करना नितांत आवश्यक हो गया है। शुक्ल जी की तरह हमें भारतीय आलोचना के स्वयं का प्रतिदर्श निर्मित करने का संघर्ष करना चाहिए । जैसा शुक्ल के प्रभाव से हजारीप्रसाद जी ने विकसित किया था जो सर्वगीण रूप से भारतीय था।

हिंदी आलोचना और व्यापक स्तर पर पूरी भारतीय आलोचना के लिए सबसे बड़ी समस्या है पश्चिम द्वारा संचालित मानसिक शासन से मुक्ति पाना। इसके लिए आवश्यक है कि इतिहास की सही व्याख्या की जाय। रामशरण शर्मा अपनी पुस्तक 'भारतीय इतिहास : एक पुनर्विचार' में इस समस्या की ओर ध्यान दिलाते हैं –"मैक्समूलर तथा अन्य पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन भारतीय समाज और इतिहास के बारे में कुछ सामान्य विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने कहा कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास का एहसास नहीं था, खासकर समय और घटनाओं की श्रृंखला के बारे में। उन्होंने जोर देकर कहा कि भारतीयों को निरंकुश शासन की आदत थी। उन्होंने आगे जोड़ा कि चूँकि भारतीय परलौकिक दुनिया में डूबे हुए थे इसलिए उन्हें इस विश्व की समस्याओं की कोई चिंता नहीं थी। पश्चिमी विद्वानों ने जोर दिया कि भारतीयों को न राष्ट्रवाद का अनुभव था और न ही किसी भी प्रकार के स्व-शासन का।"[8] और आगे लिखते है – "अंग्रेजों द्वारा अपने इन 'निष्कर्षों' प्रचार के पीछे असली मकसद यह दर्शाना था कि भारतीय अपना शासन खुद चलाने के काबिल थे ही नहीं।"[9] भारतीयों को अपंग बताकर उनमें हीनता का भाव पैदा करना औपनिवेशिक काल का प्रमुख एजेण्डा रहा है। जिसके कारण निर्मित बौद्धिक गुलामी के राजनीतिक परिणामों पर शम्भुनाथ जी लिखते हैं– "एक समय जिस तरह उपनिवेशकों के साहित्य ने भारत के पढ़े-लिखे लोगों के बौद्धिक उपनिवेशन में एक बड़ी भूमिका निभाई थी, इसी तरह पश्चिम से एक के बाद एक एक आनेवाले सिद्धांत हिंदी में इस तरह चर्चित होते रहे हैं, जैसे ये वैश्विक परिप्रेक्ष्य हों, जबकि ये यूरोपीय दृष्टिकोण भर थे। हिंदी के कई लेखक इन सिद्धांतों के पीछे ऐसे दौड़ते रहे हैं, जैसे सोने की पतंग लूट रहे हों !"[10] सोने की पतंग लूटने वालों को आगाह करते हुए शुक्ल जी ने कहा है – "किसी साहित्य में केवल बाहर की भद्दी नकल उसकी उन्नति या प्रगति नहीं कही जा सकती। बाहर से सामग्री आये, खूब आये, पर वह कूड़ा-कर्कट के रूप में न इकट्ठी की जाये। उसकी कड़ी परीक्षा हो, उसपर व्यापक दृष्टि से विवेचन किया जाये, जिससे हमारे साहित्य के स्वतंत्र और व्यापक विकास में सहायता पहुँचे।"[11]

प्राच्यवाद एक आलोचना पद्धति है जो कि युरोप के रास्ते भारत आया। उपनिवेशवाद और प्राच्यवाद एक सिक्के के दो सिरे हैं। इस प्रसंग में शम्भुनाथ की टिपण्णी है – "भारतीय चित्त में पश्चिम एक साथ उपनिवेशक और बौद्धिक सहयात्री दोनों रूप में सामने आया है। यही वजह है कि रामचन्द्र शुक्ल यदि एक तरफ भारत के बारे में यूरोपियन बुद्धिजीवियों के पौवार्त्यावादी सोच का विरोध करते हैं, अपना चित्त खुला रखकर यूरोपीय साहित्य से प्रेरणा भी लेते हैं। वह बंद दिमाग के आलोचक नहीं थे, उनमें खुलापन था। इसलिए उनका यूरोप से द्वंदात्मक सम्बन्ध स्वाभाविक था। वह निश्चय ही भारतीय परंपरा की बहुत सी खामियों से परिचित थे। भारतीय अतीत में सब कुछ सारवान है, ऐसा नहीं सोचते थे, लेकिन भारत को सर्वथा पिछड़ा, आध्यत्मिक और असभ्य समझने की औपनिवेशिक यूरोपीय दृष्टि का वह पुरजोर विरोध करते थे। हम पते हैं कि उनमे भारत के अतीत को लेकर न अनावश्यक दंभ है और न बौद्धिक उपनिवेशवाद के दबाव से उन्हें यूरोप ज्ञान के एक मात्र आलोकस्तंभ के रूप में दिखता है। यही वजह है कि वह अतीत की कूपमंडूकता का विरोध करते हुए भी भारत-सम्बन्धी ज्ञान पर पश्चिमी दृष्टिकोण के वर्चस्व से खुलकर संघर्ष करते हैं।"[12] इस सन्दर्भ में शुक्ल जी ने स्वयं लिखा है –"हमारा यह तात्पर्य नहीं कि योरप के साहित्यक्षेत्र में उठी हुई

बातों की चर्चा हमारे यहाँ न हो। यदि हमें वर्तमान जगत के बीच से अपना रास्ता निकालना है तो वहाँ के अनेक 'वादों' और प्रवृत्तियों तथा उन्हें उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का पूरा परिचय हमें होना चाहिए। उन वादों की चर्चा अच्छी तरह हो, उनपर पूरा विचार हो और उनके भीतर जो सत्य छिपा हो उसका ध्यान अपने साहित्य के विकास में रखा जाय। पर उनमे से कभी इसको कभी उसको, यह कहते हुए सामने रखना कि वर्तमान विश्व साहित्य का स्वरुप यही है जिससे हिंदी साहित्य अभी बहुत दूर है, अनाड़ीपन ही नहीं, जंगलीपन है।"[13] अर्थात यूरोप की विचारधाराओं का अध्ययन और विचार-विमर्श वांछित है और महत्वपूर्ण भी परन्तु उसी को 'विश्वदृष्टि' मानकर स्वयं को निर्मित करना मात्र युरोप-मुग्धता है और कुछ भी नहीं। यूरोपीय विचारों के अन्धानुकरण का विरोध करते हुए लिखते हैं – "...योरप के साहित्य क्षेत्र में फैशन के रूप में प्रचलित बातों को कच्चे-पक्के ढंग से सामने लाकर कुतूहल उत्पन्न करने की चेष्टा करना अपनी मस्तिष्कशून्यता के साथ ही साथ हिंदी पाठकों पर मस्तिष्क शून्यता करना है। काव्य और कला पर निकलने वाले भड़कीले लेखों में आवश्यक अभिज्ञता और स्वतंत्र विचार का अभाव देख दु:ख होता है।"[14] विचारों को योरोपीय मानसिकता से मुक्त करना गाँधी जी का भी उद्देश्य रहा है। गाँधी जी इस सत्य से अवगत थे कि जब तक हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वावलंबी नहीं बनेगे तब तक देश पराधीन रहेगा। इसी को भारतेंदु ने भी बार-बार कहा है।

भारत के लिए 1835 का वर्ष बहुत महत्वपूर्ण रहा है। इसी वर्ष भारत में पाश्चात्य आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का प्रसार किया जाये या न किया जाये, के विवाद का निराकरण किया गया । इस विषय में भारत सरकार ने मैकाले की अनुशंशा पर यह निर्णय दिया कि भारतीय भाषाएँ इतनी संपन्न नहीं हैं कि उसमें आध ुनिक शिक्षा का प्रसार हो सकेगा। इसलिए भारत सरकार जो भी सीमित संसाधन उपलब्ध कराएगी वह केवल अंग्रेजी के माध्यम से देगी और 'प्राच्य विद्या यूरोपीय विद्या से बिल्कुल निकृष्ट है।'[15] इस तरह से अंग्रेजी भाषा का शिक्षा का माध्यम बनना दो रूपों में भविष्य के लिए घातक सिद्ध हुआ। पहला, एक अंग्रेजी विचारध ारा संपन्न वर्ग तैयार हुआ जो कि वर्तमान समय तक भारत को पराधीन बनाया हुआ है और दूसरा, भारतीय भाषाओं को हीन बताकर अंग्रेजी की श्रेष्ठता के लिए मार्ग बना देना। यह हीनताबोध वर्तमान में भी मौजूद है। शुक्ल जी का हिंदी का पक्ष लेना मात्र निज भाषा प्रेम नहीं है अपितु उसके जड़ में भारतीय आलोचना को आत्मनिर्भर बनाना है। हिंदी तत्कालीन गाँधीवादी-युग में साम्रज्यवाद-विरोध और अखिल भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की प्रतीक थी। ऐसे समय में हिंदी के विकास और संपन्न बनाने के प्रयास के लिए उन्होंने भारतेंदु की प्रशंसा करते हुए लिखा है : "बड़ा भारी काम भारतेंदु ने यह किया कि स्वदेशाभिमान, स्वजाति-प्रेम, समाज-सुधार आदि की आधुनिक भावनाओं के प्रवाह के लिए हिंदी को चुना तथा इतिहास, विज्ञान, उपन्यास, पुरावृत्त इत्यादि अनेक समयानुकूल विषयों की ओर हिंदी को दौड़ा दिया।"[16] यह कथन प्रशंसा मात्र ही नहीं है बल्कि हिंदी भाषा को हर प्रकार से संपन्न बनाने की चिंता भी समायी है। शुक्ल जी की चिंता मात्र इतना भी नहीं है। उनके सामने हिंदी-भाषा के प्रति बुद्धिजीवियों के हीनताबोध की चिंता भी है : "इस कालखंड के बीच हिंदी लेखकों की तारीफ में प्राय: यह कहा-सुना जाता रहा कि ये संस्कृत बहुत अच्छी जानते हैं, ये अरबी-फारसी के पूरे विद्वान हैं, ये अंग्रेजी के अच्छे पंडित हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी कि ये हिंदी बहुत अच्छी जानते हैं। यह मालूम नहीं होता था कि हिंदी भी कोई जानने की चीज है।"[17]

प्राय: शुक्ल को ब्रहामणवादी कहकर उनपर जातिवादी होने का आरोप लगता रहा है। परन्तु बिना प्रमाण का आरोप लगाना अनुचित ही है। यह जरूर है कि वे वर्णाश्रम धर्म और क्षात्र धर्म का समर्थन करते हुए दिखते हैं लेकिन जातिवाद का समर्थन वे नहीं करते हैं। जाति को भारतीय समाज के विकास में अवरोध मानते हैं और जाति के पाखंड की आलोचना करते हुए लिखते हैं – "जाति पूर्वी सभ्यता की देन है। विश्व में और कहीं भी इसका अस्तित्व नहीं है। मानवता का (यह) रूढ़ विभाजन स्वार्थी पंडितों द्वारा छद्म धर्म में जोड़ा गया पृष्ठ भाग है। वे निर्धन पद दलितों की कीमत पर खुद को समृद्ध करते है, आनंद लेते हैं और अज्ञानी जनसमूह की सामान्य भ्रांतियों को बढ़ाते हैं। इससे भी अधिक ये पंडित अनुशासन या शासन के नाम पर उनके लिए हर प्रकार की गालियाँ और अनाप-शनाप बकवास रचते हैं। समाज की राजनीतिक और आर्थिक संरचना इन्हें अधिक ताकतवर बनाती है।"[18] स्पष्टत: कहते हैं कि "....जाति व्यवस्था ने वर्गीय भावना और वर्गीय अहम का पोषण किया है। इसे यदि समाप्त नहीं किया गया तो भारतीय संस्कृति और शिष्टता, राष्ट्रभक्ति और देशभक्ति की मृत्यु निश्चित है।"[19]

यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि शुक्ल जी ने यूरोप की उस दृष्टि का विरोध किया है जो कि साम्राज्यवाद की पोषक और यूरोपीय श्रेष्ठत्व का दंभ भरती थी। शुक्ल जी का न तो आधुनिकता से विरोध था न उसकी वैज्ञानिक दृष्टि से। शुक्ल ने न तो परंपरा का अन्धानुकरण किया न ही आधुनिकता का। एक तरफ 'रिडल्स ऑफ यूनिवर्स' का 'विश्व प्रपंच' (1920) नाम से अनुवाद करते हैं तो दूसरी ओर यूरोपीय रहस्यवाद का विरोध खुलकर करते हैं और इसी आधार पर छायावाद का विरोध भी। शुक्ल जी के सन्दर्भ में गोपेश्वर सिंह का कथन सर्वथा प्रासंगिक है, "उनके मानस का निर्माण बीसवी सदी की वैज्ञानिक उपलब्धियों की रोशनी में हुआ है। वे ज्ञान-विज्ञान के नए विचार का स्वागत करते हैं, चाहे वह पश्चिम से ही क्यों न आते हों। वे न अपना सर्वोत्तम छोड़ते हैं और न पश्चिम के सर्वोत्तम से मुँह मोड़ते हैं।"[20]

संदर्भ ग्रंथ

1. वर्चस्व और प्रतिरोध, एडवर्ड डब्ल्यू. सईद अनु. रामकीर्ति शुक्ल, नयी किताब दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृ. 38
2. पल-प्रतिपल-80, सं. देश निर्मोही, पे, 154, अंक 80, जुलाई-दिसंबर 2016
3. प्रेमचंद के श्रेष्ठ निबंध, सं. सत्यप्रकाश मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 2015, पे. 25
4. शब्द और स्मृति, निर्मल वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं. 2011, पृ. 89
5. हिंदी साहित्य का इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, आठवाँ संस्करण 2016
6. प्राच्यवाद और प्राच्य भारत, विनोद शाही, आधार प्रकाशन (पंचकूला) प्रथम पेपरबैक संस्करण 2015, पृ. 14
7. हिंदी साहित्य का इतिहास, आ. रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, पुनरावृत्ति 2016 पृ. 42
8. भारतीय इतिहास : एक पुनर्विचार, लेखक रामशरण शर्मा, अनुवादक अनिल राजिमवाले, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2015, पृ. 22
9. भारतीय इतिहास : एक पुनर्विचार, लेखक रामशरण शर्मा, अनुवादक अनिल राजिमवाले, हिंदी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2015, पृ. 22

10. उपनिवेशवाद और हिंदी आलोचना (रामचंद्र शुक्ल का वैचारिक संघर्ष), शम्भुनाथ, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, पृ. 24
11. हिंदी साहित्य का इतिहास, आ. रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, पुनरावृत्ति 2016 ,पृ. 29
12. उपनिवेशवाद और हिंदी आलोचना (रामचंद्र शुक्ल का वैचारिक संघर्ष), शम्भुनाथ, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, पृ. 30
13. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2016, पृ. 366
14. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2016, पृ. 393
15. आधुनिक भारत का इतिहास, विपिन चन्द्र, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, 2015, पृ. 110
16. चिंतामणि पहला भाग, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2015, पृ. 113
17. हिंदी साहित्य का इतिहास, आ. रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, पुनरावृत्ति 2016 पृ. 345
18. रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली भाग चार, सं. ओम प्रकाश सिंह, राजकमल प्रकाशन, पृ. 203
19. रामचंद्र शुक्ल ग्रंथावली भाग चार, सं. ओम प्रकाश सिंह, राजकमल प्रकाशन, पृ.202
20. सामयिक सरस्वती, सं.महेश भरद्वाज, जनवरी–मार्च 2018, पृ. 21

हिन्दी कहानियों में आदिवासी स्त्रियों की अभिव्यक्ति

डॉ० विकास कुमार
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़, उ०प्र०

हिन्दी कहानी हिन्दी साहित्य की एक नवीन विधा है, हिन्दी कहानी अपने जन्म के बाद अपने विकास की यात्रा में बहुत जल्द ही अपने को हाशिए के समाज से जोड़ लिया। आजादी के बाद की कहानियों में उसकी जड़ें गहरी होती गयी और भूमण्डलीकरण दौर आते ही हिन्दी कहानियों में भारतीय समाज के सबसे निचले पायदान की आवाज गूँजने लगी। भारतीय समाज में सबसे ज्यादा आदिवासी उपेक्षित हुए हैं, आदिवासियों में भी आदिवासी स्त्रियाँ आखरी पायदान पर खड़ी हैं। भूमण्डलीकरण ने आदिवासी के जीवन को रौंद डाला इस प्रक्रिया के कारण आदिवासियों का बहुत बड़ा हिस्सा विस्थापित जीवन जीने को अभिशप्त हो गया।

हिन्दी कहानी में आदिवासियों के जीवन की अभिव्यक्ति 1990 के पहले लगभग न के बराबर हुई भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने आदिवासी संस्कृतियों को बहुत गहरे रूप से प्रभावित किया था। यूं कहें तो उनकी संस्कृति को नष्ट करने के लिए सशक्त एवं सुनियोजित हमला किया। आजाद रहना और प्रतिरोध करना उनकी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा था। परिणामस्वरूप आदिवासी स्त्रियों का जीवन बेहद संकटग्रस्त हो गया और उसकी अस्मिता तथा अस्तित्व पर खतरा मंडराने लगा। परिणामस्वरूप उनका प्रतिरोध भी बढ़ने लगा। आज आदिवासी समाज के स्त्रियों के जीवन के यथार्थ के दो पहलू हैं एक तरु तो अस्मिता और अस्तित्व के संकट से गुजर रही है तो दूसरी तरु उनकी रक्षा में तनकर खड़ी हो रही है। 1990 के बाद की कहानियों में आदिवासी स्त्रियों के जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। भूमण्डोत्तर दौर की जिन कहानियों में उनका जीवन अपने पूरे यथार्थ के साथ अभिव्यंजित हुआ है उन कहानियों में 'रात बाकी' (रणेन्द्र), 'जोड़ा हारिल की रूपकथा' (राकेश कुमार सिंह), 'बेला एक्का पर लौट रही है' (अरूण प्रकाश), 'राजकुमारों के देश में' (पीटर पाल एक्का), 'खारा पानी' (जयश्री राय) इत्यादि कहानियाँ महत्वपूर्ण हैं। ये कहानियाँ उनके जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है और उनकी बेगुनाही का सशक्त हलफनामा है। 'जोड़ा हारिल की रूपकथा' कहानी में जंगल पुलिस (वनपाल) लड़कियों की बांह पकड़ लेते थे, साथ सोने को बोलते थे। आदिवासियों की इज्जत दातून हो गयी थी जिसे तोड़-चबाकर फाड़ फेंकते थे फारेस्टगार्ड आंवें की भाँति सुलग रहे थे मुण्डा। इसी बीच कोढ़ में खाज एक साँझ पलाशखण्ड की देमुनिया की बेपर्द खूनमखून लाश जंगल के किनारे मिली तो आंवें धुआं उठे।"[1]

राजकुमारों के देश में कहानी में आदिवासी मंगलू काका की बेटी के साथ उस रात पूरन पण्डित, पटेल साब दरोगा बाबू एक साथ उस छोटी मासूम, पवित्रा बेफिक्र झोपड़ी तक चले आये थे। जंगली जानवर और बहशी हो गये थे और गाँव वाले जानते हुए भी, नहीं देखने–सुनने का बहाना बना रहे थे। छोटी सी दुनिया लुट गयी थी।[2] “बेला एक्का घर लौट रही है” कहानी में बेला एक्का एक आदिवासी लड़की है जो आध्यात्मिक होकर आदिवासी इलाके से निकल कर मुगलसराय शहर में पढ़ाने के लिए जाती है लेकिन वहाँ के समाज में बंध नहीं पाती है। वह आत्महत्या करने की कोशिश करती है और टूट जाती है। बेला एक्का एक पढ़ी लिखी आदिवासी स्त्री है। एक आदिवासी स्त्री जब मुख्यधारा के समाज से जुड़ती है तो मुख्यधारा के लोग उसे किस नजरिए से देखते हैं उन्होंने किन–किन मुसीबतों का सामना करना पड़ता है इसका जीवन्त चित्रण इस कहानी में हुआ है। शिक्षिका बेला एक्का जब अपने लम्पट अधिकारी जगदीश सिंह के खिलाफ ऊपर के अधिकारियों से शिकायत कर देती है तो समाज कल्याण अधिकारी जगदीश सिंह के गुर्गे उन्हें विद्यालय निकलते समय सब्जी मण्डी में घेर लेते हैं। छोटे–छोटी घटनाओं से आहत होकर पूरी तरह से टूट जाती है और इस फैसले पर पहुँचती है कि आदिवासियों के लिए मुख्यधारा में कोई स्थान नहीं है। अंततः इस्तीफा देकर अपने गाँव वापस चली जाती है। यह इस्तीफा पूरे आदिवासी समाज की मुख्यधारा से इस्तीफा है।

जयश्री राय की “खारा पानी” गोवा के मछुआरे आदिवासियों के जीवन पर आधारित है। खारे जल के गहरे नीले पानी में जहाज के बड़े–बड़े धब्बे उभर आये हैं। जयश्री राय की यह कहानी समन्दर की लहरों में बसे उन्हीं लाखों लोगों को विस्थापित होने, उनके सांस्कृतिक विरासत को नष्ट होने और उनके सामाजिक ताने–बाने के छिन्न–भिन्न हो जाने की कहानी है। जिसमें मछुआरे आदिवासियों के जन–जीवन को पूरी तरह से उभरता दिखाई दिया है। कहानी के मुख्य पात्र दया और उसकी प्रेमिका रूपा द्वारा आदिवासी स्त्रियों की अनेक समस्याओं को उभारा गया है। यह कहानी पुलिस पर, सरकार पर, नेताओं पर एन०जी०ओ० और विकास के मौजूदा मक्कडल पर गहरे सवाल उठाती है।

रणेन्द्र द्वारा लिखित कहानी “रात बाकी” झारखण्ड के आदिवासियों के जीवन पर आधारित है। यह कहानी झारखण्ड में बन रहे दुर्गावती बांध के आस–पास इलाके से शुरू होती है और पूर्ण होते तमाम विषयों भारतीय राजनीति, राजनीति में सामंती ताकतों का बोलबाला राजनीति और प्रशासन में अन्तर्विरोध यथार्थ और विकास का मक्कडल अपने में समेट लेती है। यह कहानी ‘सनलाइट सेना’ जैसी सामंती सेनाओं द्वारा आम आदिवासी जनता के कत्लेआम को उजागर करती है। कहानी विस्थापन के कारणों, विस्थापितों की आन्दोलन करने की मजबूरी के चित्रण के साथ–साथ नरसंहार के जिम्मेदार प्रशासन और राजनेताओं की मिलीभगत खेल का भी बहुत जीवंत और प्रामाणिक चित्रण पेश करती है। कहानी जनता के पक्ष में खड़े होने की कोशिश करने वाले जे०एन०यू० विश्वविद्यालय के अधिकारी बने छात्रों की वैचारिक पक्षधरता को दर्शाती है। आदिवासियों के लिए बहुत कुछ करना चाहते हुए भी ए०एस०पी० सिद्धार्थशाही और सी०ओ० नरेन्द्र द्वारा कुछ न कर पाना इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है यह कहानी एक ओर ध्यान खींचती है कि शासन प्रशासन से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति आदिवासी समाज से अपने–अपने नजरिए के साथ अपने–अपने फायदे के लिए जुड़ता है। आदिवासियों का हित सर्वोपरि हो इस नजरिए से जुड़ने वालों की संख्या बहुत कम है। बाढ़ से होने वाले विस्थापन को रोकने

और आदिवासियों की जिन्दगी को सुन्दर बनाने की कोशिश करते लिबरेशन आर्मी आम जनता और आदिवासी जनता को सताने वाली 'सनलाइट सेना' के बीच का संघर्ष अन्त में सामने आया है। विस्थापन का विरोध कर रही आदिवासी जनता पर सनलाइट सेना रात में हमला कर देती है वह सामूहिक नरसंहार रचाती है। उसमें शासन भी मिला होता है। उस नरसंहार में आदिवासी नेत्री पुष्पा बुरी तरह से घायल हो जाती है, उनके साथ बलात्कार भी होता है और पूरा आन्दोलन तितर–बितर हो जाता है।

कुल मिलाकर आदिवासी स्त्रियाँ आयेदिन मारपीट, हत्या और बलात्कार जैसे अमानवीय घटनाओं का शिकार हो रही है। जंगल विभाग, ठेकेदार, प्रशासन तीनों तरफ से आदिवासियों को लूटा जा रहा है। उनका घर जंगल उनसे छीना जा रहा है और उनकी अस्मिता और अस्तित्व पर संकट बढ़ता जा रहा है। प्रतिरोध के रास्ते पर चलते हुए मिटते जाना उनकी मजबूरी और उनका यथार्थ बनता जा रहा है। आज भी आदिवासी स्त्रियाँ अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. केदार प्रसाद मीणा (सम्पादक), आदिवासी कथा जगत, अनुज्ञा प्रकाशन, नई दिल्ली (2016)
2. रणेन्द्र– 'रात बाकी एवं अन्य कहानियाँ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2010)
3. अरूण प्रकाश 'बेला एक्का घर लौट रही है', अवंतिका प्रकाशन गाजियाबाद (2013)
4. जयश्री राय 'खारा पानी', www हिन्दी समय डाट कॉम

PART – II

Vol. XX Issue No. II, May–August 2023, ISSN: 0970-1745 **Impact Factor 5.875**

Intellectual Property Rights in Modern Global Environment

Aditya Kumar Yadav,
Research Scholar, Deptt. Of Law, T.D. Law College, Jaunpur

Introduction

Nowadays, the tremendous growth in creative literature in recent years highlights the importance of technology and innovation in the world of technology, business and our daily lives. Getting out of bed, drinking a glass of Nestlé milk and Britannia bread while watching Sony TV for breakfast, showering with Lux soap, wearing Peter England clothes, Bata shoes and a Titan watch, driving the BMW to work, ordering lunch from Zomato, drinking Nescafe coffee in the evening. With a sipping Lenovo laptop, you are busy with smart devices from morning to night

Intellectual property (IP) refers to creations of the human mind such as inventions, writings and drawings, as well as symbols, names, images and designs used in business. Intellectual property is divided into two groups: property, which includes inventions (patents), trademarks, designs and historical domains; Tradition that includes writing and art such as stories, poetry and drama, films, music, and art. , paintings, paintings and sculptures, as well as other artistic works and architectural designs. Relevant copyright rights include artists' rights to their performances, phonogram producers' rights to sound recordings, and telephone, air and television broadcasting rights. Intellectual property protects the interests of inventors by transferring intellectual property rights to their inventions. An effective and fair policy benefits everyone, including consumers and consumers.

The idea of intellectual property is not new, as the revival of northern Italy is considered the cradle of intellectual politics. The Venetian Code of 1474 was the first attempt to protect inventions in the form of patents and was the first to grant exclusive rights to individuals. In the same century, Johannes Gutenberg invented the movable press and printing press around 1450, which led to the beginning of the world's first copyright. By the end of the 19th century, new and innovative methods of production led to large-scale industrialization, along with rapid

urban growth, expansion of railway networks, capital investment, and increased transoceanic trade. New economic ideas, the emergence of strong central governments, and religion led to the creation of modern laws in many countries. At this time, the international intellectual property rights system began to take shape with the establishment of the Paris Convention for the Protection of Industrial Property in 1883 and the Berne Convention for the Protection of Literary and Artistic Works in 1886. Throughout the history of intellectual property, ownership of production and recognition and rewards for creative work have encouraged greater production and ownership, leading to economic growth. Over time, especially in today's business paradigm, ideas and information have become an important part of business. Much of the value of new technologies and medicines depends on the innovation, innovation, research, development and testing involved. Movies, music, books, computer software, and online services are generally bought and sold for the materials they contain and manufacturing, not for the plastic, metal, or paper used to make them. Many products that were once marketed as low-cost or commodity products now include more design and manufacturing into their prices, such as designer clothing or new factories. Therefore, Creators have the right to prevent others from using their inventions, designs or other works. These rules are called the rules of wisdom.

What is known as a patent ?

A patent is an exclusive right given to the inventor over his invention, which may also include the right to provide a new product or process. A way of doing something or offering a new solution to a problem. Some of the advantages of applying for a patent are that the patent holder has the freedom to use their own patent, which helps prevent others from making, selling or using the patented invention for a certain period of time and helps protect competitors. Patents can be commercialized through assignment or licensing. Patent transfer, in short, is selling patents. It is based on a transfer agreement in which the ownership is fully and completely transferred from the patent owner to a third party. A patent license allows others to use the patent under control and helps the patent owner generate income while ensuring the security of the patent owner.

Patents are used to maintain how things work. Patents are legal rights to new and useful products. Registration of a patent provides the inventor with the exclusive right to exploit it commercially during the patent term. The owner also has the right to license others to make, use or sell the product or the products it produces. Unlike copyrights, patent protection cannot be granted. The patent application must be made and the invention must not have been disclosed beforehand.

What is a trademark?

A trademark is a sign, symbol, word or phrase legally registered or created to represent a company or product and that can distinguish the product or service of one business from another. The benefits of registering a business are: The business owner owns the business, creates happiness and trust for the business among customers, helps different customers and recognizes the quality of the product, protects the trademark from infringements and finally helps the business. The owner makes money.

Trademark is a branch of intellectual property. Intellectual property rights allow people to retain ownership of their new products and creative works. Intellectual property can be compromised through human activities and is therefore subject to significant registration and infringement fees. Types of intellectual property are Trademarks, Copyright Act, Patent Act, and Designs Act.

Geographical Indication

It is a name or sign used on certain products which correspond to the geographic location or origin of the product. The use of geographical location may act as a certification that the product possesses certain qualities as per the traditional method. Geographical indications could help rural producers in developing countries to enter national markets on a larger scale and also enter international markets via export thereby increasing their income, local jobs along with preserving the diversity and contributing to rural development. Darjeeling tea and Agra Petha are common examples of geographical indications.

Tackle global challenges by breakthrough solutions

Almost all of the 300 products which are crucial to saving or improving people's lives that are listed on the WHO's Essential Drug List are a result of the R&D intensive pharmaceutical industry that depends on patent protections. New products are being created by innovative agricultural companies to help farmers produce the best products for the world's hunger while reducing the environmental impact of agriculture. Energy security and climate change issues can occasionally be addressed through exploration of relevant intellectual property rights in alternative energy and green technologies. For example, Walmart recently filed a patent for a pollination drone. They are equipped with cameras that allow the robotic bees to identify crops and then pollinate them like real bees. Considering the number of bees is decreasing

worldwide, robotic bees like these could be a boon to agriculture worldwide. Such solutions can help solve global problems.

What rights does copyright provide? Trade policy essentially involves the right to regulate the distribution of labor. In other words, copyright can prevent a person from copying or using the work without permission, including translating, copying, performing or publishing it. How the owner enforces these rights will depend on the national laws of the relevant country, but most countries impose civil and criminal penalties for violations. Copyright also includes certain moral rights of the creator, including the right to be recognized as the author of the work and the right to protect the work from discreditable alteration.

Transferring and trading copyright

Generally speaking, copyright can be transferred and distributed. The copyright owner may agree to let someone else use the work under certain conditions (a license), or they may license or sell the rights to a new owner (a work). If the copyright owner dies, his financial rights pass to his heirs or heirs. Policy changes are common. For example:

- Book authors, songwriters, and composers often license or assign their rights to publishers in exchange for money, called royalties.
- In many countries, developers can grant or delegate their rights to a collective body that will oversee the work and collect fees from users on the creator's behalf.
- Copyright owners have the right to choose to give their works away for free or to allow others to use them free of charge under certain conditions. For example, they can be licensed for use under a standard Creative Commons license.

Copyright laws in many countries cannot be changed or modified, but sometimes manufacturers agree to waive or not exercise these rights.

Copyright and the public interest

Law serves the public interest by helping to ensure that producers receive fair reward for their work, thereby encouraging greater creativity and ensuring that work is recognized and respected. The law also recognizes that there are certain situations, called prohibitions and exceptions, where the prohibition does not apply. For example, many countries allow copyrighted material to be modified without the copyright owner's permission for the purpose of creating copyrighted material that can be used by people who are visually impaired or have

other physical disabilities, making it difficult for them to use printed materials on a regular basis. International law currently supports this exemption through the 2013 Marrakesh Agreement administered by WIPO, which also regulates the exchange of accessible books. Additionally, in law, the right to trade is only valid for a limited period of time, known as a time limit. Once this period is up, the project becomes public, which means anyone can use it for free. Moral rights are limited in some countries and permanent in others.

New Constitution The Constitution must evolve to respond to new technologies and traditions. For example, technology makes it possible to produce and deliver high-quality prints at very low cost. In 1996, two new international agreements, the World Intellectual Property Organization Copyright Treaty (WCT) and the World Intellectual Property Organization Performances and Phonograms Treaty (WPPT), were signed to help protect copyright and other laws in the Internet age. In 2012, the Beijing Convention on Audiovisual Performances was adopted to protect the relevant rights of audiovisual artists. But another challenge remains. How to preserve the best culture of people in developing countries in the context of international trade? Is legislation needed to cover 3D printing? What's the best way to ensure that musicians and artists earn good wages when their work can be accessed online from anywhere in the world?

Positive Impact of IPRS on Business Development

Now consider the downside of this situation. Economists recognize that IPRS can support economic development and growth in several ways. This process is collaborative and the motivations for heritage conservation need to be agreed upon.

Intellectual property rights can play an important role in supporting innovation, productivity and technological change. Most developing countries have intellectual property rights that facilitate the dissemination of knowledge through the low cost of foreign goods and technologies. This policy shows that relying on domestic construction and new construction is not enough to prevent conservation. However, even at a low level of economic development, the shortcomings of IPRS can hinder technological change. This is because many products and innovations are focused on the local market and can benefit from domestic protection of patents, utility models and technology business secrets. In most cases, inventions involve minor changes to existing technologies and products. The great impact of these devices is very important for increasing knowledge and productivity. To be competitive, businesses in developing countries often need to adopt new management and organization and effective management systems that can be effective. Such investments are costly but often provide positive

social benefits because they are necessary for production to meet international standards. "They are more likely to operate in an environment where there is less risk of unfair competition and commercial infringement. IP RS can also help reward the creativity and risk-taking of new businesses and entrepreneurs. Countries with poor standards will continue to rely on fraud and poor economic practices.

Implementing Pro-competitive IPRS Standards

Developing countries are huge consumers of technology; This suggests that they need to develop standards that encourage learning and compliance – innovation in IPRS. For example, patent examiners may pursue an optimal nonobviousness standard for establishing patents, require prior disclosure of information, limit protection to narrow patent claim, and establish a narrow doctrine of equity. This last approach, illustrated by good utility models, is important to support the creation of domestic resources for the creation of laws on patents. An effective anti-patent grant is important to provide stakeholders with prior art information. The construction of specific models should be carefully evaluated. For example, TRIPS requires patents for biotechnological microorganisms and special protection of plant varieties. However, there are differences in American standards on this issue. New stringent, non-explicit, and disclosure standards may be developed to facilitate dissemination and limit widespread protection in biotechnology. But the stricter these standards are, the more they will hinder fundamental development in the local biotechnology industry. In terms of the protection of various plants, it is recommended to provide breeder exemptions, agricultural policies and mechanisms for the protection of biodiversity. However, these restrictions can prevent foreign companies from using cultivation rights and disrupt production in public agricultural research centers. To this end, it is important to ensure that the process of transferring research from laboratories to farmers is transparent and effective.

Enhance Capacities to Develop and Use IPRS

The benefits that countries derive from IPRS depend on their ability to develop and assimilate new technologies and products of their personal choice. In this context, our problem is very important for development. First, it is true that higher education and greater human capital can improve the ability to adapt new technologies for local use. Therefore, providing opportunities for education and secondary or university education can provide significant benefits. Second, production that absorbs foreign technology mainly depends on the R&D performance of local enterprises. This analysis emphasizes the importance of

developing technology policies that will support technological change in domestic companies. These services may include technology demonstration projects, sharing knowledge through conferences, promoting research collaborations, and improving links between public research institutions, testing and business. In fact, the main problem in many countries is that research institutions are unable to bring their products to market profitably, partly due to technology. Rights regarding these products are uncertain. Strengthening the IPRS will help in this regard, but so will the commitment of organizations and businesses to enable researchers to pose new business questions in an open and strong partnership. Third, it is also important for countries to support the development of financial markets that can manage the key risks of technological development. The country can learn from the experiences of American investment companies.

Accelerates Business Growth

Unprotected strategies have a high risk of being marketed by competitors to capture the market and the business will slow down. Therefore, SMEs need to protect their products or services. Losing a business can be very dangerous in the initial stages of business because it can be detrimental to the health of the business in the long run.

Enhance the market value of your business

Registering and protecting intellectual property can improve your business. Goodwill is an intangible asset that has the potential to generate the full value of a business. The company's brand value, strong customer relations, patents and employee relations are just a few examples of goodwill.

In case of sale, merger or acquisition, goodwill will be beneficial because in case of goodwill of the company, the acquisition value of the business will exceed its book value. By registering the property, licensing, selling or trading the property or services protected, it will generate a regular price, thus increasing your income, thus increasing your share of business and increasing your profits.

IP creates and supports high paying jobs

Hundreds of millions of people worldwide are currently employed in intellectual property-intensive industries. The Government of India launched the National Intellectual Property Policy, a document with the slogan "Creative India; Innovative India", on 12 May 2016. This is

a strategy that will make the economy stronger in the future and make it easier to do business in India.

Job opportunities in the business intelligence industry are expected to grow faster than ever in the next decade. India's ranking in the Global Innovation Index (GII) rose to 66th from 81st in 2015. GII also reported that India has all the ingredients needed to become a global driving force, including the market potential, superior talent pool and culture of the new budget.

Enhance export business opportunities

Innovative policies have the potential to increase efficiency and competitiveness in the export market. Intellectual property owners may use names and designs to market goods and services abroad, enter into franchise agreements with foreign companies, or export their products. For example, McDonald's and Burger King initially had franchises only in the United States, but now they have franchises worldwide and are strengthening their business through franchising.

Tackle global challenges by breakthrough solutions

Almost all of the 300 products listed on the World Health Organization's List of Essential Medicines are needed to protect or improve the same People's lives are R&D intensive and rely on patent protection Benefits for the pharmaceutical industry. Agricultural startups are developing new products to help farmers produce the best crops to meet world hunger while also reducing the environmental impact of agriculture. Energy security and climate change issues can occasionally be addressed through exploration of relevant intellectual property rights in alternative energy and green technologies.

For example, Walmart recently filed a patent for drone pollination. They are equipped with cameras that allow the robotic bees to identify crops and then pollinate them like real bees. Considering the global decline of bees, robotic bees like these could be a boon to agriculture worldwide. Such solutions can help solve global problems.

Conclusion

Intellectual property has become universal and important, so all individuals and businesses must register their intellectual property; This will help them earn more money and prevent others from stealing their ideas and innovations. But the problem is that intellectual property

rights are still national or regional. Another important challenge with intellectual property rights is that rights permitted in one jurisdiction may not be valid in another. This situation creates the need for all countries to develop strict laws to protect intellectual property rights.

The government should establish proper property rights for individuals and companies, not too rigid or lax. The long-term economy and development of a country also requires the government to improve all standards. It seems that protecting intellectual property rights is very important in today's world.

Creating a brand is very difficult, when there is a trademark violation, it causes the biggest problem for the manufacturer. The protection of capital is very important and should be a step towards a global intellectual order. The reason for protecting intellectual property is that it encourages creativity and discovery and protects inventions from exploitation.

References

1. Patricia M. Danzon, Pharmaceutical Price Regulation: National Policies Versus Global Interests 4 (2008).
2. Sean M. Dougherty, The Role of Foreign Technology in Improving Chinese Productivity 13 (2016) (unpublished manuscript on file with the author).
3. Keith E. Maskus, Strengthening Intellectual Property Rights in Asia: Implications for Australia, 37 AusTL. ECON. PAPERS 346, 346-51, 354-57 (2021); Maskus, Foreign Direct Investment, supra note 1, at 128-29.
4. David M. Gould & William C. Gruben, The Role of Intellectual Property Rights in Economic Growth, 48 J. DEv. ECON. 323, 334-35 (2017).
5. Ginarte & Park, supra note 3, at 298 (discussing the correlation among patent rights, R&D spending, and openness to foreign trade).
6. International Monetary Fund, Balance of Payments Statistics Yearbook, Part 1: Country Tables 848 (2020).
7. United Nations Conference on Trade and Development, The Trips Agreement and Developing Countries at 63-64, U.N. Doe. UNCTAD/ITE/l, U.N. Sales No. 96.11.D.10.

Shaping Healthy Communities: The Historical Journey of Physical Education and Sports in Fostering Social Well-being and Health Advancement

Dr Shahanawaz Khan
Department of Physical Education
Shri Varshney College, Aligarh.

Abstract:

This research paper delves into the historical background of physical education and sports, tracing their evolution from ancient civilizations to modern times. It explores the development of physical education, the emergence of organized sports, and the inclusion of women and marginalized groups in sports. Furthermore, it investigates the substantial contributions of physical education and sports to social health upliftment.

The historical exploration reveals the profound cultural and educational significance of physical education in ancient Greece and Rome, emphasizing the interconnectedness of physical and mental well-being. During the medieval period, physical education was primarily associated with military training, focusing on chivalry and combat skills.

In the context of social health upliftment, this research paper discusses the positive impact of physical education and sports on physical health, mental well-being, and the promotion of values like teamwork, discipline, and fair play. It examines their role in fostering social inclusion, community bonding, and unity among diverse populations. Furthermore, it addresses the empowerment and economic impact of sports on individuals and communities, underlining their significance in diplomacy and cultural exchange.

This paper not only delves into the historical narrative of physical education and sports but also emphasizes their enduring influence on societal well-being and calls for continued research and advocacy in this field to maximize their contribution to social health upliftment.

Introduction:

Physical education and sports have played a pivotal role in the development of human societies and have been a consistent thread throughout the tapestry of human history. These endeavors are more than mere leisure activities or competitive events; they are powerful forces that have shaped cultures, enriched lives, and contributed significantly to social health upliftment. The historical journey of physical education and sports, from their roots in ancient civilizations to their modern-day manifestations, reflects a deep-seated recognition of the intimate connection between physical well-being, mental health, and societal advancement.

In examining the historical background of physical education and sports, this paper embarks on a journey through time, unearthing the origins of these practices and their subsequent evolution. We traverse the annals of history, from the athletic contests of ancient Greece and the martial training of medieval knights to the formation of modern sports organizations and the inclusion of women and marginalized groups in sporting events. In doing so, we uncover the intricate web of social, cultural, and educational influences that have interwoven with the development of physical education and sports.

But this journey does not merely entail a retrospective gaze into the past. It is equally an exploration of the profound and lasting impacts that physical education and sports have had on the overall well-being of individuals and societies. These contributions are not confined to the physical realm alone; they encompass the enhancement of mental health, the cultivation of values such as teamwork and fair play, the promotion of social inclusion, and the empowerment of individuals and communities.

Historical Background of Physical Education and Sports:

The historical roots of physical education and sports are deeply embedded in the fabric of human civilization. From the earliest days of humanity, the need to move, to compete, and to demonstrate physical prowess has been fundamental. The historical background of physical education and sports is a rich tapestry woven over centuries, reflecting cultural, educational, and societal dynamics that continue to influence contemporary practices.

Ancient Civilizations: Physical education and sports find their origins in the ancient civilizations of the world. One of the most prominent examples is ancient Greece, where physical fitness and athletic prowess were highly esteemed. The Greeks introduced the Olympic Games in 776 BC, emphasizing not only athletic excellence but also moral and intellectual growth.

In this context, physical education was deeply intertwined with the holistic development of the individual.

Medieval and Renaissance Periods: The medieval period witnessed a shift in the nature of physical education, with an emphasis on martial training and chivalry. Knights engaged in rigorous combat training, practicing swordsmanship, archery, and jousting. This martial focus remained influential throughout the medieval and Renaissance eras.

The Renaissance and Enlightenment Eras: During the Renaissance, physical education took on a more comprehensive educational role. Figures like Johann Amos Comenius advocated for the inclusion of physical education in school curricula, recognizing the interdependence of physical and mental well-being. The Enlightenment furthered this notion, highlighting the value of physical education for the cultivation of an enlightened citizenry.

The 19th Century and the Advent of Modern Sports: The 19th century saw the development of modern physical education and sports. European educators like Friedrich Jahn promoted gymnastics as a means of enhancing physical and moral development. It was during this era that organized sports began to take shape, with sports clubs, governing bodies, and competitive leagues being established.

The Revival of the Olympic Games: Pierre de Coubertin, a visionary French educator, played a pivotal role in the revival of the modern Olympic Games. The first modern Olympics took place in Athens in 1896, marking a resurgence of the ancient athletic ideals. Coubertin's efforts helped bridge the historical continuum, connecting the past with the present.

The 20th Century and Beyond: The 20th century witnessed significant advancements in women's participation in sports, including the introduction of women's events in the Olympics and the development of women's professional sports leagues. This period also saw a surge in the expansion of sports science, sports medicine, and sports-related technology.

Throughout these historical periods, the significance of physical education and sports in fostering not only physical health but also mental well-being and the development of character became increasingly evident. The intertwined history of these practices showcases their enduring relevance as tools for social health upliftment.

As this paper explores the historical background of physical education and sports, it is important to recognize the profound impact these practices have had on societies throughout history. They have served as crucibles for the development of individuals, fostering values, unity, and cultural exchange while continuing to contribute to the social health upliftment

of communities worldwide. This history forms the foundation upon which the modern understanding of the roles of physical education and sports in society is built.

Development of Physical Education and Sports:

The historical background of physical education and sports is not a static tableau but a dynamic tapestry of evolution and adaptation that has unfolded over centuries. The development of these practices reflects an intricate interplay of cultural, educational, and societal factors, shaping and reshaping their significance throughout history. This section of our exploration delves into the transformative journey of physical education and sports from their ancient origins to their contemporary forms, emphasizing their roles in individual well-being and social health upliftment.

Ancient Foundations: The origins of physical education and sports can be traced back to ancient civilizations, with Greece being a prominent exemplar. In ancient Greece, physical fitness was intrinsically linked to the development of a well-rounded individual, encompassing not just the body but also the mind and spirit. The ancient Greeks introduced the Olympic Games in 776 BC, an event that celebrated physical prowess, camaraderie, and moral and intellectual growth. This ancient foundation established the enduring principle that physical education was not merely about physical activity but was a holistic endeavor aimed at nurturing the complete person.

Medieval Martial Focus: The medieval period witnessed a shift in the nature of physical education, with a pronounced martial emphasis. Knights and warriors engaged in rigorous combat training, mastering swordsmanship, archery, and other combat skills. Physical education, in this era, was closely tied to military preparedness, chivalry, and the cultivation of a warrior ethos.

The Renaissance: The Renaissance period brought about a revival of interest in the holistic development of individuals. Figures like Johann Amos Comenius advocated for the inclusion of physical education in school curricula, recognizing the inextricable link between physical well-being and intellectual development. The Renaissance, and later, the Enlightenment, underscored the importance of physical education in creating well-rounded citizens.

Emergence of Modern Sports: The 19th century marked a significant transition in the development of physical education and sports. European educators, such as Friedrich Jahn, promoted gymnastics as a means of physical and moral development. It was also during this era that organized sports began to take form, with the establishment of sports clubs, governing

bodies, and competitive leagues. The burgeoning interest in organized sports paved the way for the development of modern sports.

Revival of the Olympic Games: Pierre de Coubertin's vision and determination led to the revival of the modern Olympic Games in 1896. This historic event bridged the gap between ancient and modern athletic ideals, reinforcing the enduring significance of physical education and sports. The Olympics became a symbol of unity, bringing nations together in the spirit of friendly competition.

The 20^{th} Century and Beyond: The 20th century witnessed the significant expansion of women's participation in sports, with the inclusion of women's events in the Olympics and the development of women's professional sports leagues. This period also saw the rise of sports science, sports medicine, and technological advancements that continue to shape the world of sports and physical education.

The development of physical education and sports from ancient civilizations to the contemporary era mirrors the ebb and flow of societal values, educational philosophies, and individual aspirations. It exemplifies how these practices have continually adapted to meet the ever-changing needs of society. As we navigate this historical journey, it becomes evident that physical education and sports have not only evolved but have also maintained their central roles in fostering physical and mental well-being, promoting values, encouraging social inclusion, and contributing to the overall upliftment of society.

Inclusion of Women and Marginalized Groups:

The historical trajectory of physical education and sports has been marked not only by their evolution as practices but also by their changing attitudes towards inclusivity. The inclusion of women and marginalized groups in these realms represents a powerful testament to the resilience and adaptability of physical education and sports in addressing societal disparities and inequalities. In this section, we embark on a journey through history to understand the challenges and triumphs in the quest for a more inclusive world of physical activity.

Historical Marginalization: For much of history, physical education and sports were domains predominantly inhabited by men, often characterized by gender-based and socioeconomic biases. Women and marginalized groups, including racial and ethnic minorities and individuals with disabilities, faced systemic exclusion from participating in sports and physical activities.

Challenging Norms: The late 19th and early 20th centuries witnessed the first stirrings of change. Women like Catherine Beecher in the United States and Madame Alice Milliat in Europe began to challenge the prevailing norms. Beecher emphasized the importance of physical education for women, advocating for the inclusion of physical activities in women's education.

Breaking Barriers: The early 20th century saw trailblazers like Alice Coachman and Wilma Rudolph breaking racial barriers in athletics. The Paralympic Games, initiated in the mid-20th century, created opportunities for individuals with disabilities to compete at the highest level of sports. The inclusion of women's events in the Olympics further broke the gender barrier and acknowledged the exceptional abilities of female athletes.

Legislation and Advocacy: In the latter half of the 20th century, legislation such as Title IX in the United States mandated gender equity in educational programs, including sports. This landmark legislation triggered a seismic shift in women's sports participation. International organizations, including the International Olympic Committee (IOC) and the United Nations, have advanced initiatives aimed at promoting gender equality in sports.

Professionalization and Recognition: The professionalization of women's sports and the establishment of women's leagues in various sports have contributed to the recognition and respect accorded to female athletes. Sporting legends like Billie Jean King, Serena Williams, and Martina Navratilova have not only excelled in their respective sports but have also become advocates for gender equality in sports.

Inclusive Practices: The inclusion of marginalized groups and individuals with disabilities has seen significant progress through adaptive sports programs, which provide opportunities for people of all abilities to engage in physical activities. Organizations like the Special Olympics and Paralympics have paved the way for inclusive competition and the celebration of diversity in sports.

As we explore the historical inclusion of women and marginalized groups in physical education and sports, it becomes evident that while significant strides have been made, challenges and disparities persist. However, these historical transformations underscore the transformative potential of physical education and sports as agents of social change. The journey from exclusion to inclusion not only exemplifies the power of perseverance but also highlights the profound impact these practices can have in promoting social health upliftment by fostering diversity, equity, and the celebration of all individuals' capabilities and contributions in the world of sports.

Contribution to Social Health Upliftment:

The historical development of physical education and sports is inseparable from their profound contributions to the upliftment of social health. Throughout history, these practices have functioned as dynamic agents of positive change, enriching the physical, mental, and social well-being of individuals and communities. This section explores the manifold contributions of physical education and sports to the broader realm of social health upliftment.

Physical Health and Well-being: Physical education and sports have long been recognized for their vital role in enhancing physical health and well-being. Regular physical activity not only promotes physical fitness and reduces the risk of chronic diseases but also fosters robust cardiovascular health, strengthens muscles and bones, and supports healthy body weight. The cultivation of physical health through sports contributes to the longevity and vitality of individuals and communities.

Mental Health and Well-being: Beyond the physical benefits, sports and physical education offer significant advantages for mental health. Engaging in physical activities helps alleviate stress, reduce symptoms of anxiety and depression, enhance mood, and elevate overall psychological well-being. The sense of achievement and mastery that comes with sports participation contributes to increased self-esteem and mental resilience.

Promotion of Values and Character Development: Sports and physical education provide fertile ground for the cultivation of essential values and character development. Team sports, in particular, emphasize the importance of cooperation, sportsmanship, and fair play. These experiences transcend the field of play, imparting valuable life skills that contribute to social harmony and positive citizenship.

Social Inclusion and Community Bonding: Physical education and sports play a pivotal role in fostering social inclusion and community bonding. They bring together individuals from diverse backgrounds, uniting them in the shared pursuit of common goals. Through team dynamics and collective support, sports create a sense of belonging and unity that transcends societal divisions.

Empowerment and Economic Impact: Sports have the power to empower individuals and communities. They offer opportunities for skill development, education, and employment, particularly in underserved areas. The economic impact of sports extends to job creation, infrastructure development, tourism, and the revitalization of local economies, contributing to the upliftment of communities.

Cultural Exchange and Diplomacy: International sporting events offer a platform for cultural exchange and diplomacy, promoting mutual understanding between nations. Sports transcend language and cultural barriers, fostering connections and friendships on a global scale. The Olympics, in particular, exemplify how sports can be a conduit for peace and diplomacy.

Promotion of Healthy Lifestyles: Physical education in schools and the popularization of sports encourage the adoption of healthy lifestyles from an early age. By instilling the importance of regular physical activity and good nutrition, physical education and sports contribute to a future generation with a heightened awareness of health and well-being.

As we reflect on the historical contributions of physical education and sports to social health upliftment, it becomes apparent that these practices are not mere pastimes but powerful catalysts for positive change. Their far-reaching impacts extend beyond individual health and well-being, influencing the social fabric of communities, nations, and the world at large. The historical journey of physical education and sports underscores their enduring significance as vehicles for social health upliftment, calling upon us to recognize and harness their potential in creating healthier, more inclusive, and more harmonious societies.

Challenges and Future Perspectives:

The historical background of physical education and sports is a journey marked by transformation, progress, and profound contributions to social health upliftment. However, it is not without its challenges and areas in need of further development. As we look back on this historical narrative and consider its impact on contemporary society, we must also acknowledge the hurdles and chart a path toward a more inclusive and equitable future.

Challenges:

1. **Inequalities in Access:** One of the enduring challenges is the unequal access to sports and physical education, with disparities based on factors such as socioeconomic status, geography, and disability. The lack of access for marginalized populations hinders the full realization of the benefits of physical activity.

2. **Gender Disparities:** While progress has been made in the inclusion of women in sports, gender disparities still persist. Female athletes continue to face unequal pay, limited opportunities, and gender-based discrimination in various sports.

3. **Youth Participation:** The rise of technology and screen time has led to decreased physical activity among youth. Encouraging and sustaining youth participation in sports and physical education programs is essential for fostering a healthier and more active generation.

4. **Overemphasis on Competition:** The hyper-competitive nature of sports, especially in elite-level and professional sports, can lead to issues such as performance-enhancing drug use, cheating, and mental health challenges among athletes.

5. **Social and Economic Barriers:** Economic and social barriers can limit participation in organized sports and physical education programs. The cost of equipment, facilities, and coaching can be prohibitive for many individuals and communities.

Future Perspectives:

1. **Inclusive Sports Initiatives:** Initiatives that prioritize inclusion, such as adaptive sports programs, are vital for addressing disparities in access. Programs that cater to individuals with disabilities and underserved communities can make sports more accessible to a wider population.

2. **Gender Equity in Sports:** Continued advocacy and policy changes are needed to achieve gender equity in sports. This includes equal pay for female athletes, increased representation in leadership roles, and the elimination of gender-based discrimination.

3. **Youth Engagement and Education:** Promoting physical education and sports in educational institutions and communities is essential for engaging youth and imparting the value of an active lifestyle. Encouraging a love for physical activity early in life can have lasting impacts on overall health.

4. **Mental Health Support:** Recognizing and addressing mental health challenges in sports is crucial. Promoting mental health awareness, reducing the stigma surrounding mental health issues, and **providing support for athletes are all vital steps.**

5. **Sports for Social Change:** Leveraging the power of sports for social change and development is a promising perspective. Sports diplomacy, peace-building initiatives, and community development through sports can create a more inclusive and harmonious world.

6. **Technology and Innovation:** Embracing technology and innovation in sports can enhance accessibility, training, and performance. Virtual training programs, sports analytics, and wearable technologies are revolutionizing sports and physical education.

7. **Holistic Health Approach:** A shift toward a more holistic approach to health, emphasizing the interconnectedness of physical, mental, and social well-being, can guide future practices in physical education and sports.

The historical background of physical education and sports has paved the way for significant contributions to social health upliftment. By addressing the persistent challenges and embracing forward-looking perspectives, we can build on this rich history to create a more inclusive, healthier, and more equitable future through sports and physical education.

Conclusion:

The historical journey through the development of physical education and sports has illuminated the profound impact of these practices on the upliftment of social health. From their ancient origins to their contemporary manifestations, physical education and sports have evolved as powerful agents of positive change, weaving a narrative that underscores the intricate interplay between physical, mental, and societal well-being.

Throughout history, these practices have been more than physical activities; they have been holistic endeavors, promoting the harmonious development of the individual and, by extension, society. The historical background of physical education and sports has revealed their integral role in shaping cultures, fostering values, promoting diversity, and unifying communities. Their ability to transcend language, culture, and borders has made them conduits for diplomacy, cultural exchange, and international understanding.

The journey has also been one of inclusivity, with women and marginalized groups gradually breaking through barriers that once excluded them from the world of sports. As we look back on their struggles and triumphs, we recognize that the inclusion of women and marginalized communities in sports is not only a mark of progress but also an affirmation of the universal potential of all individuals.

The historical development of physical education and sports has provided a foundation for the promotion of physical health, mental well-being, values, and social inclusion. It has empowered individuals and communities, instilled a sense of belonging, and contributed to economic growth. The lessons of the past have forged a path to a healthier and more inclusive future.

Yet, we must also confront the challenges that persist, from inequalities in access and gender disparities to the risk of overemphasis on competition and the impact of social and economic barriers. As we journey forward, the historical narrative of physical education and sports offers valuable insights into how we can address these challenges and build a more equitable and inclusive future.

The story of physical education and sports is an ongoing narrative, a tale of progress and potential. It is a testament to the capacity of individuals and societies to adapt, evolve, and overcome. As we continue to explore the intersection of physical education and sports with social health upliftment, we are reminded that the historical background is not a static tableau but a dynamic force, propelling us toward a future where physical, mental, and social well-being thrive in harmony. In this, we find inspiration and the promise of a brighter, more inclusive, and healthier tomorrow.

References

1. Kirk, D., & Macdonald, D. (Eds.). (2017). The Routledge Handbook of Physical Education Pedagogies. Routledge.
2. Siedentop, D. (2009). Introduction to Physical Education, Fitness, and Sport. McGraw-Hill Education.
3. Darnell, S. C., & Smith, A. C. T. (2014). Race, Sport and the American Dream (2nd ed.). Human Kinetics.
4. Coakley, J. (2015). Sports in Society: Issues and Controversies (11th ed.). McGraw-Hill Education.
5. Houlihan, B., & Green, M. (2008). Comparative and International Sport Development. Routledge.
6. Parry, J., & Long, J. (2018). Sport and Social Justice: The Power of the Popular. Macmillan International Higher Education.
7. Beecher, C. E. (1856). Physiology and Calisthenics for Schools and Families. Harper & Brothers.
8. Milliat, A. (1921). Les sports féminins: La femme et le sport en France. Félix Juven.
9. International Paralympic Committee. (n.d.). History. https://www.paralympic.org/history
10. Title IX of the Education Amendments of 1972, 20 U.S.C. § 1681 (1972).
11. International Olympic Committee. (2020). Gender equality in sport: Progress and challenges.
    https://stillmed.olympic.org/media/Document%20Library/OlympicOrg/IOC/Who -We-Are/Commissions/Women-and-Sport/IOC-Gender-Equality-in-Sport-2020-EN.pdf
12. International Paralympic Committee. (n.d.). About us. https://www.paralympic.org/about-us
13. Coachman, A. (1948). Coachman: World's Champion High Jumper. American Sports Publishing Company.
14. Rudolph, W. (1977). Wilma: The Story of Wilma Rudolph. G.P. Putnam's Sons.
15. United Nations. (n.d.). Sport for Development and Peace. https://www.un.org/sport/content/sport-development-and-peace
16. Special Olympics. (n.d.). Our Story. https://www.specialolympics.org/about/our-story
17. Paralympic Games. (n.d.). History of the Paralympic Games. https://www.paralympic.org/athens-2004/history
18. World Health Organization. (n.d.). Physical activity. https://www.who.int/health-topics/physical-activity#tab=tab_1
19. International Olympic Committee. (2020). The economic impact of the Olympic Games. https://stillmed.olympic.org/media/Document%20Library/OlympicOrg/News/2019/12/Economic-Impact-of-the-Olympic-Games.pdf
20. United Nations. (n.d.). Sustainable Development Goals. https://sdgs.un.org/goals

An Attempt Tto Analyze Attributes, Challenges and Barriers Towards Women Empowerment in Present Scenario

Rekha
Research Scholar,
Dr. Ambedkar Chair, Faculty of Law,
Swami Vivekanand Subharti University, Meerut.

Abstract

There is a complex interaction between social, economic, and political elements shaping the current climate for women's empowerment. Significant progress and continued problems are both reflected in this dynamic environment. Women are making great strides in areas that have historically been controlled by males, such as the sciences, technologies, and positions of leadership. There is a huge disparity in how women are treated in various parts of society in the present day. The advancement of women's rights, the attainment of empowerment, and the improvement of women's economic and social standing are all greatly aided by the spread of literacy. Although significant progress has been made in enacting laws and implementing policies that empower women, there is still a significant gap that has to be addressed in terms of implementing more robust policies, regulations, and awareness-raising efforts.

Keywords: Economic, Changing scenario, Technology, Gender, Legal

Introduction

Women's contributions to the betterment of society and the global economy are being eagerly embraced in the 21st century. The most crucial factor in a country's economic and social progress is the level of engagement of its women in decision-making. India is a third world nation with a terrible economic standing due of its male-dominated society. Women account for nearly half of the population, however the vast majority of women are economically inactive and reliant. A prosperous future for the household, community, and nation cannot be built

without investing in women's empowerment.[1] To empower women is to inspire them to acquire a strong sense of self-sufficiency, economic independence, a healthy sense of self-worth, the courage to take on any challenge, and the motivation to take an active role in a wide range of social and political development initiatives. If women are educated, then women's empowerment will have more of an impact. Women's economic independence, progress, and well-being may be greatly aided by a quality education. There is widespread agreement that a nation or culture can't progress or evolve without investing heavily in its educational system. In order for women to actively contribute to the development process, they must be equipped with the information, skills, and confidence that may be gained via education. Education is crucial for everyone, but it is especially crucial for women and girls. The dowry system, unemployment, and other societal ills may all be mitigated by women's education. Peace in the community may also be quickly restored. If girls and women don't get an education that's what their children will get, too. Napoleon, the Greek Warrior, understood this dynamic and famously declared, "Give me a few educated mothers, and I shall give you a heroic race." In recent years, the government of India has adopted a number of constitutional and legal provisions protecting women against mistreatment and discrimination. India has enacted a number of regulations intended to protect women against sexual assault and other forms of violence in the workplace. Human rights include protections for women. Health, education, political engagement, economic security, and a lack of violence are just a few of the numerous topics addressed. To realize human rights, peace and security, and sustainable development, it is essential that women enjoy these freedoms without restriction. To empower women, several non-governmental organizations (NGOs) work tirelessly. The government offers a wide variety of initiatives aimed at enhancing the status of women. Women's empowerment in India is crucial to the progress of the nation as a whole. Thus, in the 21st century, women's empowerment is a crucial instrument for the nation to achieve complete development.

What we now call "women's empowerment"[2] is a social movement that emerged in response to the realization that women's standing in society meant that they were often denied roles in the home, the workplace, and other common spheres of life. When discussing women, however, the term "empowerment" refers specifically to the acceptance and permission of women who have been historically excluded from political, economic, and cultural decision-making at all levels. This places a premium on women's representation in government and formal decision-making, as well as their capacity to earn a living wage and so take part in economic decision-making. When people are empowered, they gain control over their own life and the world around them. When people are free from barriers to education, employment, and other aspects of their lives, society views them as more powerful. The confidence that comes from knowing you have the freedom to choose your own path in life is immense. Education, knowledge, literacy, and

training to handle hard circumstances with ease and comfort are all part of the empowerment process. Thus the empowerment of Women in the society and family is all about equipping and permitting women to make lifedetermining choices through the many difficulties in society and in home on par with their counterparts.

Several guiding concepts define women's empowerment, including the need of starting from a place of disempowerment and oppression in order to achieve empowerment. Moreover, one must become empowered themselves, rather than having it bestowed upon them. Empowerment, as defined by the aforementioned studies, requires both the capacity to choose and act upon significant life choices.

The issue of women's empowerment has risen to prominence in the fields of economics and development. It may also indicate how other marginalized genders are treated in a certain political or social setting. When women are economically empowered, they are able to make decisions about their own lives and careers, take charge of their own finances, and make the most of the opportunities and time available to them. Implementing initiatives and policies that embrace the idea of women's empowerment may benefit whole countries, companies, communities, and organizations. Women's empowerment is crucial for a society's progress since it improves the quality and quantity of its human resources. One of the primary issues of procedure while discussing human rights and development is empowerment. Empowering women and attaining gender equality are crucial for our society to guarantee the long-term growth and prosperity of the nation. Many prominent politicians and academics have stated that progress toward gender parity and women's empowerment is essential to achieving sustainable development. To achieve environmental preservation, social progress, and economic growth, sustainable development must include the empowerment of women. Scholars believe that empowering women is one of development's most important and transformative effects. Women cannot participate in or profit from a country's growth unless they are given equal opportunities to do so.

Attribute of Women's Empowerment

The following are some of the numerous characteristics of an empowered woman:

Communal Empowerment

When women and girls are socially empowered, they are able to take initiative individually and collectively to alter societal norms and structures. This implies that women and girls don't

have to be held back from making decisions or forming meaningful relationships because of their gender. In order for women to realize their full potential, it is important that they have equal access to all of society's most fundamental necessities.

Monetary Empowerment

Through economic empowerment, women have access to economic resources and the decision-making authority to advance their own interests and those of their families and communities. Empowering women economically motivates them to create better means of financial support, earn higher wages, and start enterprises that hire other women. This assures that women everywhere have access to reasonably priced education, employment, and income-generating opportunities, both in the now and in the future. Therefore, it is of the utmost importance to promote women's economic independence. think about describes women's economic empowerment as the process by which women enhance their right to economic resources and authority to make choices that help themselves, their family and their community.

Supporting empowerment

Empowerment at the political level is essential for attaining holistic, impartial, and lasting progress. If democracy is to survive, women must take an active role in shaping public policy and managing the affairs of state. Statistics from throughout the world reveal that cultural and societal standards hinder women's participation in political advancement. This includes their underrepresentation as top achievers, elected politicians, and voters.

Challenges and Barriers[3]

Cultural Biases and Norms

Significant obstacles to women's empowerment are posed by cultural prejudices and traditions. Globally, entrenched patriarchy persists as a major problem. Traditional gender norms limit women's independence and options in many nations. Access to healthcare and education, movement limitations, and even clothing regulations are all manifestations of these standards. Limiting women's agency in this way can only serves to reinforce existing gender disparities. Because of the fundamental role those women’s activities are seen to play in maintaining family honor, honor-based violence compounds these difficulties in various

societies. This may rise to harmful traditions like honor murders, child marriage, and FGM, all of which restrict women's rights and put women at risk of bodily and mental harm.

Economic Disparities

The gender pay gap is a major issue for women all around the globe. Women still make less money than men do for doing the same jobs. This wage disparity not only fosters gender inequality but also hinders women's economic empowerment. In addition to salary gaps, women also face obstacles when trying to get access to economic possibilities. This involves issues with gaining access to capital, physical space, and other start-up essentials. These limitations restrict women's economic self-sufficiency and limit their capacity to engage fully in the labor and wider economic activity.

Institutional and Legal Barriers

However, women's advancement is still hampered by institutional and legal impediments. The rights of women are not fully protected by the law in many parts of the world. This is especially clear when considering issues of divorce, property division, and inheritance. Even when protective legislation exists, the implementation and enforcement of these rules may be inadequate owing to a number of factors, including resource limits, lack of sufficient training, and, in some situations, a lack of political will. Women's capacity to assert their rights and fully engage in social and economic life is hampered by these institutional and legal restrictions.

Education

Another major issue is the fact that girls and boys still have different educational opportunities. The gender education gap has narrowed in recent decades, but it still exists in many regions of the globe, especially in low-income nations. There may be a lack of educational opportunities for girls, a decline in the quality of available schools, and increased pressure to marry at a young age. As a result, they are hampered in their pursuit of further education, which in turn hinders their chances of gaining economic independence and better employment. Girls who do not have the opportunity to get an adequate education are more likely to become mothers, who may then face similar difficulties in providing an adequate education for their own children, perpetuating the cycle of undereducation.[4]

As a result of their interwoven nature, these problems and restrictions can only be overcome via a concerted effort that incorporates not just a shift in legal and cultural standards but also economic empowerment initiatives and better access to excellent education. Overcoming these challenges is vital for establishing women's empowerment and gender equality in the contemporary context.

Changing Scenario of Women Empowerment in The Present Context

There is a complicated interaction of social, economic, political, and cultural variables that all contribute to the shifting landscape of women's empowerment today. The worldwide approach to and pursuit of women's empowerment has undergone a sea change in recent years. The landscape of women's rights is changing in unprecedented ways as a result of this shift, which is distinguished by both great progress and major problems. Among the most noticeable shifts is the growing appreciation for women's roles in many facets of society. Science, technology, engineering, and mathematics (STEM) used to be male-dominated industries, but today women are making great strides in these areas. Initiatives aimed at increasing STEM education for females, combating gender stereotypes, and creating an inclusive workplace have all contributed to this change. As a result more women than ever are joining the industry, bringing with them unique experiences and skills that enhance the working world.[5]

There has also been a rise in the number of successful businesswomen and influential women. Women's business ownership is on the increase across the world, which has positive effects on economic expansion and the creation of new jobs. The availability of mentoring programs and funding opportunities specifically designed to help women start businesses has contributed to this development. Women are also actively questioning old gender conventions and lobbying for legislative reforms that promote gender equality as they rise to top positions in government, industry, academia, and civil society. In the modern era, technology and social media have emerged as significant instruments for women's empowerment. Thanks to the internet, women from various walks of life can find one other, share their experiences, and learn from one another. Women's voices are amplified and shared on online platforms, where they may also campaign for social change. Campaigns and movements on social media like #MeToo and #TimesUp have brought attention to previously hidden problems including sexual harassment and gender discrimination, resulting in discussions and legislative changes.

The advancement of women's rights and empowerment has also been greatly aided by changes in the law and other legislative efforts. Many nations have passed legislation to protect women from assault, guarantee them equal pay, and encourage them to take part in political

decision-making. The Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination Against Women (CEDAW) is one such international agreement that provides a framework for countries to protect women's rights and advance gender equality. The lives of women and girls have improved significantly as a direct consequence of the implementation of these policies and the work of women's rights groups. Despite these advances, however, women's empowerment still faces several longstanding obstacles. Persistent gender-based violence is a global problem that affects women of all ages, financial statuses, and regions. The health and safety of women are still threatened by issues like as domestic abuse, human trafficking, and damaging cultural traditions including child marriage and female genital mutilation. Addressing these difficulties involves coordinated efforts from governments, communities, and civil society groups to enforce existing laws, promote awareness, and offer support services to survivors.[6]

Another critical issue is the persistent wage discrepancy between men and women. Despite advancements, women still earn far less than men do for same labor. Several variables, such as occupational segregation, unconscious prejudice, and opaque compensation discussions, contribute to this gap. Systemic reforms inside organizations are required to close the gender pay gap, including encouraging pay transparency, providing family-friendly policies, and addressing discriminatory behaviors. In both the public and private spheres, women continue to be underrepresented in positions of power. In order to ensure varied viewpoints in policy creation and organizational administration, it is essential to achieve gender parity in leadership roles. There is a need for a long-term commitment from all parties involved to break down barriers and foster more welcoming cultures in order to boost the number of women in leadership positions in government and business.

Eliminating violence against women, ending the wage gap between men and women, increasing the number of women in positions of power, and advocating for intersectional ways to empowering underprivileged women are all goals worth working toward. To ensure that women everywhere have access to a more just and empowered future, governments, civil society groups, corporations, and people must work together. Embracing diversity and fostering gender equality will help to create more equitable, inclusive, and affluent communities for all people as society progresses.

Conclusion

The dynamic of women's empowerment reminds us of the never-ending effort needed to create societies in which gender parity is not only an ideal but a lived reality. Everyone in society benefits from gender equality and the empowerment of women because it creates a

world where women and men have equal opportunities to advance society's social, economic, and political conditions. As we continue to progress, the empowerment of women serves as a cornerstone of establishing more equitable, inclusive and affluent societies for everyone.

References

1. Singh, Om. (2023). Women Empowerment in Contemporary India.
2. Jain, Sweety. (2022). Women Empowerment in India -Current Scenario.
3. Meena, Krishan. (2022). Women's empowerment in India. 2. 2702-2706.
4. Singh, Om. (2020). "Women Empowerment in India through Technical & Higher Education in Present Scenario". 11.
5. Banu, Saira. (2019). Changing Scenario of Women's Economic Empowerment in Bangladesh. 13. 1-18.
6. Tembhre, Manju. (2018). Challenges and Prospects of Women Empowerment in India.
7. Dey, Ankita & Majumdar, Kunal & Chakraborty, Arun & Mandal, Asok. (2018). Women Empowerment in India-A Perspective. National Journal of Community Medicine. 9. 574 -579.
8. Kulkarni, Shubhada. (2017). Women Empowerment in 21st Century.
9. Kaviarasu, John. (2016). women empowerment from past to the present. Dance Research Journal.
10. Nayak, Purusottam& Mahanta, Bidisha. (2009). Women Empowerment in India. SSRN Electronic Journal. 10.2139/ssrn.1320071.

Case studies

- D. Velusamy v. D. Patchaiammal (2010)
- Lilly Ledbetter v. Goodyear Tire & Rubber Co. (2007)
- Vishakha v. State of Rajasthan (1997)
- Domestic Violence Cases Worldwide
- Roe v. Wade (1973)

Notes

1. Singh, Om. (2023). Women Empowerment in Contemporary India.
2. Jain, Sweety. (2022). Women Empowerment in India -Current Scenario.
3. Banu, Saira. (2019). Changing Scenario of Women's Economic Empowerment in Bangladesh. 13. 1-18.
4. Tembhre, Manju. (2018). Challenges and Prospects of Women Empowerment in India.
5. Kulkarni, Shubhada. (2017). Women Empowerment in 21st Century.
6. Kaviarasu, John. (2016). women empowerment from past to the present. Dance Research Journal.

Vol. XX Issue No. II, May–August 2023, ISSN: 0970-1745 **Impact Factor 5.875**

Rights of Indigenous Group

Mrs. Naipali
Assistant Professor
Varshney Degree College
Aligarh

Introduction

Article 26 state that indigenous peoples have the rights to the land, territories and resources which they have traditionally owned occupied or otherwise used they have the right to own use develop and control these. As defined by the United Nations Special Rapporteur to the Sub-Commission on Prevention of Discrimination and Protection of Minorities Indigenous Communities peoples and nations are those which having a historical continuity with Pre-invasion and Precolonial Societies that developed their territories.

Now we do discuss about history of right of indigenous group because it is necessary every reason every group every moment every thing has history so if we want detail explanation of that topic yet we should know about it’s history.

History of Right of Indigenous Group

The groundwork toward this declaration began in 1923 and 1925 with the works of Haudenosaunee Chief Deskaheh and Māori T.W. Ratana, who attempted to bring issues of Canada and New Zealand's failure to uphold treaties to the League of Nations, United Nations' precursor. Issues of Indigenous Peoples on a world scale began to be reevaluated in 1982 with the establishment of the Working Group on Indigenous Peoples, formed by the Economic and Social Council. Their goal was to create an overarching document that would help protect the rights and privileges of Indigenous Peoples throughout the world.

The Declaration went through numerous drafts from 1994 to 2006, and a version had already been recommended by the Vienna Declaration and Programme of Action in 1993.

New Zealand, and the United States of America, who had also voted against the Declaration, had reversed their positions and expressed support.

UNDRIP codifies "Indigenous historical grievances, contemporary challenges and socio-economic, political and cultural aspirations" and is the "culmination of generations-long efforts by Indigenous organizations to get international attention, to secure recognition for their aspirations, and to generate support for their political agendas." Canada Research Chair and faculty member at the University of Saskatchewan Ken Coates argues that UNDRIP resonates powerfully with Indigenous peoples, while national governments have not yet fully understood its impact.

Many of these ethnic minorities are marginalised from the majority ethnic population in relative social, economic and political performance measures and their indigenous rights are poorly protected, signatories powers that disregard the intent outlined in UNDRIP articles include the People's Republic of China and Vietnam.

Purpose of Right of Indigenous Group

The UN created this non-legally binding declaration as an aspiration for how Indigenous individuals and peoples should be treated.

This declaration is a resolution, meaning it is not a law-bearing document. Indigenous peoples are not considered political nation-states and do not have access to international law protection through the international court of justice. Article 40 states that Indigenous peoples have the right to fair procedures for the resolution of conflicts and disputes with countries or other parties, because Indigenous people cannot use the International court of justice.

The declaration's purpose is not to create new rights, but rather addresses topics such as Indigenous reconciliation in regard to restoring and protecting culture, traditions, and indigenous institutions and the pursuit of self-determined development in all field.

Rights of Self Determination of Indigenous Individuals and Peoples

I. Dictates how this document should be understood in future reference Articles 38–46,

II. Land rights from ownership (including reparation, or return of land i.e. Article 10) to environmental issues Articles 26-30, and 32

III. Protection of subgroups ex. elderly, women, and children Article 22

IV. Health rights Article 23-24

V. Asserts the indigenous peoples' right to own type of governance and to economic development Articles 17-21, 35-37

VI. Rights of indigenous individuals and people to protect their culture through practices, languages, education, media, and religion, including control of their intellectual property Articles 9-15, 16, 25, and 31

Provisions for Rights of Indigenous Group

"Indigenous peoples are equal to all other peoples" (source). Besides asserting the rights that indigenous individuals and peoples' have as other peoples, there are Articles 23 of the 46 pointing to how States should interact with the declaration. Most of the articles point to States working in conjunction with the indigenous peoples. Some measures countries are suggested to take are:

I. To protect and uphold the rights of indigenous individuals and peoples (subpoint in many articles; see Declaration)

II. To place "programmes for monitoring, maintaining, and restoring the health of indigenous peoples" article 29

III. To return land article 26, ceremonial objects article 12, and human remains article 12

Negotiation and Adoption Rights of Indigenous Group

The Declaration was over 25 years in the making. The idea originated in 1982 when the UN Economic and Social Council set up its Working Group on Indigenous Populations, established as a result of a study by Special Rapporteur José Ricardo Martínez Cobo on the problem of discrimination faced by indigenous peoples. The Declaration on the Rights of Indigenous Peoples. The draft was finished in 1993 and was submitted to the Sub-Commission on the Prevention of Discrimination and Protection of Minorities, which gave its approval the following year. During this the International Labour Organization adopted the Indigenous and Tribal Peoples Convention, 1989.

Then referred to the Commission on Human Rights, which established another Working Group to examine its terms. Over the following years this Working Group met on 11 occasions to examine and fine-tune the Draft Declaration and its provisions. The final version of the Declaration was adopted on June 29, 2006, by the 47-member Human Rights Council.

All four member states that voted against have their origins as settler colonies of the British Empire, and have large non-Indigenous immigrant majorities and Indigenous populations. Since then, all four countries have moved to endorse the declaration in some informal way in which it would not actually become binding law pleadable in court. Canada's senate on June 16, 2021, and received royal assent on June 21, 2021, to become law. In doing so Canada became the first of the four countries with histories as settler colonies of the British empire with majority non-indigenous populations that originally voted against to now adopt UNDRIP.

Australian Government interventions have been challenged under its terms without success.

Support and Compromises in Favour of Rights of Indigenous Group

All four countries later switched their positions to accepting the declaration as a non-legally-binding document), United Nations officials and other world leaders expressed pleasure at its adoption. Secretary-General Ban Ki-moon described it as a "historic moment when UN Member States and indigenous peoples have reconciled with their painful histories and are resolved to move forward together on the path of human rights, justice and development for all.

The declaration has been debated for nearly a quarter century. Years which have seen many tribal peoples, such as the Akuntsu and Kanoê in Brazil, decimated and others, such as the Innu in Canada, brought to the edge. Governments that oppose it are shamefully fighting against the human rights of their most vulnerable peoples.

Criticism

Prior to the adoption of the Declaration, and throughout the 62nd session of the General Assembly, a number of countries expressed concern about some key issues, such as self-determination, access to lands, territories and resources and the lack of a clear definition of the term "indigenous". In addition to those intending to vote against the adoption of the declaration, a group of African countries represented by Namibia proposed to defer action, to hold further consultations. Ultimately, after agreeing on some adjustments to the Draft Declaration, a vast majority of states recognized that these issues could be addressed by each country at the national level.

By Opposing Countries

The four states that voted against continued to express serious reservations about the final text of the Declaration as placed before the General Assembly.[41][page needed] All four opposing countries later changed their vote in favour of the Declaration.

Main Articles are as Under

Article-1

Indigenous peoples have the right to the full enjoyment, as a collective or as individuals

Article-2

Indigenous peoples and individuals are free and equal to all other peoples and individuals and have the right to be free from any kind of discrimination

Article-3

Indigenous peoples have the right to self-determination. By virtue of that right they freely determine their political status and freely pursue their economic, social and cultural development.

Article-4

Indigenous peoples, in exercising their right to self-determination, have the right to autonomy.

Article-5

Indigenous peoples have the right to maintain and strengthen their distinct political, legal, economic, social and cultural institutions.

Article-6

Every indigenous individual has the right to a nationality.

Article-7

1. Indigenous individuals have the rights to life, physical and mental integrity, liberty and security of person.
2. Indigenous peoples have the collective right to live in freedom, peace and security as distinct peoples and shall not be subjected to any act of genocide.

Article-8

1. Indigenous peoples and individuals have the right not to be subjected to forced assimilation or destruction of their culture.
2. States shall provide effective mechanisms for prevention of, and redress for:

(a) Any action which has the aim or effect of depriving them of their integrity as distinct peoples, or of their cultural values or ethnic identities;

(b) Any action which has the aim or effect of dispossessing them of their lands, territories or resources;

(c) Any form of forced population transfer which has the aim or effect of violating or undermining any of their rights;

(d) Any form of forced assimilation or integration;

(e) Any form of propaganda designed to promote or incite racial or ethnic discrimination directed against them.

Article-9

Indigenous peoples and individuals have the right to belong to an indigenous community

Article-10

Indigenous peoples shall not be forcibly removed from their lands or territories.

Article-11

Indigenous peoples have the right to practise and revitalize their cultural traditions and customs.

Article-12

Control of their ceremonial objects; and the right to the repatriation of their human remains.

Article-13

1. Indigenous peoples have the right to revitalize, use, develop and transmit to future generations their histories, languages, oral traditions, philosophies, writing systems and literatures, and to designate and retain their own names for communities, places and persons.
2. States shall take effective measures to ensure that this right is protected and also to ensure that indigenous peoples can understand and be understood in political, legal and administrative proceedings.

Article-14

1. Indigenous peoples have the right to establish and control their educational systems and institutions providing education in their own languages, in a manner appropriate to their cultural methods of teaching and learning.
2. Indigenous individuals, particularly children, have the right to all levels and forms of education of the State without discrimination.

Article-15

1. Indigenous peoples have the right to the dignity and diversity of their cultures, traditions, histories
2. States shall take effective measures, in consultation and cooperation with the indigenous peoples

Article- 16

1. Indigenous peoples have the right to establish their own media in their own languages and to have access to all forms of non-indigenous media without discrimination.
2. States shall take effective measures to ensure that State-owned media duly reflect indigenous 15 cultural diversity.

Article- 17

1. All rights established under applicable international and domestic labour law.
2. States shall in consultation and cooperation with indigenous peoples take specific measures to protect indigenous children from economic exploitation and from performing any work that is likely to be hazardous or to interfere with the child's education, or to be harmful to the child's health or physical, mental, spiritual, moral or social development, taking into account their special vulnerability and the importance of education for their empowerment.

Article- 18

Indigenous peoples have the right to participate in decision-making in matters which would affect their rights

Article- 19

States shall consult and cooperate in good faith with the indigenous peoples concerned through their own representative institutions in order to obtain their free,

Article- 20

Indigenous peoples have the right to maintain and develop their political, economic and social systems or institutions.

Article- 21

Indigenous peoples have the right, without discrimination, to the improvement of their economic and social conditions

Article- 22

Particular attention shall be paid to the rights and special needs of indigenous elders, women, youth, children and persons with disabilities in the implementation of this Declaration.

Article- 23

Indigenous peoples have the right to determine and develop priorities and strategies for exercising their right to development.

Article- 24

Indigenous individuals have an equal right to the enjoyment of the highest attainable standard of physical and mental health.

Article- 25

Indigenous peoples have the right to maintain and strengthen their distinctive spiritual relationship with their traditionally.

Article- 26

Indigenous peoples have the right to own, use, develop and control the lands, territories and resources that they possess by reason of traditional ownership

Article- 27

Indigenous peoples shall have the right to participate in this process.

Article- 28

Indigenous peoples have the right to redress, by means that can include restitution

Article- 29

States shall take effective measures to ensure that no storage .

Article- 30

Military activities shall not take place in the lands or territories of indigenous peoples, unless justified by a relevant public interest

Article- 31

Indigenous peoples have the right to maintain, control, protect and develop their cultural heritage, traditional knowledge and traditional cultural expressions

Article- 32

States shall provide effective mechanisms for just and fair redress for any such activities

Article- 33

The right of indigenous individuals to obtain citizenship of the States in which they live.

Article- 34

Spirituality, traditions, procedures, practices and, in the cases where they exist, juridical systems or customs.

Article- 35

Indigenous peoples have the right to determine the responsibilities of individuals to their communities.

Article- 36

Indigenous peoples, in particular those divided by international borders, have the right to maintain and develop contacts

Article- 37

Indigenous peoples have the right to the recognition, observance and enforcement of treaties

Article- 38

States in consultation and cooperation with indigenous peoples, shall take the appropriate measures.

Article- 39

Indigenous peoples have the right to have access to financial and technical assistance from States and through international cooperation.

Article- 40

Traditions, rules and legal systems of the indigenous peoples concerned and international human rights.

Article- 41

Ways and means of ensuring participation of indigenous peoples on issues affecting them shall be established.

Article- 42

The United Nations, its bodies, including the Permanent Forum on Indigenous Issues, and specialized agencies, including at the country level.

Article- 43

The rights recognized herein constitute the minimum standards for the survival, dignity.

Article- 44

All the rights and freedoms recognized herein are equally guaranteed to male and female indigenous individuals.

Article- 45

Nothing in this Declaration may be construed as diminishing or extinguishing the rights indigenous peoples have now or may acquire in the future.

Article- 46

1. Nothing in this Declaration may be interpreted as implying for any State, people, group or person any right to engage in any activity.
2. The provisions set forth in this Declaration shall be interpreted in accordance with the principles of justice, democracy, respect for human rights, equality, non-discrimination, good governance and good faith

Conclusion

United Nations system Articulate and depict the Unique challenges and opportunities experienced by indigenous women in different areas including their participation and leadership as Actors in the projects. In most cares a close partnership and exchange of information were successfully achieved among Indigenous Women's Organizations. Indigenous peoples and Legal Security and Law enforcement with regard to the different aspect of the lives of indigenous persons. The certain of synergies between government office was important in developing a systematic programme for Analysis and reform of existing legislation, legal training and broad based interaction involving indigenous organization especially women, public and local authorities and other social actors increasing decentralization and devolution to Local government and its effects on local level power and public investment are opening up new spaces for indigenous participation in local government administration and management of territories communities & Neighborhood, with a legitimacy that is sustainable over time, the talent and capabilities of the lenders, both women and men are essential for projects to function they are the ones responsible for encouraging and mobilizing people and may require external support.

In last we can say about rights of indigenous group that Government do best work for indigenous group and do progressive work day by day in favour of indigenous group.

References

1. "DOTROIP-24-2-PDF" (PDF). Archived from the original (PDF) on September 3, 2018.
2. "United Nations Declaration on the Rights of Indigenous Peoples". United Nations Permanent Forum on Indigenous Issues. Archived from the original on November 1, 2015. Retrieved December 11, 2015.
3. "United Nations Declaration on the Rights of Indigenous Peoples: United Nations Resolution adopted by the General Assembly on 13 September 2007"
4. Frequently Asked Questions: Declaration on the Rights of Indigenous Peoples Archived.
5. United Nations adopts Declaration on Rights of Indigenous Peoples Archived March 13, 2017, at the Wayback Machine United Nations News Centre, 13 September 2007.
6. "Frequently Asked Questions–Declaration on the Rights of Indigenous Peoples"
7. "General Assembly adopts Declaration on Rights of Indigenous Peoples; 'Major Step Forward' towards human rights for all, says President". UN General Assembly GA/10612. September 13, 2007. Archived from the original on November 17, 2007. Retrieved July 21, 2021.
8. "United Nations Declaration on the Rights of Indigenous Peoples | United Nations For Indigenous Peoples". www.un.org. Retrieved February 16, 2020.
9. "FREQUENTLY ASKED QUESTIONS - DECLARATION ON THE RIGHTS OF INDIGENOUS PEOPLES" (PDF). Archived (PDF) from the original on April 13, 2013. Retrieved November 18, 2013.
10. Barnabas, Sylvanus Gbendazhi (December 7, 2017). "The Legal Status of the United Nations Declaration on the Rights of Indigenous Peoples (2007) in Contemporary International Human Rights Law". International Human Rights Law Review. 6 (2): 253. doi:10.1163/22131035-00602006. ISSN 2213-1027.
11. Coates, Ken (September 18, 2013), Ken Coates; Terry Mitchell (eds.), From aspiration to inspiration: UNDRIP finding deep traction in Indigenous communities, The Rise of the Fourth World, The Centre for International Governance Innovation (CIGI), archived from the original on September 23, 2013, retrieved September 20, 2013
12. Ferguson, Mark (October 12, 2011). "News". News.usask.ca. Archived from the original on September 25, 2013. Retrieved December 24, 2013.
13. "Home". University of Waterloo. November 3, 2016. Archived from the original on October 22, 1997. Retrieved August 26, 2017.
14. Vienna Declaration and Programme of Action, Part II, paragraph 29
15. "United Nations Declaration on the Rights of Indigenous Peoples | United Nations For Indigenous Peoples". www.un.org. Retrieved April 22, 2019.